फ्रांस का इतिहास ३

भूमिका

हिन्दी मे जिन अनेक विषयों की पुस्तकों का अभाव है उनमे इतिहास भी एक है। इसमे सन्देह नही कि इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया जा चुका है, और कई विदेशों के छोटे-छोटे इतिहास-ग्रन्थ लिखे भी गये हैं। फ्रांस का भी एक छोटा सा इतिहास, कई वर्ष हुए, निकला था। परन्तु, ये पुस्तकें बहुत थोड़े से पृष्ठों मे समाप्त हुई हैं, और इस कारण पाठक को कुछ भी सन्तोष-जनक ज्ञान की प्राप्ति कराने मे असमर्थ हैं। ऐतिहासिक साहित्य की उपयोगिता का अनुभव करके हमने भिन्न भिन्न देशो का इतिहास प्रकाशित करने का विचार किया है। इसी विचार को कार्य्यरूप मे परिणत करने के लिए हम फ्रांस का इतिहास लेकर पाठकों की सेवा मे उपस्थित होते हैं।

यदि पाठकों ने इस पुस्तक को अपनाया तो शीघ्र ही हम अन्य देशों के इतिहास-ग्रन्थ भी लेकर प्रस्तुत होंगे।

प्रकाशक

विषय-सूची।

। तुरन्त एक सेना भेज कर मारशेलीज़ को अपने आधिपत्य मे कर लिया। किन्तु इतने ही मे विजय समाप्त न हुई। सेल्ट लोगो के पारस्परिक झगड़ों एवं रोम-साम्राज्य के संचालन मे अनधिकार हस्तक्षेप के कारण रोम-बादशाहो को बारम्बार गॉल पर आक्रमण करना पड़ा। प्रत्येक आक्रमण मे गॉल का कोई न कोई हिस्सा इनके हाथ अवश्य लगा। अन्त मे ५८ ख्री० पू० मे प्रोविन्स नामक प्रान्त को सीज़र ने अपने अधिकार मे कर लिया। इसी बीच मे एक उपद्रव और खड़ा हुआ। सेल्ट लोगो की असभ्यता और आपस की फूट देख कर जर्मन लोगो का जी गॉल को अपने हाथ मे करने के लिए ललचाया। उन्होंने राईन नदी पार करके गाल पर आक्रमण किया। कुछ सेल्ट लोगो के दल भी रोम के विरुद्ध उनमे जा मिले। किन्तु सीज़र साधारण वीर नही था, उसमे सैन्य-संचालन की विलक्षण प्रतिभा थी। कुछ ही सप्ताहो मे उसने जर्मनी की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया और जर्मन-बादशाह को राईन के उस पार मार भगाया। उस दिन से चार सौ वर्ष तक फिर कभी जर्मन लोगो ने गॉल के लिए वृथा प्रयत्न नही किया।

इस जर्मन और रोमन-युद्ध के कई परिणाम हुए। रोमन लोग समस्त गॉल को पार करके राईन नदी के पास पहुँच गये। सारे गॉल पर उनका आतंक छा गया। तब तो सेल्ट लोगों के कान खड़े हुए। कुछ दलो ने रोमन लोगो के विरुद्ध

एक संघ बनाया। इसलिए सीज़र को विधिवत् उत्तरी गॉल पर आक्रमण करने का अवसर प्राप्त होगया। सीज़र के आगे सेल्ट लोगों की एक न चली और सारा देश रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत होगया। कही कहीं पर सेल्ट लोगो ने भयंकर उत्पात मचाये किन्तु आठ वर्ष के भीतर सीज़र ने सबको कुचल डाला, फिर कभी गॉल ने रोम के विरुद्ध सिर उठाने का नाम नहीं लिया।

रोमन-विजय और रोमन-शासन का सेल्ट लोगो पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यद्यपि यह कहा जाता है कि रोमन लोगो ने पराजित जाति को दबाने अथवा उसकी सभ्यता को उखाड़ने के लिए रत्ती भर कोशिश नहीं की, किन्तु उसका फल वही हुआ। रोमन लोगों की उच्च सभ्यता के आगे सेल्ट-सभ्यता अपने आप लुप्त हो गई। उनका धर्म, पोशाक, हथियार, यहाँ तक कि नाम, रहन-सहन, क़ानून आदि सब बदल गये। एक शताब्दी के भीतर गॉल उतना ही रोमन-सभ्यता का पोष. समझा जाने लगा जितना कि स्वयं इटली। कोई कोई तो यहाँ तक कहते हैं कि गॉल इटली की अपेक्षा रोमन-सभ्यता का अधिक पक्षपाती होगया था। जो कुछ भी हो, इसमे सन्देह नही, कि सौ वर्ष के बाद इटली के विद्यार्थी अपनी भाषा सीखने के लिए गॉल के सुप्रसिद्ध पाठशालाओं मे आने लगे। पृथ्वी के इतिहास मे अन्यत्र ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है।

रोमन-शासन-पद्धति सर्वथा उदार थी। वे गॉल लोगों के साधारण जीवन में हस्तक्षेप नहीं करते थे। जो बातें साम्राज्य के विरुद्ध अथवा मनुष्यता के विरुद्ध थीं जैसे नर-बलिदान इत्यादि, उनको रोमनों ने एक-दम बन्द कर दिया था। सैकड़ों छोटे छोटे राज्यों के स्थान मे एक प्रबल साम्राज्य के शासन से समस्त देश मे शान्ति और सुव्यवस्था फैल गई थी। रोमनो ने देश मे चारो ओर सड़कें निकलवा दी थीं, जिससे व्यापार मे वृद्धि हुई थी। कृषि की पद्धति भी रोमन लोगो की देखा-देखी उन्नत होगई थी। शहरों मे रोमन-नगरों की भाँति म्यूनिसिपलटियाँ थीं, अदालतों मे भी रोमन-क़ानून बरना जाने लगा था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि रोमन लोगो ने गॉल मे अपनी सभ्यता के प्रचार के लिए बड़ा उद्योग किया होगा, शायद बल-प्रयोग अथवा अर्थ-प्रलोभन भी दिया गया हो। किन्तु ऐसा सोचना महान् भूल होगी। रोमन-शासक अपनी प्रजा से मित्रवत् व्यवहार करते थे। उनको फ़ौजों मे भरती करते थे, उनको रोमन-नागरिक बनने के पूर्ण स्वत्व प्राप्त थे, यहाँ तक कि उनको उच्च पदवियाँ दी जाती थी, और वे रोमन-सीनेट (राज्य-परिषद्) के सदस्य भी बनाये जाते थे। सेल्ट लोग स्वयं रोमन-चाल-ढाल का अनुकरण करने के लिए बड़े उत्सुक थे। थोड़े ही दिनों मे वे पक्के रोमन बन गये, रोमन-नाम, रोमन-पोशाक और रोमन-भाषा सब उन्होंने ग्रहण कर लीं।

ईसाई-मत का प्रचार भी गॉल मे रोमन-शासनकाल में हुआ। प्रथम शताब्दी मे ईसाई-पादरी वहाँ पहुँच गये थे, किन्तु उन्हें अधिक सफलता न हुई। जब तृतीय शताब्दी में रोम से पादरी भेजे गये, तब उन्होने देश भर मे ईसाई-मत फैला दिया, किन्तु पहले-पहल केवल शहरों मे रहनेवाले विद्वानों और शिक्षित पुरुषो ने ही इस मत को स्वीकार किया। चौथी शताब्दी मे कौन्सटेनटाइन नामक बादशाह रोम-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। यह अपने आपको ईसाइयो का संरक्षक बतलाकर ही बादशाह बन सका था, इसलिए इसने ईसाई-मत को राज्य-धर्म बना दिया और कुछ दिनों मे वहाँ के आदिधर्म को क़ानून के विरुद्ध घोषित कर दिया। उस समय ईसाई-चर्च का रोमन-साम्राज्य की भाँति सुदृढ संगठन था। प्रत्येक शहर मे एक बिशप रहता था और प्रत्येक प्रान्त की राजधानी मे एक आर्य-बिशप। इन बिशप लोगो ने देश को भी अपने अपने अधिकार-क्षेत्र के अनुसार बाँट रक्खा था। ये विभाग किसी न किसी रूप मे १७८९ ई० की राज्य-क्रान्ति के समय तक चले आये।

रोमन-साम्राज्य की सामाजिक प्रथा के अनुसार गाल की जनता मे भी ऊँच-नीच का भेद प्रचलित होगया था। स्वतंत्रजनता मे तीन भेद थे। सबसे ऊँचे बड़े बड़े ज़मीदार थे, इनमे से बहुत से साम्राज्य के प्रतिष्ठित अमीर-उमरा समझे जाते थे। द्वितीय श्रेणी मे छोटे-छोटे ज़मींदार थे। तृतीय श्रेणी

मे शहर मे रहनेवाले दूकानदार एवं दस्तकार थे। परतंत्र जनता के दो भेद थे। एक तो ग़ुलाम थे जो कि पूर्णरूप से अपने मालिक के अधिकार मे थे और दूसरे इनसे कुछ अच्छे वे लोग थे, जिन्हे खेती-बारी और मज़दूरी का काम करना पड़ा था। इनको रहने के लिए मकान एव जोतने के लिए थोड़ी सी भूमि मिल जाती थी। यह सामाजिक विभाग भी किसी न किसी रूप मे राज्यक्रान्ति के समय तक चलता रहा।

सामाजिक विभाग के अनुसार देश की व्यावसायिक दशा थी। समस्त देश कुछ बड़े-बड़े जमीदारों के बीच मे बँटा हुआ था। इस ज़मीन से कुछ ज़मीन तो ज़मीनदार स्वयं अपने ग़ुलामों के द्वारा जुतवाते थे और कुछ कुलियों और मज़दूरों मे बाँट देते थे। ये लोग जमीदार को लगान दिया करते थे। छोटे छोटे ज़मींदारों के पास न तो अधिक ग़ुलाम थे और न अधिक पूँजी थी। इसलिए रोमन-साम्राज्य के पतन के समय आर्थिक और राजनैतिक उथल-पुथल मे इन्हे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। धनाभाव के कारण अपनी जायदादें इन्हें बड़े बड़े ज़मीनदारों को सौंप देनी पड़ीं और फिर उन्हीं से उन्होंने उसी ज़मीन को लगान पर लेना प्रारम्भ किया। इस प्रकार बड़े बड़े ज़मींदार का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। मध्यकालीन प्रसिद्ध फ़्यूडल-पद्धति की स्थापना का यह भी एक कारण था।

प्रायः चार शताब्दियों तक रोम-बादशाहों ने गॉल पर शासन किया, किन्तु वास्तव मे यह रोम-साम्राज्य की उन्नति के नहीं, वरन् पतन के दिन थे। सीज़र के शासन-काल मे ही पतन के चिह्न दिखाई देने लगे थे। आपस की फूट बढ़ती जाती थी। आर्थिक कठिनाइयाँ भी बढ़ रही थीं। ऐसी अवस्था मे सुधार के लिए जितने प्रयत्न किये गये थे, वे रोम के लिए और भी घातक हुए। अन्त मे, जब रोम-साम्राज्य बहुत ही कमज़ोर हो गया, तब गॉल मे ख़ूब गृह-कलह मच गया। किन्तु गॉल को स्वतंत्र होने की कोई इच्छा न थी, वास्तव मे वह अपना अस्तित्व ही खो चुका था। यदि उसमे थोड़ी सी भी जान होती, तो वह रोमन-साम्राज्य के फन्दे से छूट सकता था। परन्तु उसमे देश-प्रेम का नाम भी शेष न था। फिर क्या था, जर्मन लोगों ने राइन नदी पार करके गॉल पर धावा बोल दिया।

———

प्रकरण २

जर्मन-विजय

सन् ४०६ ई० के अन्तिम महीने के अन्तिम दिवस जर्मन-जातियों के कई झुण्ड राईन नदी को पार कर गॉल पर टूट पड़े। मैदान साफ़ था। उनका सामना करने का साहस किसी मे नही था। डर के मारे शहरों के कोट बन्द होगये, किन्तु वे जलाकर भस्म कर दियें गये। चर्च और गिरजाघरों ने इनका कोई विरोध न किया। रोम ने इनके विरुद्ध कोई सेना न भेजी। मतलब यह कि इन लोगों ने सारे गॉल पर दौरा किया। कुछ तो फ्रांस के दक्षिणी पर्वतो प्रेनीज़ को पार कर स्पेन मे जा पहुँचे और वहीं बस गये। इनमे सबसे प्रबल बर्गेन्डीयनों का दल था। इसने ४१३ ई० के लगभग राईन नदी के आस-पास बर्गेन्डी नाम का राज्य स्थापित किया।

कुछ दिनों बाद सन् ४१९ ई० मे जर्मन-जाति का एक दूसरा दल जो विसीगो के नाम से प्रसिद्ध था, इटली और रोम को लूटता-मारता गॉल के दक्षिण में आ बसा। किन्तु फिर इन्होंने रोम-साम्राज्य से कोई शत्रुता नही की। इसी प्रकार बर्गेन्डीयन लोगो ने रोम-साम्राज्य का ह्रास देखते हुए भी उससे मैत्री कर ली, नहीं, एक प्रकार से उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

अब हम उस जाति का ज़िक्र करते हैं जिसने अन्त मे

समस्त गॉल पर अपना प्रभाव जमाया और जिसके फल-स्वरूप उसका नाम बदल कर उसी जाति के अनुरूप हो गया। यह फ्रेंक-जाति थी। तीसरी शताब्दी मे ही यह जर्मनी से आकर राईन नदी के पास बस गये थे, चौथी शताब्दी मे यह राईन नदी की घाटी मे फैल गये थे। इस समय गॉल की अवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो रही थी। भिन्न भिन्न दल प्रभुता के लिए चेष्टा कर रहे थे। किन्तु ४५१ मे गॉल के ऊपर एक महा भयंकर आपत्ति आई। अटीला की अध्यक्षता मे हूणों ने गॉल पर आक्रमण किया। इन लोगों की रक्त-पिपासा उस समय सुप्रसिद्ध हो रही थी। जर्मन-जाति के सब दलो ने, जिनमे फ्रेंक भी सम्मिलित थे, ४५१ ई० मे चेलोन्स के क्षेत्र पर अटीला को पूरे तौर पर हराया और हूणो को भगा दिया। इस प्रकार फ्रांस के सिर पर से एक बड़ी विपत्ति टल गई।

फ्रांस का इतिहास फ्रेंक-जाति से प्रारम्भ होता है और फ्रेंक-जाति का इतिहास उसके क्लोविस नामी राजा से प्रारम्भ होता है। ४८१ ई० मे फ्रेंक-जाति दो मुख्य भागों मे विभक्त थी। एक का नाम रिपूरियन था और दूसरे का सेलियन। इन दोनों भागो के भी कई उपभाग थे। क्लोविस सेलियन-जाति के एक साधारण उपभाग का सरदार था। उसके सामने दो दो प्रश्न उपस्थित थे। एक तो राज्य-विस्तार करना, दूसरा फ्रेंक-जाति के विभिन्न दलो को संगठित करके एक राष्ट्र मे परिणत करना। इन दोनों उद्देशों मे वह बहुत कुछ

सफल भी हुआ। जिस समय उसने यह काम प्रारम्भ किया था, उस समय उसकी सेना मे १०० सिपाही से अधिक न थे। ४८६ मे उसने सियाग्रस नामक एक रोमन-सरदार पर आक्रमण किया और उसको हराकर उसका राज्य अपने अधिकार मे कर लिया। इससे सेलियन-जाति की सहानुभूति उसकी ओर हो गई। उसने दिखा दिया कि एक सुयोग्य सेनापति के सब गुण उसमे विद्यमान हैं। किन्तु इसके साथ ही उसमे भयकर उग्रता थी। सिसोन्स मे जब विजेता लोग लूट का हिस्सा बाँट रहे थे, तब क्लोविस ने एक सुन्दर प्याला यो ही अपने हिस्से मे लेना चाहा। एक जर्मन सिपाही ने इस पर उस प्याले को लेकर पृथ्वी पर पटक दिया। उसने कहा—यह सरासर अन्याय है। उस समय तो क्लोविस चुप होगया किन्तु दिल मे उस बात को रक्खे रहा, और एक वर्ष के बाद कवायद मे मामूली भूल होने से उसी बात की याद दिलाकर उसे गोली मार दी। इससे क्लोविस की उग्रता तो प्रकट ही होती है, साथ ही जर्मन-सिपाहियों की स्वतंत्रता का भी अच्छा परिचय मिलता है।

फ्रांस के बाल्यकालीन इतिहास मे ही धार्मिक लड़ाई-झगड़ो का सूत्रपात होगया था। ईसाई-मत मे उस समय दो भेद थे, एक एरियन और दूसरा रोमन-कैथोलिक। जर्मन-जाति के सभी प्रभावशाली अंग सब एरियन-ईसाई-मत को माननेवाले थे। उनकी बढ़ती हुई शक्ति से रोम मे भी

आतंक छा रहा था। रोमन-केथोलिक-सभ्यता निश्चितरूप से ऐरियन-सभ्यता से बढ़कर थी। जब बल-प्रयोग से रोमन-केथोलिक पादरियों ने अपना काम चलते न देखा, तो एक चाल चली। उन्होने क्लोटिलग नामक एक रोमन-केथोलिक राज-कुमारी के साथ क्लोबिस का विवाह कर दिया। क्लोबिस फ्रेंक-जाति का सबसे प्रमुख नेता हो गया था। राजकुमारी ने अपने पुत्र को भी अपने ही मत में दीक्षित करना चाहा, किन्तु कुछ ही दिनों मे वह बच्चा मर गया। इस घटना से क्लोबिस रोमन-केथोलिक मत से और भी अधिक फिर गया। पादरी हताश हो गये। भाग्यवश क्लोबिस को एक जर्मन-सरदार से युद्ध करना पड़ा। बड़ा ही भयकर युद्ध हुआ। अपने देवताओं की सहायता से निराश होकर लड़ाई के बोच मे क्लोबिस ने कहा—यदि इस समय ईसामसीह मेरी सहायता करें, तो मैं ईसाई हो जाऊँ। सुतरां विजय के पश्चात् वह ईसाई हो गया, उसकी देखा-देखी उसकी जाति के अन्यान्य लोगों ने भी यही मत ग्रहण कर लिया।

इधर जर्मन-जातियों मे फूट फैलने लगी। इसलिए क्लोबिस को राज्य-विस्तार का अच्छा अवसर हाथ लगा। बर्रोन्डीयन दो दलों मे विभक्त हो चुके थे, क्लोबिस ने पृथक् पृथक् उन दोनों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। यही गति विसीगोथ-जाति की हुई। यह समस्त दक्षिणी भाग मे फैली हुई थी। यद्यपि इसकी शक्ति भी अधिक थी, तथापि

गृह-कलहों से छिन्न-भिन्न होने के कारण ये क्लोविस के आगे न ठहर सके। सन् ५०७ ई० मे वोलो के युद्ध मे इनका बादशाह मारा गया, और इसलिए क्लोविस ने इसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार समस्त फ्रांस क्लोविस के हाथ मे आ गया।

एक उद्देश सफल होने के बाद क्लोविस ने दूसरे काम मे हाथ लगाया। वह फ्रैंक-जाति के विभिन्न दलों को मिलाकर एक करना चाहता था। इसकी पूर्ति के लिए उसने उचित-अनुचित का कोई विचार नही किया। जिस तरह से भी हुआ, छल से, कपट से, साम, दाम, दण्ड, भेद से—सब तरह से, उसने छोटे-छोटे राजाओं और उनके सम्बन्धियो को निर्भयता के साथ मरवा डाला, अन्त मे सभी जातियों ने इसे अपना नेता स्वीकार कर लिया।

हम भी यहाँ पर क्लोविस के उपायों की आलोचना नहीं करना चाहते। उसने जो काम कर दिखाया, वह निस्संदेह बहुत बड़ा था। भौगोलिक दृष्टि से अब फ्रांस एक हो गया था। इसलिए सच पूछा जाय तो यही से फ्रांस के इतिहास का श्रीगणेश होता है और यहीं से फ्रेंच-राष्ट्र के निर्माण का भी प्रारम्भ होता है। सेल्ट, रोमन, जर्मन, फ्रैंक-जातियों से मिलकर भविष्य में जो एक प्रबल जाति बनी, वही फ्रेंच-राष्ट्र के नाम से विख्यात हुई।

फ्रांस के इतिहास पर इस फ्रैंक-विजय के दो स्थायी प्रभाव

पड़े। फ्रेंक लोग अन्य जर्मन-जातियों की भाँति अपना जर्मनी-वाला घर-द्वार छोड कर फ्रांस मे नही आ बसे थे। उनका जर्मनी से पैत्रिक सम्बन्ध बराबर बना रहा। जैसे-जैसे उनका राज्य बढता गया तैसे-तैसे वे फैलते गये और अपने देश से आदमी बुलाते गये। इसका एक परिणाम यह हुआ कि कोई जाति उन्हे दबा नहीं सकी और न रोमन-सभ्यता की प्रबल धारा मे उन्हे अपना अस्तित्व ही खोना पडा। यदि उनका जर्मनी से सम्बन्ध-विच्छेद होगया होता, तो बहुत सम्भव था कि वे सेल्ट लोगों की भाति फ्रेंक न रह कर रोमन हो जाते। इसमे सन्देह नही कि इस अवस्था में भी फ्रेंक-शासन पद्धति पर रोम का बड़ा प्रभाव पडा है, तथापि उन्होने अपनी परम्परा-गत विशेषतायें नही खो दी है।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि फ्रेंक लोगों ने ऐरियन-मत स्वीकार न करके रोमन-कैथोलिक मत ग्रहण किया था। रोमन-कैथोलिक के सामने अभी उज्ज्वल भविष्य उपस्थित था। उससे फ्रेंक-जाति को और फ्रेंक-जाति से उसको सहायता मिली।

यथार्थ मे यूरोपीय एकता तथा उसकी उच्च सभ्यता का अधिकांश श्रेय इसी सम्मिलन को है।

फ्रेंक लोगों के सार्वजनिक जीवन की चार विशेषतायें थीं। इनका बादशाह जनता-द्वारा चुना जाता था। शान्ति के समय उसके अधिकार बहुत ही परिमित थे, युद्ध मे उसके

प्रकरण २

मेरोविनजियन का राज्य-वंश

(MEROVINGIANS)

क्लोविस के पश्चात् क्लोविस के वंशजो ने फ्रांस पर राज्य किया। ७५१ ई० तक फ्रांस के इतिहास मे कोई भीषण परिवर्तन नही हुआ। किन्तु यह काल दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है। ६३८ ई० तक इस राज्य-वंश का अभ्युदय-काल कहा जा सकता है और उसके बाद ७५१ तक उसका पतन-काल।

क्लोविस ने प्राचीन जर्मन-प्रथा के अनुसार अपने राज्य को अपने चारो बेटो मे बाँट दिया था। फ्रांस के अन्य बादशाह भी १० वी शताब्दी तक इस प्रथा का अनुसरण करते रहे। किन्तु बीच मे कभी कभी कोई राजकुमार इतना प्रबल हो जाता था कि वह अन्य शासकों को दबा देता था, इसलिए फ्रेंक-जाति की एकता नष्ट नही होने पाई थी। एकता की स्थिरता का एक कारण यह भी हो सकता है कि राज्य के बटवारे मे सदैव भौगोलिक विभिन्नता रहती थी। इसलिए देश की भौगोलिक एकता मे कोई बाधा नहीं पड़ी।

क्लोविस के उत्तराधिकारियो ने राज्य-विस्तार का क्रम बराबर जारी रक्खा। जर्मनी के मध्य-प्रदेश को जीत लिया। फ्रांस के दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वीय प्रदेश को भी अपने राज्य मे

मिला लिया, पीछे से उसका नाम फ्रेंकोनिया ही पड़ गया। इन्होने गौथ लोगो से भी कुछ जमीन छीन ली, यहाँ तक कि इटली और स्पेन पर भी कई बार हमले किये। पश्चिम मे दूर दूर तक इनका राज्य फैल गया। इससे इनके बादशाहो का गर्व बहुत बढ़ गया, रोमन-केथोलिक चर्च के साथ उनकी मित्रता तो थी ही, ये तुरन्त रोमन-बादशाहो की बराबरी करने लगे। इन्होने व्यापार और क़ानून मे भी काफी उन्नति कर ली थी।

मेरोविनजियन राज्यवंश मे डेगोबर्ट, जिसने ६२८-६३८ तक राज्य किया, सबसे प्रभावशाली था। किन्तु उसके शासन-काल मे भी स्थिरता के कोई चिह्न नही दिखाई देते थे। फ्रेंक लोगो का स्वभाव बड़ा ही उग्र और कठोर था। इस कारण ऐसा कोई अत्याचार न था जिससे उनके हृदय मे चोट पहुँचती हो। राज्यवंश मे भी यही स्वभाव परिलक्षित होता था। वहाँ की दो रानियों मे जो अमानुषिक कलह हुए थे, वे इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं। एक रानी ने अपने प्रति-द्वन्दी पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने पति की हत्या कर डाली थी, दूसरी रानी ने अधिकार प्राप्त करने के लिए अपने नाती को अपने हाथों नष्ट कर दिया था। फ्रेंक लोगों ने इसको घोड़े की पूँछ से बाँध कर मरवा डाला था। संक्षेप मे, डगोबर्ट के बाद जितने बादशाह हुए, वे सब शक्तिहीन थे। इसलिए राज-दरबारियो का प्रभाव बढ़ने लगा।

फ्रांस के अमीर-उमराओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है। फ्रेंक विजय से राजाओ का महत्त्व तो बढ़ा ही था, अमीरों के प्रभाव मे भी काफ़ी वृद्धि हुई थी। बादशाहों ने उनको प्रसन्न करने और अपना भक्त बनाने के लिए उन्हे और भी बड़ी बड़ी जागीरे लगा दी, इधर छोटे-छोटे ज़मींदारो ने भी इस अशान्ति-पूर्ण शासन-काल मे इन्ही अमीर-उमराओ की शरण ली। सारा देश काउनटियों अथवा ज़िलों मे विभक्त था। ज़िलाधीश काउन्टर कहलाता था। इसके अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। यही जिला की सेना का सेनापति था, यही स्थानीय पञ्चायतों का सभा-पति था, यही राष्ट्र के लिए कर वसूल करता था। मतलब यह कि जिले मे यही बादशाह का प्रतिनिधि था। इसलिए ज्यो-ज्यों बादशाह की शक्ति क्षीण होती गई, त्यो त्यों ये अपने अधिकार बढ़ाते गये।

मेरोविनजियन के अभ्युदय-काल ही मे अमीर-उमराओं की शक्ति का परिचय मिल गया था। ६१४ ई० मे इन लोगो ने द्वितीय लोथेर से एक चिरस्थायी व्यवस्था-पत्र स्वीकार करा लिया था। इससे इनके अधिकारों की वृद्धि हो गई थी। व्यवस्था-पत्र मे बादशाह के मनमौजी कार्यों का विरोध किया गया था, बिना मुक़द्दमे के सज़ा देना, क़ानून के विरुद्ध आज्ञाएँ प्रचारित करना, मृतकों का माल-असबाब छीन लेना अथवा बच्चो और विधवाओं को अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह के लिए बाध्य करना आदि ऐसी सभी बातों की मनाही की गई थी।

किन्तु सबसे बड़ी बात, जिससे अमीरों का प्रभाव शिखर पर चढ़ गया, यह थी कि बादशाह को काउन्टर उसी काउन्टो के आदमियों से चुनना चाहिए। वह अपनी इच्छा के अनुसार किसी को काउन्टर नही बना सकता था। इस प्रकार अमीर लोग ही एक प्रकार से देश के शासक बन बैठे।

किन्तु यदि ऐसा हो जाता, तो वास्तव मे यह फ्रांस के लिए बड़े शोक की बात होती। क्लोविस ने इतने परिश्रम से जो दीवार खड़ी की थी, वह मानो एकबारगी गिर पडती। उसने भिन्न भिन्न दलो को मिला कर फ्रैंक-जाति मे एकता का सचार कर दिया था। और यदि अमीर-उमरा लोग फिर देश को आपस मे बॉट लेते, तो सचमुच यह देश के लिए दुर्भाग्य-सूचक होता। परन्तु सौभाग्यवश ऐसा न हुआ। राईन घाटी के दो बड़े बड़े घराने मिल गये और इनकी शक्ति इतनी बढ़ गई कि ये बादशाह को सिंहासन से उतार कर जब चाहते तब बादशाह बन बैठते। एक तो लेन्डेन का पिपिन-वंश Pippin of Landen था और दूसरा मेज़ के बिशप अरनफ Aranaf of Mehg का घराना था।

फ्रेंक-जाति के ऊपर केवल एक यही विपत्ति नहीं आई थी। फ्रैंक-जाति स्वयं दो भागों मे बॅटी जा रही थी। एक को हम पूर्वीय फ्रैंक कह सकते हैं और दूसरे को पश्चिमीय। राईन घाटी शुद्ध जर्मन-भूमि थी। फ्रैंको का प्राबल्य देख कर रोमन लोग स्वतः वहॉ से हट गये, जो बचे थे, वे इन्हीं लोगों मे मिल गये। किन्तु पश्चिम की ओर रोमन-जन-समाज की

अधिकता थी, इसलिए यहाँ जो फ्रैंक बसे उनकी वही गति हुई जो रोमन-प्रदेश मे अन्य निवासियो की होती थी। उनकी जातीयता नष्ट हो गई, उनकी भाषा और राजनैतिक विचारो मे भी महान परिवर्तन हो गया। वे रोमन-जाति मे मिल गये। यहाँ पर अब भी अमीर-उमराओं का प्रभाव बहुत कम था। दोनों भागों मे पृथक् पृथक् बादशाह थे। इन प्रदेशो का नाम भी अलग अलग हो गया था। एक का पूर्वीय ओस्ट्रेशिया और दूसरे का पश्चिमीय ओस्ट्रेशिया।

इनके अतिरिक्त मेरोविनजियनो के पतन-काल मे फ्रैंकों के पास और कुछ न रह गया था। ब्रिटेनी, एक्वेनटेन और बेवेरिया स्वतंत्र हो गये, इन्होने फिर अपनी गद्दी पर प्राचीन राजघरानो को बैठा लिया था। पिपिन और अरनफ के सम्मिलित घराने के सामने जो पीछे से करोलिनजियन-वश Carolingian के नाम से विख्यात हुआ। एक-साथ दो कठिन समस्याये उपस्थित थी। फ्रैंक-जाति की एकता और खोये हुए देशो को फिर जीतना।

स्वतंत्र और स्वच्छन्द बादशाहो के चारों ओर राजदरबारियों का एक ऐसा झुण्ड रहता है, जो, जब तक बादशाह शक्ति-शाली रहता है, तब तक उसकी हाँ मे हाँ मिलाया करता है, किन्तु जहाँ उसकी शक्ति क्षीण हुई, तहाँ वे स्वय बादशाह को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं। मेरोविनजियन बादशाहों के यहाँ भी ऐसे राजदरबारी थे जो पहले तो राज-महल के

प्रबन्धक मात्र थे, किन्तु उसका ह्रास होने पर वे भी राष्ट्र के कर्त्ता-धर्त्ता बन बैठे। केरोलिनजियनों ने इसलिए, सबसे पहले इसी प्रबन्धक कमेटी मे सम्मिलित होने का उद्योग किया। इसके लिए उन्हें परिश्रम भी ख़ूब करना पड़ा। अन्त मे पिपिन यंगर इस उद्देश मे सफल हुआ। वह ओस्ट्रेशिया का शासक बन बैठा, कुछ दिनों बाद ट्रेस्टी के युद्ध मे जीत कर उसने दो राज्यो को और अपने अधिकार मे कर लिया। किन्तु अभी तक इन्होने स्वतंत्रता ग्रहण नहीं की थी, ये ड्यूक कहलाते थे।

केरोलिनजियन ड्यूकों की प्रभुता बढ़ने से फ्रेंक-जाति को बड़ा लाभ हुआ। एक तो फ्रेंक-जाति मे पूर्वीय और पश्चिमीय विभेद कुछ दिनों के लिए शान्त हो गया, इसके अतिरिक्त फ्रांस देश के शासन मे शुद्ध जर्मन-भावों का प्रभाव अबाधित रूप से पड़ता रहा। केरोलिनजियन के अभ्युत्थान ने, यथार्थ मे, एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। कुछ ही दिनों मे इनका साम्राज्य रोम-साम्राज्य की टक्कर लेने लगा, यहाँ तक कि उसने स्वयं रोम-साम्राज्य का नाम, यद्यपि उसको जर्मन-साम्राज्य कहना अधिक उपयुक्त होता, ग्रहण कर लिया। इस साम्राज्य के संगठन, क़ानून और संस्थाओं मे जर्मन-भावों का प्राधान्य रहा, और वह केवल फ्रांस मे ही सीमाबद्ध नहीं हुआ, वरन् दूर दूर तक फैल गया।

चार्ल्स मेगनी......समस्त संसार के इतिहास का नायक है।—पृ० २७

प्रकरण ४

केरोलिनजियन और चार्लमेगनो

(THE CAROLINGIANS AND CHARLEMAGNE)

ट्रेस्टी की विजय से समस्त फ्रेंक-जाति हेरिस्टल के पिपिन के झण्डे के नीचे आगई थी। उसने संगठन के काम मे हाथ डाला ही था कि उसकी मृत्यु होगई। उसकी मृत्यु पर उसके पुत्र चार्ल्स मार्टल को, जो ७१४ मे अपने पिता के आसन पर बैठा, तीन-चार वर्ष तक अमीर-उमराओं के विरुद्ध जो कि इसे उखाड़ फेंकना चाहते थे, घोर युद्ध करना पड़ा। इधर जर्मन-जातियाँ भी फ्रांस पर आक्रमण कर रही थीं। दक्षिण पर धावा करने का जर्मनों को कुछ व्यसन सा होगया था। किन्तु मार्टल ने इस समय वह पराक्रम, साहस और बुद्धिमत्ता दिखाई कि उसके आगे सबको नीचा देखना पड़ा। इतना ही नहीं, किन्तु, उन प्रान्तों को, जो मेरोविनजियन के पतन-काल मे स्वतन्त्र हो गये थे, मार्टल ने हराया और अपने राज्य मे मिला लिया। इस प्रकार मार्टल ने फ्रेंक-जाति को फिर से मेरोविनजियन के अभ्युदय की सीमा तक पहुँचा दिया।

इतने ही काम से मार्टल का नाम इतिहास मे अमर हो

सकता था, किन्तु उसको एक ऐसा काम करना पड़ा जिससे उसकी लोकप्रियता और ख्याति कई गुना अधिक होगई। मुहम्मद साहब के बताये हुए धर्म से उत्तेजित होकर अरब देश के लोग चारो ओर साम्राज्य-विस्तार और स्वधर्म-प्रचार कर रहे थे। पश्चिम की ओर वे एटलान्टिक महासागर की ओर तक पहुँच गये थे, स्पेन को उन्होने जीत लिया और दक्षिणी फ्रांस को भी दबा लिया था। सन् ७३२ ई० मे उन्होने एक बृहत् सेना एकत्र करके फ्रेक-राजधानी लोयर पर आक्रमण करना चाहा। साम्राज्य-विस्तार उनका उतना प्रिय उद्देश न था जितना कि लूट-मार। परन्तु मार्टेल ने पोयटियर्स की लड़ाई मे अरबों को ऐसी करारी हार दी कि फिर उन्होने कभी फ्रांस पर आक्रमण करने का नाम नहीं लिया। जनता ने इस विजय को ही मार्टेल का सबसे बडा काम समझा। इसके लिए यथेष्ट कारण भी है। यदि इस युद्ध मे कही अरबों की विजय हो जाती, तो मानो उनके लिए यूरोप-विजय का खुला हुआ द्वार मिल जाता, क्योंकि फिर और कोई शक्ति उनकी बाढ़ को रोकने मे समर्थ न होती।

चार्ल्स मार्टेल का पुत्र पिपिन दी शोर्ट सन् ७४१ मे गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के संगठन-सम्बन्धी काम मे लगा रहा। तत्कालीन दो घटना-क्रमो से हमको यह ज्ञात हो सकता है कि भावी साम्राज्य के लिए उसने कितनी तैयारी कर दी थी।

पहली उल्लेखनीय बात फ्रेंक-चर्च का सुधार और संगठन था। यद्यपि क्लोविस के समय मे इन लोगों ने ईसाई-मत ग्रहण कर लिया था, तथापि अभी तक इनका जंगलीपन दूर नही हुआ था। विशप लोग ईसाई-धर्म के आचार्य नहो, वरन् अमीर थे। बादशाह और अमीर-उमरो की प्रतिद्वन्द्विता मे वे अमीरों का पक्ष लेते थे। केरोलिनजियन के समय मे, सच पूछा जाय तो, विशप लोग विद्वानो की अपेक्षा सिपाही और शिकारी कहलाने के अधिक योग्य थे। उनको रुपया-पैसा, ज़मीन-जायदाद की जरूरत होती थी, इसलिए कभी कभी तो प्रसिद्ध सिपाहियो को विशप के आसन पर प्रतिष्ठित कर देते थे। अतएव फ्रेंक-चर्च के सङ्गठन की बड़ी आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त इँग्लेण्ड के सेकशन लोग भी जर्मना मे रहनेवाले अपने भाई-बन्धुओ को ईसाई-मत स्वीकार कराने के लिए पादरी-प्रचारक भेज रहे थे। इधर केरोलिनजियन लोगों की रोमन-चर्च से भी घनिष्ठता बढ़ती जाती थी। पोप की अध्यक्षता मे रोमन-चर्च का सङ्गठन ऐसा दृढ़ और क्रमबद्ध था कि उससे न केवल धार्मिक मामलो मे वरन् राजनैतिक शासन मे भी सहायता मिलने की आशा थी। अतएव फ्रेंक लोगो ने बोनीफेस नामक एक सेकशन पादरी के परामर्श के अनुसार रोमन-पद्धति के अनुसार फ्रेंक-चर्च का सुधार और संगठन किया।

पिपिन के शासनकाल की दूसरी उल्लेखनीय घटना थी

केरोलिनजियनों का इटली और रोम मे प्रवेश । छठी शताब्दी के अन्त मे लोम्बार्ड लोगों ने इटली मे एक जर्मन-राज्य स्थापित कर लिया था। प्राचीन रोम-साम्राज्य की शक्ति नष्ट हो गई थी, यूनानी-साम्राज्य अब भी इटली मे कुछ अधिकार रखता था, किन्तु यथार्थ मे रोमन-साम्राज्य की भूमि पोप के हाथों मे थी। लोम्बार्ड लोग रोम पर अधिकार करना चाहते थे। इसका एक ही अर्थ हो सकता था कि पोप की शक्ति मिट्टी मे मिल जाय। पोप ने अपनी रक्षा के लिए रोम और यूनान-साम्राज्य से हताश होने पर कई बार फ्रैंक लोगो से सहायता माँगी थी। पिपिन ने उपयुक्त अवसर समझ कर इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। इटली मे जाने के पहले पिपिन ने पोप की सहायता से अपने वंश की प्रभुता बढ़ाने का एक और काम किया। यद्यपि वास्तविक राज-सत्ता पिपिन के हाथो मे आगई, तथापि अभी तक मेरोविनजियन बादशाह सिंहासन-च्युत नहीं किया गया था। इसलिए पोप ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से पिपिन को फ्रांस का बादशाह बनाया और मेरोविनजियन बादशाह के लम्बे बाल जो कि उस समय राज-चिह्न समझा जाता था, कटवाकर गद्दी से उतार दिया। जर्मन और ईसाई-पद्धतियों के अनुसार पिपिन बादशाह बनाया गया।

इस प्रकार सज-धज कर पिपिन ने दो बार इटली पर धावा किया और लोम्बार्डियों को पराजित करके इटली

के पूर्वीय किनारे का बहुत सा भू-भाग पोप को दान कर दिया। यह पोप की पहली जागीर थी। इस घटना का फ्रेंक-जाति के इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक तो यह कि इनमे और पोप मे मैत्री होगई और दूसरा यह कि रोम पर अधिकार करके फ्रेंक-जाति एक प्रकार से प्राचीन रोमन-साम्राज्य की उत्तराधिकारी बन गई।

सन् ७६८ मे पिपिन का देहावसान हो गया। ७७१ मे चार्लमेगनी अपने भाई की मृत्यु पर समस्त देश का स्वामी बना। चार्लमेगनी, वास्तव मे, फ्रांस के इतिहास का नायक नहीं है, वरन् समस्त संसार के इतिहास का एक उच्च नायक है। फ्रांस के अतिरिक्त जर्मनी मे भी उसका राज्य फैला हुआ था। इसी लिए, यदि सच पूछा जाय तो, वह फ्रेंक की अपेक्षा जर्मन अधिक प्रतीत होता है। किन्तु यूरोप के किसी वर्तमान राष्ट्र को उसे अपने अन्तर्गत करने का अधिकार नही है, क्योकि उस समय न तो वर्तमान फ्रेंच-राष्ट्र का और न वर्तमान जर्मन-जाति का ही उदय हुआ था।

चार्लमेगनी ने आजीवन युद्ध किया और सर्वत्र विजय पाई। उसके समय मे फ्रांस-राज्य का विस्तार बहुत हो गया था। उसने सेक्शन लोगो को जीता, स्पेन पर हमला किया, अवर्स, डेन्यूब और ऐडरियेटिक समुद्र के बीच की भूमि जीती और लोम्बार्डियों को पराजित किया। ये सब

महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु चार्लमेगनी की महत्ता किसी दूसरी ही बात मे थी। सन् ८०० ईसवी के बड़े दिन के अवसर पर सेंट पीटर के गिरजाघर मे पोप ने स्वय अपने हाथ से चार्लमेगनी को रोम के राज्य-सिंहासन पर बैठाया था। सब लोगों ने बड़े आनन्द से उसे रोमन-सम्राट् का पद देना स्वीकार किया था। सचमुच इसमे कुछ भी अनुचित न था। वह उस पद के सर्वथा योग्य था। उसका साम्राज्य बृहत् था, उसका संगठन सुदृढ़ था, उसका शासन अच्छा और उदार था। स्वय चार्ल को सम्राट् कहलाने से चाहे कोई लाभ हुआ हो या न हुआ हो, इससे एक बडा लाभ यह हुआ कि उसके साम्राज्य मे एकता का भाव फैल गया, सब लोग अपने को एक राजनैतिक सगठन के सदस्य समझने लगे।

चार्लमेगनी महान् कहलाता है, क्योंकि उसने अपनी प्रजा की भलाई और सुख-शान्ति के लिए बहुत उद्योग किया था। शिक्षा-प्रचार के लिए उसने पाठशालायें खुलवाईं किन्तु शिक्षकों के अभाव से बडी कठिनाई हुई। उस काल के सबसे प्रसिद्ध विद्वान् अलक्युन को इॅग्लेण्ड से बुला कर शिक्षा-सचिव बनाया। इटली से भी कुछ शिक्षक बुलाये गये। गिरजाघरों और पादरियो को अपने शिष्य-वर्गों को शिक्षा देने का आदेश दिया गया, जिससे पढ़ लिख कर ये लोग स्थान-स्थान मे पाठशालायें खोलें। यद्यपि इसका

प्रभाव बहुत कम हुआ, तथापि लेटिन भाषा की उन्नति अवश्य हुई।

इसी प्रकार उसने राजनैतिक संगठन को उन्नत किया। अभी तक काउन्टियों मे काउन्ट ही सर्वेसर्वा माने जाते थे, प्राय वे केन्द्रिक सरकार की उपेक्षा कर देते थे। इसलिए वह प्रत्येक वर्ष मे प्रत्येक काउन्टी को दो अफ़सर भेजता था, एक राजकर्मचारी और एक पादरी। वे वहाँ की सब हालत देखकर बादशाह को सुनाते, यदि कहीं कोई त्रुटि दिखाई देती, तो वह उसे तुरन्त दूर करने की चेष्टा करता। इतने बड़े साम्राज्य की देख-रेख करने का उस समय यही सबसे उत्तम उपाय था।

चार्लमेगनी के शासन मे एक और राजनैतिक संस्था का प्रारम्भ हुआ था। वह फ्यूडल-पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। फ्रांस के इतिहास मे इस सस्था ने बड़ा भाग लिया है।

प्रकरण ५

फ़्यूडल-सिस्टेम का विकास

चार्लमेगनी की मृत्यु के बाद उसके बृहत् साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। और तभी से वर्तमान फ्रास और फ्रेंच-राष्ट्र के वास्तविक निर्माण का श्रीगणेश हुआ। उसका पुत्र लुई दी पायस एक निर्बल बादशाह था। ८४० ई० मे उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र आपस मे लड़ने लगे। अन्त मे, ८४३ मे बरडन मे एक सधिपत्र तैयार किया गया, जिसके अनुसार उन्होने चार्ल के बृहत् साम्राज्य का बटवारा कर लिया। चार्ल्स को, फ्रांस मिला और लुई को जर्मनी। लोथेर को जो कि सबसे बड़ा था, सम्राट्-पद एवं इटली और राईन और रोन नदी की घाटी दी गई। इस संधिपत्र का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि पश्चिमीय यूरोप का राजनैतिक बटवारा हो गया। फ्रांस और जर्मनी का विच्छेद हो गया किन्तु उनके बीच जो राईन और रोन नदी की घाटी है, उसके लिए आज तक इन दोनो राष्ट्रों मे युद्ध चला आता है।

चार्ल्स के वंशधर सन् ९८७ ई० तक फ्रांस पर राज्य करते रहे। किन्तु जिस प्रकार डगोबर्ट के बाद मेरोविनजियन बादशाहों का पतन प्रारम्भ हो गया था, उसी प्रकार चार्ल्स के

बाद केरोलिनजियन-वश का पतन शुरू होगया। परन्तु इनके पतन का कारण इनका दौर्बल्य नही था, अधिकांश कारण यह था कि इस समय चारों ओर से लोग फ्रांस पर आक्रमण कर रहे थे। इनमे उत्तर के नोर्थमैन सबसे मुख्य थे। चार्ल महान के समय मे ही इनका उत्पात शुरू हो गया था। जब फ्रास के बादशाह इनको भगाने मे समर्थ न हुए तब सन् ६११ मे चार्ल्स दो सिम्पेल ने इस शर्त पर कि वे ईसाई-मत और सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर लें तो फ्रांस के उत्तरी भाग मे स्थायी रूप से बस जावे। उन्होंने, कुछ ही दिनो मे नोरमेण्डी मे एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। इनकी देखा-देखी फ्रांस के अन्य अमीर-उमरा भी स्वतंत्र होने की चेष्टा करने लगे। एक्वेनटेन, टोलास, ब्रिटेनी, फ्लेडर्स, बरगैण्डी, एञ्जो आदि प्रान्त राजाज्ञा की उपेक्षा करने लगे। इन सबमे रोबर्ट दी स्टोग का वंश सब से प्रबल था, क्योंकि ये लोग नोरमेंडी को दबाने की बराबर चेष्टा करते थे। देश को इस समय नोरमेण्डो से बचने की बड़ी आवश्यकता थी। इनकी राजधानी पेरिस थी। अमीर-उमराओ का इस प्रकार अपनी अपनी स्वतन्त्र जागीरे बना लेने की प्रथा फ्रांस के इतिहास मे फ्यूडल-पद्धति के नाम से विख्यात है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि इस फ्यूडल-सिस्टेम के उदय होने का क्या कारण था। यह तो प्रत्यक्ष है कि उस समय राजा-महाराजा अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए अमीर-

उमराओ पर जिनके पास थोड़ी थोडी सेनायें रहती थीं, अवलम्बित रहते थे और यह प्रथा केवल केरोलिनजियन बादशाहो के समय मे नही थी, वरन् रोमन-बादशाहो के शासन-काल मे भी इसका अंकुर विद्यमान था। जब केरोलिनजियन बादशाह शक्तिहीन होगये, तब अमीर-उमराओ की शक्ति का बढना स्वाभाविक था। किन्तु इसके अतिरिक्त इसका एक और कारण था। वह सामाजिक कहा जा सकता है। मनुष्य को अपनी जान और माल की रक्षा की सबसे अधिक चिन्ता रहती है। इसके लिए वह सब कुछ त्याग सकता है। जब साम्राज्य का प्रबन्ध शिथिल होगया, तब इन अमीर-उमराओ ने अपने महलो मे कुछ नवयुवको और सैनिकों को एकत्र करके अपने पड़ोसियो की रक्षा का प्रबन्ध किया। परन्तु ये लोग मुफ़्त मे ही यह कष्ट नहीं उठाते थे। उनसे कर वसूल करते थे, अथवा उनकी ज़मीन लेकर अपनी जागीरे बढ़ा लेते थे। हाँ, पीछे से इन्ही लोगों को अपनी ओर ज़मीन जोतने को देते थे। यही उनकी शक्तियो के बढ़ने का रहस्य है।

जान और माल की रक्षा के अतिरिक्त जन-साधारण को न्याय की आवश्यकता होती है। केन्द्रिक शासन के शिथिल हो जाने से स्थानीय न्यायालय और पञ्चायत भी शिथिल पड़ गये थे। इसलिए यही अमीर उनके संचालक बन बैठे, और अपने निवास-स्थान मे एक सर्वोच्च न्यायालय अपनी इच्छा के अनुसार स्थापित कर लिया। यहाँ तक कि उन लोगों ने

अपनी जागीरो के लिए अपने सिक्के भी बनवा लिये। यदि केन्द्रिक शासन पुष्ट होता, तो ये इस कार्य मे कभी समर्थ न होते।

इन रियासतों के निर्माण के विषय मे दो बातों को और जान लेना आवश्यक है। एक तो यह कि फ्रैंक के शासन-प्रबन्ध मे काउन्ट को आवश्यकता से अधिक स्वन्तत्रता दी गई, वह काउन्टी मे केन्द्रिक सरकार का प्रतिनिधि माना जाता था। इसलिए केन्द्रिक सरकार के कमज़ोर होने पर भी वह बराबर शासक के पद पर डटा रहा, मतलब यह कि वह स्वयं बलशाली बन गया। इन्ही काउन्टरों ने कुछ दिनों मे अमीरों का रूप धारण कर लिया। दूसरी बात यह है कि फ्यूडल-पद्धति का विकास बहुत ही धीरे-धीरे कई शताब्दियों मे हुआ। रोमन-साम्राज्य के पतन मे ही इसके लक्षण दिखाई देने लगे थे। किन्तु मेरोविनजियन-वंश के शक्तिशाली बादशाहो ने कुछ दिनों के लिए इसको दबा दिया। जब मेरोविनजियन के पतन-काल मे फिर इसका उदय हुआ तो केरोलिनजियन बादशाहों ने इसको फिर दबा दिया, किन्तु अब की बार जब फिर इसका ज़ोर बढ़ा, तब इसने प्रबल रूप धारण कर लिया।

धीरे-धीरे प्रायः समस्त फ्रांस छोटी छोटी रियासतों मे बँट गया। क्योंकि इस समय ऐसा होना अनिवार्य था। इसके बिना जनता की रक्षा असम्भव थी। किन्तु केरोलिनजियन

राज्य-वंश के लिए इस प्रथा ने कुठाराघात का काम किया। इनकी शासन-पद्धति उन्हीं प्राचीन जर्मन-भावों के अनुसार थी, उसमे फ्यूडल अमीरों के लिए कोई स्थान नहीं था। अतएव पहले दक्षिणी फ्रांस ने और फिर उत्तरी फ्रांस ने बादशाहों की आज्ञाओं की अवहेलना शुरू कर दी। अन्त मे, फ्रांस के राज्य-सिंहासन पर एक नया राज्य-वंश प्रतिष्ठित हुआ।

प्रकरण ६

केपशियन-राज्य-वंशावली

केरोलेनजियन-राज्य के पतन-काल मे जिस राज्य-वंश का अभ्युदय हुआ था, उसका नाम केपशियन है। इस वंश के उत्पत्ति के विषय मे कोई प्रामाणिक लेख नही। किंवदन्तियाँ तो कहती हैं कि ये किसी क़साई की सन्तानों मे से थे। किन्तु इनमे अधिक तथ्य नही मालूम होता। शायद इस वंश की उत्पत्ति सेक्शन-जाति से हुई थी। इस वंश की उन्नति प्रारम्भ मे असाधारण तेज़ी से हुई थी, शायद इसी लिए ऐसी अनर्गल किंवदन्तियाँ चल पड़ी। राबर्ट दी स्ट्रोंग इस वंश के सबसे पहले ऐतिहासिक प्रवर्तक हैं। इन्होंने बड़ी तत्परता और सफलता से लोइन और सीन नदी के बीच के भूभाग की रक्षा की थी। बस, यही इस वंश के अभ्युदय का रहस्य है। इसके फलस्वरूप बहुत से ताल्लुक़े इनके अधीन हो गये। वास्तव मे ये लोग केरोविनजियन-वंश के अन्तिम बादशाह से कहीं अधिक प्रभावशाली हो गये।

ह्यग दी ग्रेट, जो इसी वंश का ड्यूक था, यदि चाहता तो केरोविनजियन-वंश के बादशाह को सिंहासनच्युत करके स्वयं बादशाह बन बैठता, किन्तु उसने ऐसा न किया। हाँ, धीरे

धीरे उसने बादशाह की सारी शक्तियाॅ अपने हाथ मे कर ली। इस समय फ्रांस मे फ्यूडल सेस्टेम (विधान) का विकास हो रहा था। इस विधान मे चर्च अर्थात् धार्मिक नेताओ का बड़ा उच्च स्थान है। इनका कार्य-क्षेत्र केवल धार्मिक क्रियाओ मे ही संकुचित नहीं था। इनके हाथ मे शक्ति थी। ये राजाओं को बनाने-बिगाड़नेवाले थे। ये लोग केरोविनिजियनो को राज्य-कार्य के उपयुक्त नहीं समझते थे क्योकि एक तो ये दुर्बल थे और दूसरे इनकी नसों मे अधिकतर जर्मनी रक्त प्रवाहित हो रहा था। इसलिए इन लोगो की सहायता से सन् ९८७ में हृग दी ग्रेट का पुत्र हृग केपर फ्रांस का बादशाह बन बैठा।

यद्यपि वह फ्रांस का बादशाह कहलाता था, तथापि उस समय "बादशाह" शब्द का वह अर्थ नही था जो साधारणतः समझा जाता है। प्राचीन काल के बादशाह ही राज्य के सर्वस्व होते थे। फ्रांस में ऐसा स्वतत्र और शक्ति-सम्पन्न सबसे पहला बादशाह १४ वाॅ लुई हुआ है। केपट की दशा इससे सर्वथा भिन्न थी। बादशाह बनने से उसकी शक्ति मे कोई वृद्धि नहीं हुई थी, हाॅ अधिकार निस्संदेह कुछ बढ़ गया था। यदि उसमे शक्ति होती तो वह फ्रांस के समस्त ताल्लुक़ेदारों पर आधिपत्य जमा सकता था। किन्तु शक्ति और साधन तो उसके पास केवल वे ही थे जो वह अपने पैतृक ताल्लुक़े से प्राप्त कर सकता था। इसलिए बड़े बड़े फ्यूडल लार्ड, ड्यूक अथवा ताल्लुक़ेदार पूर्वकालीन फ्रैंक मेरोविनजियन अथवा केरोविनजियन

बादशाहों की भाँति केपट की आज्ञाओं का पालन नहीं करते थे।

फ्रांस इस समय तीन वर्गों मे बँटा हुआ था। ये वर्ग जातियों से मिलते-जुलते हैं। वर्ग-भेद मनुष्य के व्यवसाय के ऊपर निर्भर था। सबसे पहला वर्ग धर्म-प्रचारकों और धार्मिक जीवन व्यतीत करनेवालो का था, दूसरा वर्ग युद्ध-वीरो का था, जिनका काम शत्रुओं से लड़ना था और तीसरा वर्ग श्रमजीवियो का था। वास्तव मे यही अन्य वर्गों का आधार था, क्योकि हाथ-पैर से कमानेवाला उस समय केवल यही एक वर्ग था, किन्तु यही सबसे नीचा समझा जाता था। हाथ-पैर से काम करना अथवा कोई ऐसा पेशा ग्रहण करना जिससे किसी प्रकार की धनोत्पति हो सके, उस समय बहुत ही निन्द्य समझा जाता था। तीसरा वर्ग स्वयं दो दलो मे विभक्त था। एक का नाम था विलेन और दूसरे का सर्फ़। यद्यपि इन दोनो के बीच कोई ऐसी अकाट्य भित्ति न थी जिससे एक दल के लोग दूसरे दल मे न प्रवेश कर सके, तथापि दोनों दल स्पष्ट थे और उनके सदस्य पृथक् पृथक् पहचाने जा सकते थे। विलेनों का स्थान सर्फ़ों से ऊँचा था और इसी लिए शायद वे उस समय 'स्वतंत्र पुरुषो' के नाम से पुकारे जाते थे। किन्तु वास्तव मे इस स्वतंत्रता का कोई अधिक मूल्य न था। ये लोग ड्यूक लोगों से अपने जोतने के लिए ज़मीन लिया करते थे। उसके बदले मे उन्हे समय समय पर कुछ

रुपया ड्यूक लोगो को देना पड़ता था, साथ ही वर्ष मे कुछ दिनों के लिए ड्यूक लोगो के खेतो पर बिना मज़दूरी काम भी करना पड़ता था। सर्फ़ लोगो को भी यह अधिकार प्राप्त था। वे भी खेत जोतते थे और ड्यूकों की बेगार करते थे। किन्तु विलेनों और सर्फ़ों के अधिकारो मे एक अन्तर था। वह यह है कि विलोनों के विषय मे तो यह पूर्ण रूप से निश्चित था कि अमुक खेत लेने से उसको वर्ष भर मे इतना लगान देना पड़ेगा और इतने दिन बेगार मे काम करना होगा। उससे अधिक ड्यूक कुछ नही ले सकता था। किन्तु सर्फ़ों के विषय मे यह बात सर्वथा अनिश्चित थी। सच पूछा जाय तो सर्फ़ लोग ड्यूक लोगो की व्यक्तिगत सम्पत्ति मे परिगणित किये जाते थे। न तो वे ज़मीन छोड़कर भाग सकते थे और न ड्यूक ही उनसे ज़मीन छुड़ा सकते थे। परन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्तर्गत होने के कारण ड्यूक अपने सर्फ़ों से मनमाना काम ले सकते थे। उनके पास जो कुछ होता था, वह वास्तव मे ड्यूक का ही समझा जाता था। यदि कभी कोई सर्फ़ भाग जाता था तो वह पकड़ कर बुला लिया जाता था। हॉ, यदि उसको भागे हुए एक वर्ष से अधिक बीत जाता तो फिर उसको कोई नहीं पकड़ सकता था। इस प्रकार यद्यपि सर्फ़ों की अवस्था प्राचीन ग़ुलामो से बहुत अच्छी नहीं थी, तथापि हम उनको ग़ुलाम नहीं कह सकते। उनको मकान बनाने, ब्याह-शादी करने और बाल-बच्चे पालने का अधिकार था, किन्तु वे अपने स्वामी के

राज्य के बाहर शादी नहीं कर सकते थे। इसके लिए उन्हे एक विशेष कर देना पड़ता था, क्योंकि इस प्रकार ड्यूक की प्रजा मे कमी होने की सम्भावना थी। अस्तु, इस विचार को दृढ़ करने का पूर्णरूप से प्रयत्न किया जाता था कि सर्फ़ का शरीर और उसकी सारी सम्पत्ति ड्यूक की सम्पत्ति है। यह उनकी केवल उदारता थी जो कि वे उसे उसका उपयोग कर लेने देते थे। किन्तु इस दशा मे भी ड्यूक को सर्फ़ों की सुविधा का ध्यान रखना पड़ता था जिससे वे अन्य ड्यूकों के इलाक़ों मे शरण न लें।

इन सब बातों के होते हुए भी फ्यूडल सिस्टेम के समय मे तीसरे वर्ग के अधिकारो मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। सबसे पहले विलेन और सर्फ़ का भेद मनुष्यों के ऊपर से हटाकर ज़मीन पर लगा दिया गया।

अर्थात् ड्यूक की उस ज़मीन के, जो वे दूसरों को जोतने के लिए देते थे, दो भाग कर दिये गये। एक का नाम रक्खा गया स्वतंत्र जोत और दूसरे का परतंत्र जोत। यदि कोई विलेन परतंत्र जोत को जोतने लगता था तो कालान्तर मे उसके सर्फ़ हो जाने की सम्भावना हो जाती थी। इसी प्रकार यदि कोई सर्फ़ स्वतंत्र जोत जोतता था तो उस समय के लिए वह कम से कम अवश्य विलेन मान लिया जाता था। कालान्तर में वह पक्का विलेन हो सकता था।

दूसरी बात यह थी कि उस समय प्रथा ही क़ानून थी।

अर्थात् प्रथाओं के अनुसार ही क़ानून बनते थे। यदि किसी ड्यूक ने लगातार कई वर्षों तक अपनी रिआया से बेगार न ली अथवा ली तो वर्ष मे केवल कुछ नियमित अवसरो पर, तो कालान्तर मे यह प्रथा इतनी पक्की हो जाती थी कि वह क़ानून का रूप धारण कर लेती थी। इच्छा करने पर भी फिर ड्यूक उन लोगो से अधिक बेगार नहीं ले सकता था। तीसरी बात जो तीसरे वर्ग की दशा सुधारने मे सहायक हुई, वह एक आर्थिक समस्या थी। विलेन हों चाहे सर्फ़, इन लोगों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी। इसलिए ड्यूक लोगों को, यदि उन्हें कोई नवीन इलाका तोड़ना होता था तो इन लोगों को अधिक सुविधाजनक रीति से रखना पड़ता था, जिससे दूसरे ड्यूकों के लोग उनके यहाँ भाग आते थे। बस, इन्हीं सब कारणों से तीसरे वर्ग की अवस्था मे उन्नति होती रही, यहाँ तक कि फ़्यूडल सिस्टेम का अन्त होते-होते फ्रांस से सर्फ़-प्रथा बिलकुल उठ ही गई।

फ्यूडल-सिस्टेम के आदिकाल मे दिहाती जनता और शहरों मे बसनेवाली जनता मे कोई अन्तर न था। प्रत्येक शहर किसी न किसी ड्यूक की अध्यक्षता मे रहता था। उसमें भी विलेन और सर्फ़ होते थे। उनको भी ड्यूक या लार्ड लोगों को कर देना पड़ता था। इसलिए नहीं कि वे खेत जोतते थे वरन् इसलिए कि वे उनकी रियासत मे व्यापार करते थे। यदि कोई लार्ड उनको और कोई विशेष

सहायता देता था तो नागरिको से अतिरिक्त कर लिया जाता था। किन्तु ज्यों ज्यो नागरिकों की संख्या बढ़ती गई, नगर धन-धान्य-पूर्ण होते गये, त्यों त्यो नागरिक लोग अपने स्वतंत्र संगठन बनाने लगे, जिसके फलस्वरूप उनको दिहाती जनता से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होने लगी। कहीं कहीं पर तो यही संगठन जो कम्यून के नाम से प्रसिद्ध थे, सामूहिक रूप से ड्यूक लोगो के वैस्सल बन जाते थे अर्थात् उनकी गणना तृतीय वर्ग मे न होकर द्वितीय वर्ग मे होने लगती थी। किन्तु स्वयं फ्यूडल-सिस्टेम के द्वारा यह उन्नति नहीं हो रही थी। उसके सिद्धान्त तो इनके सर्वथा विपरीत थे। परिस्थिति से बाध्य होकर नागरिक जनता ने ये अधिकार छीन लिये थे।

प्रथम और द्वितीय वर्ग फ्यूडल-समाज की उच्च श्रेणियाँ थीं। प्रथम वर्ग को शीर्षस्थान केवल आध्यात्मिक कारणों के द्वारा मिला हुआ था। किन्तु फ्रांस के वास्तविक शासन की बागडोर सचमुच इस समय द्वितीय वर्ग के हाथ मे थी। बादशाह तो केवल नाम-मात्र का बादशाह था। द्वितीय वर्ग मे भी नई श्रेणियाँ थीं। सबसे ऊपर नोबिल थे जिनको अपनी रियासत के लिए, चाहे वह कोई बड़ा भारी इलाक़ा हो और चाहे केवल दस बीस एकड़ ज़मीन, बादशाह को सैनिक सेवा प्रस्तुत करनी पड़ती थी। नोबिल लोग भी अपनी ओर से अपनी रियासत की कुछ ज़मीन सैनिक सेवा के वचन पर अन्य

लोगों को लगा दिया करते थे। इसी प्रथा के अनुसार द्वितीय वर्ग मे क्रमशः बहुत सी श्रेणियाँ हो गई थी जैसे बैरन, काउन्ट, बिसकाउन्ट, लार्ड आदि। इनमे से प्रत्येक अपने से उच्च श्रेणीवाले का, जिससे उसको जमीन प्राप्त होती थी, बैस्सल कहलाता था। जैसे बिसकाउन्ट काउन्ट का, काउन्ट बेरन का, बेरन नोबिल का। यहाँ तक कि स्वयं बादशाह भी ईश्वर का बैस्सल माना जाता था।

सैनिक सेवा के अतिरिक्त बैस्सल लोगों का अपने स्वामियो के प्रति एक और कर्त्तव्य था। उनको अपने स्वामी के दरबार मे उपस्थित होना पड़ता था। किन्तु यह अधिकार सब नोबिलों को नही प्राप्त था। जिन नोबिलों के यहाँ दरबार लगता था उनको कई लाभ थे। एक तो यह कि वे आसानी से अपने बैस्सलो पर नियन्त्रण कर सकते थे, दूसरे यह दरबार न्यायालय का भी काम करते थे। प्रभावशाली होने पर इन्हीं से व्यवस्थापक सभाओं का भी काम लिया जाता था। इसके अतिरिक्त लार्डों को इन दरबारों से आर्थिक लाभ था क्योकि वादी प्रतिवादी आदि से जुरमाने के रूप मे वसूल किया हुआ धन इन्हीं के पास रह जाता था। अतएव ये लोग दरबार चलाने के लिए सदैव लालायित रहते थे।

इसके अतिरिक्त चार अवसरो पर बैस्सलो को अपने स्वामियों की आर्थिक सहायता भी करनी पड़ती थी।

एक तो यदि कारणवश अपना स्वामी शत्रुओं-द्वारा क़ैद कर लिया गया हो तो उसको छुड़ाने के लिए, दूसरे अपने स्वामी की सबसे बड़ो पुत्री के विवाह के निमित्त, तीसरे अपने स्वामी के सबसे बड़े पुत्र का नाइट-संस्कार कराने के लिए और चौथे यदि अपना स्वामी किसी धार्मिक युद्ध के लिए जा रहा हो। इन सबके अतिरिक्त बैस्सलों को अपने पिता की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनने के लिए एक विशेष कर देना पड़ता था। यदि कहीं किसी इलाक़े का बैस्सल नाबालिग़ होता तो उसका स्वामी ही उसके बालिग़ होने तक उस इलाक़े को सँभालता था, इसी प्रकार उसकी स्वामिनी कोई अविवाहित लड़की होती तो उसका स्वामी उसके लिए वर खोजा करता था।

केपशियन-राज्य-वंश के प्रथम बादशाद इसी प्रकार के बादशाह थे। वे पेरिस और ओरलियन्स प्रान्त के ड्यूक भी थे और बादशाह भी थे। बादशाहत का तो उस समय केवल नाम ही नाम था। उनकी असली शक्ति उनके इलाक़े पर ही निर्भर थी। उसके भी दो भाग थे। एक भाग तो स्वयं ड्यूक के लिए बिलेन और सर्फों द्वारा जोता-बोया जाता था, और दूसरा वे अपने बैस्सलों को दिये हुए थे, किन्तु इनमे बहुत से बैरन बहुत ही स्वतंत्र और प्रभावशाली थे। अतएव बादशाह के सामने सबसे पहली यही समस्या उपस्थित थी कि वह किसी प्रकार इन लोगों को बादशाह की हैसियत से

अपने अधिकार मे लावे, जिससे मध्यम वर्ग के सभी ताल्लुकेदार यह समझने लगें कि उनका स्वामी कोई उच्चतर लार्ड या स्वामी नही है, वरन् स्वयं बादशाह उनका अधिपति है। इस कार्य मे पहले बादशाहो को बडो कठिनाई उठानी पड़ी, किन्तु धीरे धीरे फ्रास से विशाल और शक्तिशाली बैरनो का लोप होने लगा और इस प्रकार बादशाह और मध्यम वर्ग के सदस्यो के बोच सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया।

केपशियन राज्य-वंश के प्रथम बादशाह हगकेपट ने केवल नव वर्ष तक शासन किया। वास्तव मे उसका सारा समय इसी बात मे बात गया था कि सब लोग उसकी बादशाहत को स्वीकार करने लगें। उसका सबसे बड़ा प्रतिद्वन्द्वो लोरेन का ड्यूक था। यह केरोविजन वंश के अन्तिम बादशाह का चाचा था। रीमूस के आर्च विशप की प्रभावशाली सहायता भी इसको प्राप्त थो। किन्तु केपट ने दो वर्ष के निरन्तर युद्ध के बाद चार्ल्स को नीचा दिखा दिया और कैद कर लिया। इतना ही नही, उसने रीम्स के आर्च विशप को भी गद्दी से उतार कर उसके स्थान पर अपने पक्ष का एक विशप बैठाया जो कुछ दिनों बाद पोप-द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। केपट ने इस डर से कि कहीं मेरे बाद मेरे पुत्र को राज-सिहासन पर बैठने मे कठिनाई न हो, इसलिए अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष मे ही उसने अपने पुत्र राबर्ट का युवराज बना दिया, किन्तु राबर्ट को कोई कठिनाई नहीं हुई। क्योंकि

अभी तक बादशाहों के हाथ मे कोई वास्तविक सत्ता नही आई थी।

बैस्सल लोगो ने अभी तक पूर्ण रूप से बादशाह की अधीनता नही स्वीकार की थी। उत्सव या किसी राजकीय समारोह के समय तो बड़ो बड़ो संख्याओ मे उपस्थित होते थे, किन्तु यदि युद्ध आदि जैसा कोई महत्त्वपूर्ण काम पड़ जाता था तो बहुत से सूरत भी नहीं दिखाते थे। उनको दण्ड देने के लिए न तो बादशाह मे यथेष्ट शक्ति थी और न कोई उपयुक्त क़ानून। प्राचीन क़ानून सब छिन्न-भिन्न हो रहे थे। प्रत्येक प्रान्त अपने नये नये क़ानूनो के निर्माण मे जुटा हुआ था। सम्पूर्ण राज्य के लिए कोई बृहत् राष्ट्रीय कोर्ट (कचहरी) नही थी जिसमे बड़े बड़े मुक़द्दमे अथवा अपोलों का निर्णय हो सके। बैस्सलों की कोर्ट मे बादशाह हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। परन्तु सबसे बडा विपत्ति यह थो कि बादशाह के पास कोई कोष नही था। अपने ही इलाक़े से जो कुछ मिल जाता था, उसी से उसे काम चलाना पड़ता था, इसके अतिरिक्त वह अपनी बादशाहत से और कोई कर नहीं वसूल कर पाता था।

ऐसी दीनावस्था मे सन् ९९६ मे राबर्ट राज्य-सिंहासन पर बैठा। और सन् १०३१ तक राज्य करता रहा। इसका स्वभाव भी अच्छा था। साथ ही इसमे कार्य-क्षमता भी यथेष्ट थो। यद्यपि यह स्वयं राज्य की नींव सुदृढ़ करने मे

बहुत सफल नहीं हुआ, तथापि इसने वह नीति निर्धारित कर दी थी जिसका उसके उत्तराधिकारी बराबर अनुगमन करते रहे। केपशियन-वंशधरों को फ्यूडल-सिस्टेम की बादशाहत बिलकुल पसन्द न थी। वे तो फ्रांस मे अपनी वैसी ही स्वतंत्र और स्वछन्द बादशाहत चाहते थे जैसी कि उनके पहले फ्रेक लोगों ने वहाँ स्थापित की थी। रोम-साम्राज्य के संगठन के भी वे लोग स्वप्न देखा करते थे। साराश यह कि यद्यपि उस परिस्थिति में वे उस प्रकार का स्वतत्र राज्य स्थापित करने मे असमर्थ थे, तथापि वह उनका अन्तिम आदर्श था और उसी की ओर, धीरे धीरे ही सही, वे बढ़ अवश्य रहे थे।

इस उद्देश की सफलता के लिए राबर्ट ने सबसे पहले अपनी चचेरी बहन बर्था से शादी की, क्योंकि उसका पहला पति उसके नाम एक बड़ी जागीर छोड़ गया था। किन्तु दुर्भाग्यवश चर्च (धार्मिक आचार्यों) को यह विवाह रुचिकर न हुआ, यद्यपि चर्च इस प्रकार के बीसो विवाहो को अपनी स्वीकृति दे चुका था। अतएव राबर्ट को यह विवाह-बन्धन तोड देना पडा। वरगेंडो के ड्यूक के कोई सन्तान नहीं थी। इसी बीच मे उनकी मृत्यु हो गई। इसलिए राबर्ट ने उनकी जागीर को शाही इलाके मे मिलाने की चेष्टा की। फिर क्या था, भीषण युद्ध छिड़ गया। परन्तु राबर्ट ने १४ वर्ष के युद्ध के बाद उसे अपने अधीन कर ही

लिया। उसने जर्मनी से लोरेन-प्रान्त निकालने का भी उद्योग किया। इसी प्रकार बहुत सी छोटी-मोटी जागीरों को मिलाकर उसने शाही इलाका पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा दिया।

राबर्ट की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हेनरी प्रथम सन् १०३१ मे राज्यासन पर बैठा। किन्तु बरगेंडो प्रान्त उसके भाई के लिए शाही इलाके से पृथक् कर दिया गया। इस प्रकार सच पूछा जाय तो राबर्ट की सारी कमाई मिट्टी मे मिल गई। पर हेनरी भी बड़ा बहादुर और साहसी था। उसने नोरमेंडी को अपने अधीन करने का विचार किया। यद्यपि अभी तक नोरमेंडी केपशियन लोगो का साथी और मित्र था तथापि वह अपने अन्तरंग शासन मे उसी प्रकार स्वतंत्र था जिस प्रकार जर्मनी। नोरमेंडी ने दृढ़ता से इनका सामना किया। एक बालक ने, जिसका नाम विलियम था और जो कुछ काल के पश्चात् विलियम दी कन्करर (विजेता) के नाम से हुआ, दो युद्धो मे बादशाह को बहुत नीचा दिखाया। इसलिए हेनरी को अपना विचार त्याग देना पड़ा। इसमे सन्देह नहीं कि यदि विलियम न होता तो हेनरी नोरमेंडी पर आधिपत्य जमा ही लेता। और इसी लिए यह पारस्परिक पीढ़ी दर-पीढ़ी चलने लगा।

हेनरी ने एक रूसी शाहज़ादी से शादी की थी। रूसी ज़ार अपने आपको प्राचीन मेसोडोनिया के बादशाहो के

वंशज बतलाते थे। इस सम्बन्ध से उसके फिलिप प्रथम नामक पुत्र हुआ था। इतिहास मे फिलिप अच्छे रूप मे नही चित्रित किया गया है। इसका कारण यह है कि चर्चवालों से उसकी नहीं पटती थी और उस काल मे पुस्तकें, इतिहास लिखना एक-मात्र उन्ही के हाथ मे था। किन्तु फिलिप को हम किसी प्रकार आलसी या निकम्मा नहीं कह सकते। उसने बड़ी तत्परता से नोरमेडो-युद्ध जारी रक्खा और उसीकी नीति के अनुसार इन दोनों दलों मे बराबर सौ वर्ष तक युद्ध चलता रहा। बात यह थी कि सन् १०६६ मे नोरमेडी का ड्यूक इँग्लेण्ड का बादशाह बन बैठा था। फिलिप की इच्छा थी कि इस समय नोरमेडो को उसके हाथ से निकाल लेना परमावश्यक है। वह जानता था कि जब तक हम अपने समीपवर्ती बैस्सलों को पूर्णरूप से अपने अधीन नही कर लेते तब तक हम दक्षिण के प्रभावशाली बैरनों को कदापि अपने वश मे नहीं कर सकते। बड़े-बड़े बैरनों की बात नहीं, छोटे-छोटे बैरन भी इतने स्वतत्र हो गये, उन्होंने अपने आपको क़िलेबन्दी आदि से इतना सुरक्षित कर लिया था कि वे बादशाह की उपेक्षा करने से नही डरते थे। फिलिप ने वास्तव मे इस बृहत् कार्य का श्रीगणेश-मात्र किया, किन्तु इसमे संदेह नही कि उसके अन्तिम काल मे शाही इलाक़ा उसके शासन-काल के प्रारम्भ की अपेक्षा बड़ा और अधिक सुदृढ़ था। फ़िलिप के शासन-

काल की दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक घटना का तो फ्रांस के भविष्य पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। यह घटना नोरमेंडी के ड्यूक विलियम दी कन्करर-द्वारा इँग्लेण्ड का जीता जाना है, जिसका पहले ही उल्लेख हो चुका है। इस घटना के द्वारा इँग्लेण्ड के बादशाहों और फ्रांस के फ्यूडल बैरनों के बीच ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो गया जो बहुत दिनों तक चलता रहा। उसके प्रारम्भ-काल मे ही ऐसा मालूम होता था कि ऐसे प्रकट विरोध के सामने केपशियन लोग कभी फ्रांस का सुदृढ़ संगठन न कर पायँगे। और बीच बीच मे तो ऐसी शंकायें उठ खड़ी होती थीं मानो केपशियन-राज्य-वंश किसी प्रकार फ्रांस के राज्यसिंहासन पर टिक ही नहीं सकता। किन्तु केपशियनो के इस प्रबल विरोध का एक बड़ा सुफल हुआ। फ्रांस मे एक राष्ट्रीयता का भाव जाग्रत हुआ। उत्तर, दक्षिण, सभी दिशाओं के लोग मित्रभाव से केपशियन-बादशाहों के चारों ओर एकत्र होने लगे।

दूसरी घटना यह है कि सबसे पहला क्रूसेड इसी के शासन-काल मे गया था। क्रूसेड को हम धार्मिक युद्ध या जिहाद कह सकते हैं। यूरोप के ईसाई-धर्मावलम्बी पेलेस्टाइन मे अपने धार्मिकस्थानों की रक्षा के लिए विधर्मियों से युद्ध करने के लिए जाया करते थे। समस्त यूरोप के उत्साही और कट्टर ईसाई इनमे सम्मिलित होते थे। बैरनों ने बड़े हर्ष से इन युद्धों में भाग लिया था। फल यह हुआ कि उनकी

सेनाओं को बहुत से निर्भय शूरमाओं से हाथ धोना पड़ा। और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से इन युद्धों के द्वारा केपशियनो को लाभ ही हुआ।

सन् ११०८ मे फ़िलिप का शासन-काल समाप्त हो गया। यद्यपि इस समय तक केपशियन-राज्यवश ने फ्रांस मे राज्यतंत्र स्थापित करने मे कोई विशेष सफलता नही प्राप्त की थी, तथापि उनका ध्येय स्पष्ट होगया था। वास्तव मे वर्तमान फ्रेंच-जाति और फ्रेंच-राष्ट्र के निर्माण और संगठन का अधिकांश श्रेय वहाँ के बादशाहो को ही प्राप्त है। क्योकि इस समय फ़्रांस जिन फ्यूडल भागों में बँटा हुआ था उनको हम कदापि किसी एक राष्ट्र का अंग नही कह सकते थे, प्रत्युत उनको स्वतत्र राज्य कहना ही अधिक उचित मालूम होता है। क्योंकि दिन-प्रति-दिन उनकी भाषा, वेष-भूषा, रहन-सहन, क़ानून आदि मे अन्तर बढ़ता जाता था। यदि ये बादशाह उद्योग न करते तो यह कब सम्भव था कि फ़्रांस एक राष्ट्र होता, उसके नागरिकों मे एक ही राष्ट्रीय भाव रहता, सारे फ़्रांस मे एक भाषा का प्रचार होता। इससे आगे की छः शताब्दियों मे बादशाहो ने यह काम सफलता-पूर्वक करके दिखला दिया। बादशाहों की ऐसी सुन्दर कृति के उदाहरण संसार के इतिहास मे बहुत कम मिलते हैं।

इस बृहत् कार्य के सम्पादन का बहुत कुछ श्रेय केपशियन-राज्यवंश को है। इसकी सफलता के चार कारण बतलाये जाते

हैं। पहला कारण तो यह है कि ड्यूक की हैसियत से इन लोगों के पास काफ़ी बड़े इलाक़े थे। दूसरा कारण यह है कि ये .फ्यूडल सिस्टेम के अनुसार बादशाहत नहीं करना चाहते थे वरन समस्त फ़्रांस पर अपना वास्तविक राज्य स्थापित करना चाहते थे। तीसरा कारण यह था कि इनका वंश पिता-पुत्र के द्वारा अबाधित रूप से लगातार तीन सौ वर्षों तक चलता रहा। न तो पिता की मृत्यु पर कोई पुत्र अधिक अल्पवयस्क ही निकला और न उत्तराधिकारी बनने के लिए कोई भयंकर झगड़ा हुआ। चौथा कारण जो बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है, चर्च की सहायता थी। उन दिनों चर्च केवल एक धार्मिक सस्था ही न थी वरन उसके हाथ मे लौकिक शक्ति प्राप्त करने के भी बहुत से साधन थे। चर्च चाहता था कि फ़ास मे एक सुसंगठित और सुदृढ़ राज्य की स्थापना हो, वह भी केवल इसलिए नहीं कि इस प्रकार हिंसा और अत्यचार का आसानी से दमन हो सकेगा, बरन उसे यह डर था कि देश के अनेक छोटे छोटे राज्यों मे बँट जाने से कहीं हमारा संगठन भी नष्ट-भ्रष्ट न हो जाय। उस समय रोमन-साम्राज्य के आदर्शानुसार चर्च के संगठन मे भी एक प्रकार से .फ्यूडल सिस्टेम की तूती बोल रही थी। सिस्टेम के सर्वोच्च आसन पर आर्चबिशप थे और निम्नतम आसन पर पारिश-प्रोस्ट अर्थात् एक मामूली गिरजाघर के पादरी। इनके बीच मे पादरियों की एक क्रमबद्ध श्रृंखला थी जो क्रमानुसार एक दूसरे के

बैस्सल सरीखे थे। गिरजाघरों को बड़ी बड़ी जागीरें लगी हुई थीं। इनके भी दो भाग थे। एक तो चर्च के सर्फों द्वारा जोता-बोया जाता था और दूसरा अन्य लोगों को दशमांश पर उठा दिया जाता था।

———

प्रकरण ७

फ्रांस की नींव पड़ना और स्वतंत्र राजतंत्र का उदय होना

फिलिप प्रथम का पुत्र लुई षष्ठम सन् ११०८ मे फ्रांस के सिंहासन पर बैठा था। सच पूछा जाय तो अभी तक इस राज्य-वंश की जड़ अच्छी तरह नही जम पाई थी। लुई ने उसको बहुत कुछ जमा दिया। इसलिए इतिहास ने केपशियन-वंश के बड़े बड़े राजाओं में इसको पहला स्थान दिया है।

लुई का डील-डौल बड़ा लम्बा-चौड़ा था। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों उसकी देह और भी स्थूलता पकड़ती गई, यहाँ तक कि बुढ़ापे मे उसको घोड़े पर चढ़ना कठिन हो गया। इसी लिए वह मोटे लुई के नाम से प्रसिद्ध होगया। किन्तु उसकी मोटाई का यह अर्थ नही कि वह सुस्त या अकर्मण्य था। नहीं, शारीरिक उद्योग से वह कभी पीछे नहीं हटता था। युद्ध मे या शिकार मे उसका सामना करना प्रत्येक मनुष्य का काम नहीं था। इसलिए लोगों ने उसको युद्ध-वीर की उपाधि भी दे रक्खी थी।

उसने अपने सामने दो उद्देश रखे थे। शाही इलाक़े के बाहर की बात कौन कहे, स्वयं इसी इलाक़े मे, जिस पर ड्यूक

की हैसियत से उसका अधिकार था, बैरन बहुत शक्तिशाली और राज-द्रोही थे। वे खुल्लमखुल्ला ग़रीबो को लूटते और बाहशाह का अपमान करते। अस्तु, इनको नीचा दिखाना लुई के जीवनोद्देशो मे से एक था। २० वर्ष की आयु से लेकर जब बादशाह भी नहीं हुआ था, अपने शासनकाल में अन्तिम वर्ष तक वह बराबर इनसे लड़ता रहा। उसने बहुतों को क़ैद कर लिया और बहुतो के क़िले नष्टभ्रष्ट करके उनको शक्ति-हीन कर दिया। इससे न केवल उसकी ड्यूक हैसियत मे वृद्धि हुई वरन बादशाहत को बड़ा सहारा मिल गया।

उसका दूसरा उद्देश शाही इलाक़े के बाहर के बैरनों को दबाना था, किन्तु इस कार्य मे वह उतना सफल नही हुआ। फ़्लेण्डर्स का जागीरदार बिना सन्तान के मर गया। लुई ने अपनी इच्छानुसार उसको उत्तराधिकारी नियत करना चाहा किन्तु वह लोकप्रिय नहीं था। इसलिए जान से मारा गया। क्लेरमोंट के विशप का अधिकार छीन कर एबर्न का काउन्ट किसी दूसरे को विशप बनाना चाहता था। काउन्ट के अधि-पति एक्वेन्टेन के ड्यूक ने भी इस पर अपनी स्वीकृति दे दी थी। किन्तु जब विशप ने लुई के पास अपील की तब उसने उन दोनो को नीचा दिखाया और ड्यूक को लुई की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। किन्तु फ़्रांस का सबसे बड़ा बैरन और लुई का सबसे बड़ा शत्रु था हेनरी प्रथम जो इँग्लेण्ड का बाद-शाह और नोरमेंडी का ड्यूक था। लुई ने हेनरी के भाई के

पुत्र विलियम का पक्ष लेकर, जिसके पास कुछ दिनों के लिए नोरमेंडी पहुँच गई थी, हेनरी को नीचा दिखाना चाहा, किन्तु वह सफल न हुआ। बात यह थी कि हेनरी के बहुत से सहायक थे। चेम्पेन का काउन्ट हेनरी का भाञ्जा था। उसकी भी लुई से नहीं पटती थी। इसलिए ये दोनों शाही इलाक़े के बैरनो को लुई के विरुद्ध भड़काया करते थे। अन्यथा लुई इन दोनों से करारा मोर्चा लेता। हेनरी ने जर्मनी के बादशाह हेनरी पंचम को भी जो उसका दामाद था, अपनी ओर मिला लिया था। उसने फ्रास पर धावा करना चाहा किन्तु लुई ने उसका सामना करने के लिए एक ऐसी बडी फौज एकत्र की कि फिर जर्मनो को साहस न हुआ। सबसे पहले इसी सेना मे वह झण्डा फहराया था जो फ्रांस का राष्ट्रीय झण्डा है, इसी मे वह विजयध्वनि सुनाई दी थी जो आज तक चली आती है। इतने पर भी लुई का एक साथी और छूट गया। एंजो के ड्यूक ने जर्मन-बादशाह की विधवा से शादी कर ली जो जर्मन और इँग्लिश दोनों राज्य-घरानों की उत्तराधिकारी थी। किन्तु इतने विरोधियों के सामने लुई ने किसी प्रकार नीचा नही देखा, उसकी शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही। यह शायद उसके लिए कम गौरव की बात नहीं है।

लुई के जीवन के अन्तिम काल मे उसको भी एक ऐसा अवसर मिला जिसको उसने अपने सौभाग्य का विषय समझा।

किन्तु वास्तव मे ऐसा हुआ नही। एकेन्टेन के ड्यूक दसवें विलियम के एक ही सन्तान थी। उसकी लड़की इलीनर। उसकी फ्यूडल जागीर फ़्रांस मे सबसे बड़ी थी। मरते समय उसने यह इच्छा प्रकट की कि राजकुमार लुई के साथ जो युवराज घोषित कर दिया गया था, उसकी पुत्री की शादी हो। इस प्रकार उसकी सारी जागीर शाही इलाक़े मे आ मिली।

लुई के शासन-काल की एक बात और उल्लेखनीय है। वह यह कि इसी के समय से फ़्रांस के नगरो मे स्थानीय स्वराज्य का विकास होना प्रारम्भ हुआ था। व्यापार और उद्योग-धन्धों की उन्नति से नगरों मे सम्पत्ति की अच्छी वृद्धि हो रही थी और इधर ड्यूक और बैरनों को क्रूसेडों मे सम्मिलित करने तथा एक दूसरे की प्रतिस्पर्द्धा के लिए धन की बड़ी आवश्यकता थी। फिर क्या था, धन के बदले नगरो को स्थानीय स्वराज्य जैसी स्वतंत्रता मिलने लगी जिसमे स्थानीय अफ़सरो को नियुक्त करना, शान्ति रखना, बाज़ारों का प्रबन्ध करना और अपनी रक्षा के लिए सैनिक आदि रखने की आज्ञा भी सम्मिलित थी। जिन नगरों को इस प्रकार की पूर्ण स्वतंत्रता मिल जाती थी, वे 'कम्यून' कहलाते थे और वे अपने अधिपति के वैस्सल माने जाते थे। वास्तव में उनको छोटा-मोटा प्रजातंत्र ही समझना चाहिए था। जिनको थोड़े से अधिकार ही प्राप्त होते थे, उनके चार्टर मे इन बातों का स्पष्ट उल्लेख रहता

था, जिससे उसके अधिपति मनमानी कार्यवाही नहीं कर सकते थे। कहा जाता है कि लुई कम्यूनवाद का पक्षपाती था किन्तु इसमे अधिक तथ्य नही है। बादशाह को प्रजातंत्रवाद का पक्षपाती होना बड़ा कठिन है। और लुई था भी नही। हॉ, शाही इलाक़े के बाहर के नगरों को कम्यून प्राप्त करने के लिए शायद वह इसलिए उत्साहित कर देता था कि उससे अन्य बैरनों की शक्ति क्षीण होती थी। यही कारण है कि शाही इलाक़े मे बहुत कम नगरों को यह स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी।

सन् ११३७ मे लुई षष्ठ की मृत्यु हो गई और लुई सप्तम गद्दी पर बैठा। उसने सन् ११८० तक राज्य किया। किन्तु इस दीर्घ काल मे भी वह कुछ अधिक उन्नति न कर सका। न तो राज्य की शक्ति मे कोई वृद्धि हुई और न सम्मान मे। लुई षष्ठ ने अपने अन्तिम काल मे एबट सूगर को प्रधान मंत्री नियुक्त किया था। यह बहुत बुद्धिमान् था। लुई ने भी उसको अपना प्रधानमंत्री बनाकर बड़ो बुद्धिमानी का काम किया। लुई सप्तम की सबसे पहली भूल यह थी कि वह एबट सूगर का कहना न मान कर द्वितीय क्रूसेड मे सम्मिलित हुआ जिससे उसको लगातार तीन वर्ष तक बाहर रहना पड़ा। फल यह हुआ कि बैरन लोगो ने उपद्रव करना शुरू कर दिया। वे उसके भाई राबर्ट को गद्दी पर बैठाने की चेष्टा करने लगे। इधर क्रूसेड भी पूर्णरूप से असफल हुआ। इस-

लिए इसके द्वारा उसे बदनामी के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगा। साथ ही एक और दुर्घटना हो गई। लुई और इलीनोर का स्वभाव बिलकुल नहीं मिलता था। लुई स्वभाव से नम्र और सहिष्णु था, किन्तु इलीनोर तेज़ और उग्र थी। उसने साफ़ साफ़ कह दिया था—यह बादशाह नही बल्कि साधु है। इसी लिए ऐबट सूगर के मरते ही सन् ११५२ मे लुई ने इलीनोर को तलाक़ दे दिया और एक्वेन्टेन का इलाक़ा उसके हाथ से निकल गया। इलोनोर ने दो-तीन सप्ताहो के ही भीतर एञ्जो के राजकुमार हेनरी द्वितीय से शादी कर ली। यह जर्मन सम्राट् की विधवा मेटिलडा इँग्लैण्ड के हेनरी प्रथम की पुत्री थी और क्राउन्ट एञ्जों का पुत्र था। इसलिए अपने उक्त सम्बन्धो के कारण लोआयर के ऊपर का समस्त उत्तर-पश्चिमी फ्रांस उसके अधिकार मे आगया था। इलीनोर के साथ शादो करने से लोआयर और प्रेनीज़ के बीच का देश भी उसके अधोन हो गया। मतलब यह कि इस समय आधे से अधिक फ्रांस उसके अनुशासन मे था, फ्रेंच बादशाह के इलाक़े से तो उसका इलाक़ा पूरा तिगुना था। ऐसी अवस्था में हेनरी के लिए यह बिलकुल स्वाभाविक था कि वह लुई को नीचा दिखाने की चेष्टा करता।

सचमुच हेनरी द्वितीय की शक्ति बहुत बढ़-चढ़ गई थी, वह बादशाह की अपेक्षा अधिक आदमी और रुपया एकत्र कर सकता था किन्तु सबसे बड़ी कमी इस बात की थो कि

वह अपने सम्पूर्ण इलाक़े को एक सूत्र मे नहीं बॉध सकता था। लोआयर के उत्तर और दक्षिण के निवासियो की भाषा, रहन-सहन और वेष-भूषा मे बड़ा अन्तर था। लुई के पास इसका सामना करने के लिए यद्यपि कोई उपयुक्त फ़ौज नहीं थी तथापि उसके पास बादशाह की उपाधि थी। यदि कहीं आज यही उपाधि हेनरी के पास होती तो वह इसी के सहारे अपने दोनों पृथक् पृथक् इलाक़ों के बीच सामञ्जस्य स्थापित कर लेता। जो काम ड्यूक और काउन्ट की हैसियत से नहीं कर सकता था वह बादशाह के नाम से आसानी से हो जाता था। ऐसे सकट के समय लुई सप्तम को एक ही मार्ग शेष रह गया था। यह कोई नया उपाय नही था। केपशियन-वश-वाले प्रारम्भ से ही उस नीति का अनुसरण करते आये थे। चाल यह थी कि जहाँ तक बन पड़े अँगरेज़ो के शत्रुओं को सहायता दो और इँग्लेण्ड के राज्य-घराने मे फूट का बीज बोओ। हेनरी प्रथम केनटरबरी के आर्च-बिशप से क्रुद्ध हो गया था। लुई ने अपनी नीति के अनुसार तुरन्त उसकी सहायता के लिए हाथ फैला दिया। इतना ही नहीं, उसने हेनरी के पुत्रो को आपस मे लड़ाने एव राज्य-द्रोह के लिए उकसाने में कोई बात उठा नही रक्खी और इसमे वह बहुत कुछ सफल भी हुआ। भाग्यवश रोम के पोप, एलेक्ज़ेन्डर तृतीय और शाहन्शाह फ्रेडेरिक बरबरोसा मे झगड़ा हो गया, लुई ने सहर्ष पोप को शरण दी। इससे उसे कुछ न कुछ राजनैतिक लाभ ही हुआ।

किन्तु यथार्थ मे यद्यपि इस राज्यवंश को स्थापित हुए ८० वर्ष के लगभग होगये थे तथापि यह राज्यवश नाम मात्र का ही राज्य-वंश था। फ्रांस का राजा बहुत से फ्यूडल बैरनो में से एक था। उसकी विशेषता केवल यह थी कि उसको फ्रांस के बादशाह की उपाधि प्राप्त थी। वास्तव मे इस समय तक फ्रांस जैसा कोई एक संगठित देश ही नहीं था। लुई सप्तम के पुत्र फिलिप द्वितीय को हम फ्रांस का प्रथम निर्माता कह सकते हैं। वह पक्का राजनीतिज्ञ था। उसमे दो गुण थे। एक तो यह कि वह जानता था कि किस उद्देश की पूर्त्ति के किन किन साधनों की आवश्यकता है और दूसरे यह कि उसके सफलीभूत होने के लिए सबसे उपयुक्त समय कौन है और उस समय तक किस प्रकार धीरज रखना चाहिए। इन्हीं दोनों गुणों के कारण उसके शासन-काल के अन्त में उसका राज्य कम से कम तिगुना होगया, यहाँ तक कि अब इक्के-दुक्के बैरनो को उसका मोरचा लेना कठिन हो गया। केवल एक टेन का ड्यूक ही ऐसा शक्तिशाली रह गया था जो उसका सामना करने के लिए तैयार हो सकता था क्योंकि वह इंग्लैण्ड पर भी शासन करता था। सबसे अधिक ध्यान देने की बात यह है कि फिलिप द्वितीय ने केवल साम्राज्य विस्तार में ही वृद्धि नहीं की थी वरन् राष्ट्र की समस्त केन्द्रिक शासन-शक्तियाँ धीरे धीरे उसके हाथ मे सिमिट गई थीं। मानो फ्रेंच राजतंत्र का जन्म हो रहा था।

जिस समय वह गद्दी पर बैठा उस समय उसकी आयु केवल १५ वर्ष की थी, किन्तु ६ वर्षों के ही भीतर उसने उत्तर-पूर्वी प्रायः सभी बैरनों को अपने वश मे कर लिया। किन्तु इनको हम उसकी सबसे बड़ी सफलता नही कह सकते। उस समय अँगरेज़ों का फ्रांस पर बड़ा प्रभाव था, और इसी को दबाने की उसने सब से बड़ी चेष्टा की। इसमे वह बहुत-कुछ सफल भी हुआ।

द्वितीय हेनरी, जो इस समय इँग्लैण्ड पर बादशाहत कर रहा था, कई बाधाओं से घिरा हुआ था। उसकी स्त्री और उसके लड़के उसके विरुद्ध हो गये थे। बस, फिलिप ने इन्ही लड़कों को सहायता देना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार हेनरी के हाथो से एबर्न का प्रान्त छीन लिया। यहीं से फ्रांस मे इंग्लिश प्रभुत्व का अधःपतन प्रारम्भ होता है। हेनरी द्वितीय के बाद इँग्लैण्ड मे उसका पुत्र रिचार्ड गद्दी पर बैठा। कुछ दिनो तक इसमे और फ़िलिप मे मित्रता रही। किन्तु इसी अवसर पर यूरोप मे तृतीय क्रूसेड की तैयारी हो रही थी। सन् ११८७ मे ही सलादीन ने येरुशलम को अपने अधिकार मे कर लिया था। होली रोमन-साम्राज्य के बादशाह और इँग्लैण्ड के रिचार्ड तो इसमे सम्मिलित हो ही रहे थे, पोप के अनुरोध से फिलिप को भी इसमे भाग लेना पड़ा। किन्तु वास्तव मे फ़िलिप का हृदय क्रूसेड की सफलता के लिए उतना लालायित नहीं हो रहा था जितना अपने देशोद्धार के लिए।

मार्ग में ही उसकी रिचार्ड से खटपट होगई। इसलिए वह पेलेस्टाइन पहुँचने के कुछ दिन बाद ही वहाँ से लौट पड़ा और रिचार्ड को नीचा दिखाने की कोशिश करने लगा। भाग्य से रिचार्ड का भाई जौन उसका साथी बन गया और रिचार्ड भी क्रूसेड से लौटते समय जर्मनी मे क़ैद हो गया।

किन्तु रिचार्ड एकाएक कारागार से मुक्त होगया और उसने तीन लड़ाइयों मे फिलिप को बुरी तरह से हराया। इससे जब तक रिचार्ड जीवित रहा तब तक फिलिप से कुछ करते-धरते न बना। ११९९ मे जौन इँग्लैण्ड का बादशाह हुआ। फिलिप ने उसके साथ सधि कर ली, किन्तु वह इस ताक मे था कि कब मौक़ा आये और इसको नीचा दिखाऊँ। जौन अच्छा शासक नही था। वह अपने एक बैस्सल की वचन-बद्ध पत्नी को ले भागा। इस पर उस बैस्सल ने फ़िलिप के पास अपील की। फिर क्या था, फिलिप ने कई बार जौन को अपने कोर्ट मे बुलाने के लिए सम्मन भेजा। जब जौन किसी प्रकार न आया तब फ़िलिप को फ्यूडल-संगठन के नियमानुसार उसकी जागीर छीनने का अधिकार मिल गया। फ़िलिप ऐसे सुअवसर को कब छोड़नेवाला था। दुर्भाग्य से जौन ने एक और महान् पातक किया। उसने अपने भतीजे आरथर को, जो नियमानुसार ब्रिटेन का उत्तराधिकारी था, मरवा डाला। इससे लोगों को जौन से बड़ी घृणा होगई। अतएव दो वर्षों के भीतर फ़िलिप ने नोरमण्डी और रुआन पर अपना अधि-

कार जमा लिया। मतलब यह कि इस एक विजय से फिलिप का इलाक़ा बहुत बढ़ गया। सारा सीन और लायर प्रान्त उसके अधीन होगया। पहले वह फ्रांस का नाममात्र का बादशाह था, अब धीरे-धीरे सचमुच का हो चला।

इधर जौन अपने घरेलू झगड़ों मे और भी अधिक उलझ गया था। उसके बैरसल उसकी निरंकुश शासन-पद्धति से तंग आ गये थे। उसने केण्टरबरी के बिशप की नियुक्ति के विषय मे पोप से भी झगड़ा मोल ले लिया था। पोप ने तो फिलिप को एक बार इँग्लेण्ड पर धावा करने के लिए भी उकसाया था, किन्तु जौन ने बुद्धिमानी से उसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया। बात यह थी कि जौन ने अभी तक अपने फ्रेंच इलाक़ो की आशा नही छोड़ी थी। इसलिए घरेलू झगड़ों से छुट्टी पाकर उसने फिलिप के विरुद्ध एक विशाल दल का संगठन किया। यह तय हुआ कि जौन दक्षिण-पश्चिम की ओर से अपने एक्वेनटेन के इलाक़े से और उसका भतीजा चतुर्थ ओटो जो उस समय बादशाह था एवं फ्लेण्डर्स के काउन्ट उत्तर-पूर्व की ओर से फिलिप पर हमला करे। किन्तु जौन को तो फिलिप के पुत्र ने और ओटो को स्वयं फिलिप ने वोविन्स के क्षेत्र मे बुरी तरह हराया। फल यह हुआ कि लायर के उत्तर का समस्त अँगरेज़ी इलाक़ा फिलिप के हाथ मे आगया, ओटो क़ैद हो गया और जौन को सन् १२१५ मे इँग्लेण्ड का सुप्रसिद्ध मैगना-कार्टा स्वीकृत करना पड़ा। बादशाह की विजय के बाद उसके

राज्य मे जो महान् हर्षोत्सव हुआ था उससे यह प्रकट होता है कि फ्रास के उस प्रान्त मे राष्ट्रीयता का जन्म हो चला था।

किन्तु फ्रांस का दक्षिणी-पूर्वी भाग अभी तक फिलिप के प्रभाव से बिलकुल अछूता था। यहाँ की टोलोस काउण्टी मे अलबीजेन्स लोग रहते थे। ये ईसाई नहीं थे। इनका काउण्ट भी बिलकुल स्वतंत्र सा था। इसलिए इनको दबाना उस समय प्रत्येक ईसाई का कर्त्तव्य समझा जाता था। सुतरां इनके प्रति एक क्रूसेड सा छिड़ गया। और इसके फलस्वरूप इनके वर्तमान काउन्ट के स्थान मे एक दूसरा काउण्ट बैठाया गया। यद्यपि फिलिप ने प्रकृत रूप से कोई भाग नहीं लिया, तथापि वह जानता था कि यह क्रूसेड उसकी भलाई के लिए है, क्योंकि दूसरा काउण्ट पहले के समान कदापि शक्ति-शाली नहीं हो सकता था।

शाही इलाका बढ़ाने के अतिरिक्त फिलिप ने शासन-व्यवस्था को उन्नत करने के लिए भी यथेष्ट प्रयत्न किया था। अभी तक सारा राज्य छोटे छोटे अफ़सरों की अध्यक्षता मे, जो प्रोवोट कहलाते थे, बॅटा हुआ था। ये लोग मालगुज़ारी और कर उगाहते, स्थानीय कचहरियाँ करते और अधीनस्थ वैस्सलों से सैनिक सेवा जुटाने का काम करते थे। किन्तु ज्यों-ज्यों राज्य बढ़ता जाता था त्यों-त्यों इनकी देख-रेख मे कठिनाई होती जाती थी। क्योंकि धीरे-धीरे ये नौकरियाँ पैतृक रूप सा धारण कर रही थी। इससे इन अफ़सरो की शक्ति और

स्थानीय स्वार्थ दिन-प्रति-दिन बढता जाता था। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बड़े-बड़े प्रान्तों मे फ़िलिप ने प्रीवोटों की देख-रेख के लिए कुछ और बड़े अफ़सर नियुक्त किये। इनका काम केवल प्रीवोटों के कार्य की जाँच करना था। फ़िलिप और उसके उत्तराधिकारियो ने विगत अनुभव के अनुसार इस बात का पूरा पूरा ध्यान रक्खा कि इन अफ़सरो की शक्ति अत्यधिक न बढ़ने पाये, और न पद किसी प्रकार पैतृक समझे जायँ, इसी लिए समय समय पर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को इनका तबादला कर दिया जाता था।

फ़िलिप ने चार्टरप्राप्त नगरों को भी विशेषरूप से अपने अधिकार मे करना चाहा। बात यह थी कि वह फ़्यूडल-सिस्टेम की जड़ खोद-कर फ़्रास मे एक वास्तविक राजतंत्र की स्थापना करना चाहता था। इसी उद्देश से उसके नगरों की क़िलेबन्दी करने, उनको सजाने, उनके वाणिज्य और व्यवसाय को बढ़ाने तथा उनमे बाहिरी व्यापारियों को बसाने आदि जैसे उन्नति-शील कामों मे फ़िलिप ने पूरा-पूरा योग दिया था। पेरिस मे पहले-पहल इसी के राज्य में विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई थी। इससे यूरोप के नगरों मे इसका महत्त्व बहुत बढ़ गया था। फ़्रांस के साहित्यिक क्षेत्र मे यह भावात्मक कविता का युग था। किन्तु उत्तर मे दूसरी भाषा थी और दक्षिण की दूसरी।

इस प्रकार सन् १२२३ में फ़िलिप दी अगस्टस का देहान्त हो गया। शायद उसके बड़प्पन की सूचना देने के

लिए ही उसको अगस्टस की पदवी दी गई थी। उसके बड़प्पन का एक चिह्न यह भी है कि केपशियन-बादशाहों मे से सबने अपने जीवन-काल मे ही अपने पुत्र को युवराज बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। क्योंकि राज्याधिकार उस वंश का एक सर्वसम्मत अधिकार होगया था। जिस समय फ़िलिप गद्दी पर बैठा था उस समय न तो वह फ्रांस का बादशाह ही कहा जा सकता था और न उसमें फ्रांस जैसा कोई देश देश ही। फ़िलिप के राज्य के अन्त में ये दोनो बाते अन्य रूप से पूर्ण होगई थीं। उसकी दूरदर्शिता निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

प्रकरण ८

राजतन्त्र में स्वच्छन्दता की वृद्धि

फ़िलिप के पुत्र लुई अष्टम ने केवल तीन वर्ष राज्य किया अर्थात् १२२३ से १२२६ तक। इसके राज्य मे कोई विशेष महत्त्व-पूर्ण घटना नहीं हुई। थोड़े दिनों के लिए अँगरेज़ों से युद्ध हुआ, जिसके फलस्वरूप पोटो प्रान्त का शेष अंश भी लुई को मिला और दूसरा यह कि अलबीजेनसियन के विरुद्ध फिर क्रूसेड छेड़ा गया। इसके फलस्वरूप भी लुई को उनके प्रान्त का कुछ भाग मिल गया। सारांश यह कि लुई अष्टम ने भी फ़्रांस के राज्य मे वृद्धि ही की।

लुई नवम जिस समय गद्दी पर बैठा, उस समय उसकी आयु केवल ११ वर्ष की थी। किन्तु उसकी मा ब्लान्ची आव केस्टाइल बहुत ही चतुर और कार्यशीला रमणी थी। उसने अपने पुत्र की अल्पावस्था मे राज्य को केपशियन-नीति के ही अनुसार चलाने का उद्योग किया। तथापि बैरन लोगों ने समझा कि नव-विकसित राजतंत्र को उखाड़ फेंकने के लिए उन्हें इससे बढ़कर सुयोग नहीं मिल सकता, अतएव उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और छोटे-बड़े सभी बैरन-राज्य-वंश की जड़ खोदने के लिए मिल गये। उनकी इच्छा थी कि एक बार पुनः फ़्रांस

इतना साधु-स्वभाव था कि इसको अँगरेज़ आदि से छीने हुए प्रान्तों पर शासन करने में भी संकोच होता था। इतना ही नहीं, उसने हेनरी तृतीय और अरगान के बादशाह से संधि करके उनके कुछ प्रान्त उनको लौटा भी दिये थे। उसका यह कार्य प्राचीन केपशियन-नीति के सर्वथा विपरीत था, तथापि उससे राज्य की कोई विशेष क्षति नहीं हुई। उसके जीवन के दो उद्देश थे। एक तो यह कि उसके राज्य मे शान्ति और न्याय का साम्राज्य हो। इसके पीछे वह सब कुछ न्योछावर करने को तैयार था। न्याय और अन्याय के विषय मे सब उसके सामने एक-समान थे। चाहे कोई बिशप हो, चाहे बैरन और काउण्ट या कोई राज्यकर्मचारी, वह किसी का अन्याय नहीं सह सकता था। उसके इस गुण का सुफल यह हुआ कि लोगों में यह विश्वास होगया कि यदि हमे कहीं न्याय मिल सकता है तो वह राजा के पास। अतएव वे अपने बड़े-बड़े मामले लुई के पास निर्णयार्थ लाने लगे। न्याय के लिए उसका नाम इतना मशहूर हो गया था कि उसकी रिआया ही नहीं, वरन् फ्रांस के बाहर के झगड़े भी निर्णय के लिए उसके पास आने लगे। संक्षेप में उसके द्वारा एक सर्वोपरि राष्ट्रीय न्यायालय का सूत्रपात्र हो गया।

उसके जीवन का दूसरा उद्देश यह था कि क्रूसेडों के द्वारा ईसाइयों के पवित्र स्थान ईसाइयों के अधिकार मे कर लिये जायँ। इस उद्देश से उसने दो बार क्रूसेड तैयार भी

किये किन्तु वह दोनों बार असफल हुआ। वास्तव मे अब लोगों मे वह प्राचीन धार्मिक वृत्ति ही नहीं रह गई थी जिसके द्वारा पहले समय में उन क्रूसेडो का संगठन हुआ था।

लुई ने शासन-व्यवस्था मे भी उन्नति की थी। उसने अपने छोटे छोटे कर्मचारियो की देख-भाल करने के लिए बड़े बड़े अफ़सर नियुक्त किये थे। उनका काम ही यही देखना था कि कहीं न्याय और व्यवस्था के प्रतिकूल आचरण तो नहीं किया जाता है। इस प्रकार राज्य की सारी शक्ति राजा के हाथ में सिमट गई थी। अभी तक राजकीय दरबार का कोई विधिवत् संगठन नहीं था। इसके काल मे इसके तीन भाग हो गये। एक को शाही दरबार कह सकते हैं जिसका काम बादशाह को शासन-व्यवस्था मे परामर्श देना था, और दूसरे को अर्थ-परिषद् जिसका काम राज्य के आय-व्यय की देख रेख करना और तीसरे का नाम पार्लियामेट था किन्तु यह ब्रिटिश-पार्लियामेट के समान व्यवस्थापक सभा नही वरन् सर्वोपरि राष्ट्रीय न्यायालय था। न्यायालयों के विकास के साथ साथ इन दिनो क़ानून-शास्त्र मे भी बड़ी उन्नति हो रही थी। केवल फ़्रांस मे ही नही वरन् समस्त यूरोप मे विद्वान् लोग क़ानून के अध्ययन मे लगे हुए थे। इस समय वहाँ अधिकतर दो प्रकार के क़ानून प्रचलित थे, एक फ़्यूडल और दूसरा रोमन। यद्यपि इन दोनो की शैलियों मे बहुत मत-भेद था तथापि सिद्धान्त रूप से दोनों एक ही थे। रोमन-क़ानून के

अनुसार तो राजा ही न्याय और क़ानून का मूल स्रोत माना जाता था। उसकी इच्छा ही क़ानून थी। यद्यपि .फ्यूडल-क़ानून के अनुसार राजा के वैस्सलो को भी अपने अपने कोर्ट चलाने का अधिकार प्राप्त था तथापि वह एक प्रकार से बादशाह का ही प्रतिनिधि माना जाता था अर्थात् बादशाह ही अपने वैस्सलो को न्याय-शासन करने की शक्ति प्रदान करता था। अतएव यदि कोई व्यक्ति वैस्सल की कोर्ट के विरुद्ध बादशाह के यहाँ अपील करता था तो वैस्सल उसमे .फ्यूडल-नियमों के ही अनुसार कोई आपत्ति नही कर सकता था। और सच बात यह है कि लुई अपील सुनने के अधिकार पर ही सबसे अधिक जोर देता था। यहाँ तक कि स्वतंत्र बैरनों के इलाके की अपीलें सुनने के लिए वह तैयार रहता था, वास्तव मे जो काम उसके प्रपितामह फ़िलिप ओगस्टस ने फ्रेंच-राष्ट्र-निर्माण के लिए भौगोलिकरूप से किया था, वह काम लुई ने शासन-व्यवस्था को परिपक्व करके सिद्ध किया है।

सन् १२७० ई० मे लुई नवम की मृत्यु के बाद उसका पुत्र फ़िलिप तृतीय राजगद्दी पर बैठा। यह प्रभावहीन बादशाह था। तथापि लुई की सुव्यवस्था के कारण राज्य के उन्नति-चक्र की गति-विधि मे कोई बाधा नहीं पड़ी। राज्यकर्मचारी बराबर लुई की नीति के अनुसार काम करते रहे। अनायास इसके काल में राज्य का विस्तार भी थोड़ा बहुत अधिक हो गया। एक तो उसके चाचा और चाची की मृत्यु से टोलोस का

दक्षिणी प्रान्त उसके हाथ आगया और दूसरे उसने अपने सबसे बड़े पुत्र फ़िलिप की चतुर्थ शादी नावरे और शेमयेगनी के शासक की इकलौती कन्या से किया, जिसमे भविष्य में उस प्रान्त की भी फ्रांस के राज्य मे सम्मिलित होने की सम्भावना हो गई।

फ़िलिप चतुर्थ सन् १२८५ मे राजगद्दी पर बैठा था। फ़िलिप तृतीय के शासनकाल मे ही लुई नवम की न्याय-प्रियता और प्रजावत्सल शासन-व्यवस्था ने मशीन का रूप धारण कर लिया था। किन्तु फ़िलिप चतुर्थ के समय में तो वह मशीन एकदम कठोर और निर्दयी हो गई। फ़िलिप न्याय का उतना प्रेमी नहीं था जितना क़ानून का भक्त था। उसके सभी मन्त्री रोमन-क़ानून के पण्डित थे। उनका सिद्धान्त था कि समस्त क़ानून, समस्त न्याय, और समस्त अधिकार का आदि और एकमात्र भाण्डार राजेच्छा है। यही सिद्धान्त अविकल रूप से वे लोगों को सिखाना चाहते थे।

इसके अतिरिक्त लुई नवम के समय मे जिस प्रकार न्यायालय-विभाग उन्नत हुआ था उसी प्रकार इसके समय में अर्थ-विभाग भी परिपक्व होने लगा। अभी तक राज्य-कोष मे केवल वही रुपया आता था जो उसे अपनी निजी जागीर से प्राप्त होता था। वास्तव मे पहले रुपये का अधिक ख़र्च भी न था, न तो बड़े बड़े तनख़्वाहदार अफ़सर थे और न बड़ी बड़ी सेनायें। किन्तु अब धीरे-धीरे राजकर्मचारियों के

समुदाय एवं शान्ति और युद्ध के लिए सेनाओं मे भी यथेष्ट वृद्धि होने लगी। अतएव फ़िलिप ने कर लगाने की प्रथा का प्रचार किया। पहले पहल व्यापारियो के सामान एव आय-व्यय पर कर लगाया गया। बैरनों से भी सैनिक सेवा के स्थान मे आर्थिक सहायता लेने की प्रथा हो गई। संक्षेप में, कर-विभाग ही पृथक् खुल गया, क्योंकि कर वसूल करने के लिए अन्य अफ़सरों के सिवा बहुत से कर-कलेक्टर भी सरकार-द्वारा नियुक्त किये गये।

इस कर-व्यवस्था ने फ़िलिप के सामने एक बहुत ही जटिल प्रश्न लाकर खड़ा कर दिया। तथापि कर-व्यवस्था इसका मूल-कारण नही, क्योंकि इसका प्रसंग न भी उठता तो भी शायद यह कठिनाई तो उपस्थित ही होती। केपशियन बादशाहों की यह चिरकालीन नीति थी कि अन्य लोगों के समान चर्च (धार्मिक संस्थाओं) को भी बादशाह के अधीन रहना चाहिए। चर्च उन दिनों बहुत ही शक्तिशाली था, इसलिए राज्याधिकार और चर्च के अधिकार का सम्बन्ध कुछ संदिग्ध सा था। किन्तु फ़िलिप काफ़ी शक्ति-सम्पन्न और गर्विष्ठ शासक था। ज्योंही उसने चर्च पर कुछ कर लगाना चाहा, त्योंही उन से लड़ाई छिड़ गई। भाग्य से उस समय रोम का पोप बोनफ़ैस अष्टम भी सब बातों मे फ़िलिप के अनुरूप था। जैसे को तैसा मिल गया। वह अपने आपको समस्त लौकिक शक्तियों से ऊपर समझता

था। अतएव उसने तुरन्त एक घोषणा निकाल दी कि जो कोई चर्चवाला राज कर देगा अथवा जो राजकर्मचारी इनसे कर वसूल करेगा वह समाज-च्युत कर दिया जायगा। फ़िलिप कब डरनेवाला था। उसने भी इसके जवाब मे एक आज्ञा-पत्र निकाला कि मेरी आज्ञा के बिना सोना-चाँदी आदि बहुमूल्य धातु फ़ांस के बाहर नहीं भेजे जा सकते। फिर क्या था, पोप स्वयं फ़्रेंच चर्च की आमदनी से वञ्चित होगया। उसको हार खानी पड़ी, उसने अपना घोषणा-पत्र लौटा लिया।

किन्तु इस प्रकार की सन्धि कोई सन्धि नहीं होती। अभी तक योद्धाओं के अरमान नहीं निकले थे। सन् १३०० मे रोम मे बड़ी जुबिली हुई। ईसाई-संसार के बहुत से मनुष्य रोम मे एकत्र हुए। बस पोप का दिमाग़ फिर चढ़ गया। भाग्य से या दुर्भाग्य से पोप ने फ़्रांस मे अपना जो प्रतिनिधि नियत किया था वह फ़िलिप से चिढ़ा हुआ था। उसके दुर्व्यवहार से तंग आकर फ़िलिप ने दण्ड-विधान के लिए उसे अपने न्याया-लय मे बुलाया। पोप को बड़ा क्रोध आया। उसने अब की बार दो घोषणा-पत्र निकाले। एक मे तो यह दिखलाया गया था कि पोप-लौकिक सरकारों मे सर्वोपरि है और दूसरे मे यह कि प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपने आपको पोप की प्रजा माने।

इस पर फ़िलिप ने जिस उपाय का अवलम्बन किया वह

फ्रांस के इतिहास मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। उसने अपने राजकीय दरबार का एक अधिवेशन किया और इस उद्देश से कि पोप के विरोध मे उसकी सारी रिआया उसके साथ हो, उसने उसमे पादरियों, मध्यम श्रेणी के लोगो, नगरो और कस्बों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त तृतीय श्रेणी के लोगों को भी बुलाया। अभी तक किसी राजकीय कार्य मे तृतीय श्रेणी से कोई परामर्श नहीं लिया जाता था। यह पहला अवसर था कि राजकीय कामो मे साधारण जनता की भी पूछ हुई। इस दरबार का नाम स्टेट्स जनरल था। फ़िलिप को इसमे असाधारण सफलता हुई। सबने पोप के विरुद्ध उसका साथ दिया। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि फ़्रांस मे क्रमशः राष्ट्रीयता की वृद्धि हो रही थी और दूसरे यह कि फ़िलिप की शक्ति बहुत काफ़ी थी। उसी के कारण पादरी और अमीर-उमरा तृतीय श्रेणी को अपने बराबर बैठते हुए देख कर भी कुछ आपत्ति न कर सके। नगरो पर कर लगाने की स्वीकृति लेने के लिए भी फ़िलिप ने एक इसी प्रकार का दरबार किया था। उसको स्वीकृति तो तुरन्त ही मिल गई थी। किन्तु उसे यह नहीं मालूम था कि स्टेट्स जनरल को जन्म देकर उसने अपने उत्तराधिकारियों की स्वच्छन्दता मे कैसी भयङ्कर बाधा उपस्थित खड़ी कर दी।

नवोत्थित फ़्रेंच-राष्ट्र की इच्छा के आगे फ़्रेंच-पादरियों

को सिर झुकाना पड़ा। किन्तु वोनफेस इस प्रकार टेक छोड़नेवाला नहीं था। वह झगड़ा करता रहा। इसलिए उसके लिए एक नई तरकीब निकाली गई। फ्रेंच-क़ानूनदानों की सम्मति के अनुसार फ्रेंच-चर्च मे एक सार्वजनिक सभा स्थापित की गई और उसको यह अधिकार दिया गया कि पोप का उत्तराधिकारित्व न्याय-सङ्गत है या नहीं। इसी के अनुसार पोप के पास एक अपील भेजी गई। जिसमें पोप से पदत्याग करने के लिए कहा गया था। कहते हैं कि वोनफेस जो कि ८६ वर्ष का बुड्ढा था, कुछ डर, कुछ क्रोध और कुछ घृणा से विचलित होकर मर गया। इस प्रकार फ़िलिप और पोप की लड़ाई शान्त हुई। वोनफेस के बाद जो पोप की गद्दी पर बैठे वे बहुत ही सीधे-सादे आदमी थे। उन्होंने फ्रेंच-बादशाहों के विरुद्ध कोई काम नहीं किया, यहाँ तक कि उन्होंने अपना केन्द्र रोम से हटाकर अवीगन मे स्थापित किया जो कि फ्रेंच-राज्य मे है। असली बात यह है कि इस समय चर्च के शासन मे बड़ो गड़बड़ी फैल रही थी। पोप के प्रति लोगों की श्रद्धा भो कम हो रही थी।

फ़िलिप ने अपनी शक्ति और स्वेच्छाचारिता का एक और उदाहरण दिया है। वह है नाईट्स टेम्पलर नामक संघ का विध्वंस। इस संघ मे अधिकतर वे लोग सम्मिलित थे जो क्रूसेड़ों के बाद पवित्र स्थानों से लौटकर योरप मे आ बसे थे। इनको बड़ी बड़ी जागीरें लगी थीं। ये धीरे धीरे बहुत धनाढ्य

हो गये थे और बड़े ऐशो आराम से रहते थे। लोगों ने इन पर जादू-टोने आदि का दोष लगाये थे। फ़िलिप ने इसी बहाने से और शायद अर्थलोलुपता के कारण एक ही दिन मे फ़्रांस भर के टेम्पुरों को पकड़ कर क़ैद करा लिया। फिर उनका मुक़द्दमा हुआ। नेताओं को फाँसी दी गई और साधारण लोगों को सज़ा। इसके अतिरिक्त इस संघ की अधिकांश धन-सम्पति भी राज-कोष मे ले ली गई।

अन्त मे फ़िलिप के शासन-काल की एक घटना का उल्लेख करना और आवश्यक है। वह है अँगरेज़ो के साथ युद्ध। यह युद्ध वास्तव मे कुछ परम्परागत सा था। नोरमन लोगों के अपील करने पर फ़िलिप ने इँग्लैण्ड के बादशाह एडवर्ड को अपने दरबार मे बुलाया था और जब वह नहीं आया तब उसने अँगरेज़ो के इलाक़ों को ज़ब्त करने की आज्ञा निकाल दी। इसके अतिरिक्त उसने इँग्लैण्ड को नीचा दिखाने के लिए स्काटलैण्ड को मिला लिया था और इसी प्रकार इँग्लैण्ड को फ़्लेंडर्स के काउण्ट मिल गये थे जो उसको फिलिप के विरुद्ध सहायता दिया करते थे। किन्तु यह युद्ध पूरे वेग से नहीं चल सका, क्योंकि दोनों बादशाहों को अपने अपने देश की अन्तरंग समस्यायें उलझाये हुए थीं। इस लिए कभी कोई जीतता था और कभी कोई।

फ़िलिप की मृत्यु बड़े विचित्र ढंग से हुई थी। टेम्पलर के सबसे बड़े नेता ने मरते समय कहा था कि फिलिप ! तुझे

एक ही वर्ष के भीतर ईश्वर के सामने उत्तर देने के लिए आना होगा। और सचमुच इस शाप के थोड़े दिनों बाद ही फ़िलिप की मृत्यु हो गई। सारे फ्रांस पर आतङ्क छा गया। लोगो को विश्वास होगया कि यह दुर्घटना टेम्पलर के ही शाप के कारण हुई है। इस अभिशाप का परिणाम यहीं पर समाप्त नहीं हुआ। उसके बाद के तीन उत्तराधिकारी १४ वर्षों के भीतर ही समाप्त हो गये। उसका पुत्र लुई दशम केवल दो वर्ष राज्य कर पाया। उसके समय मे फ़्यूडल लार्डों ने फिर कुछ सिर उठाया और कुछ अधिकार प्राप्त भी कर लिये। लुई दशम की मृत्यु के बाद फ़्रांस के इतिहास मे एक नई समस्या उपस्थित हुई। लुई के कोई पुत्र नही था। केवल एक लड़की थी। फ़्यूडल-नियमों के अनुसार लड़की को राजगद्दी मिलने मे कोई आपत्ति नही हो सकती थी। यूरोप में यह प्रथा जारी भी थी। किन्तु फ़्रांस ने इसे स्वीकार नही किया। लुई के भाई फ़िलिप पंचम को गद्दी मिली। उसने फ़िलिप चतुर्थ की नीति को दृढ़ता-पूर्वक चलाया। स्टेट्स जनरल का पौधा धीरे-धीरे जड़ पकड़ने लगा। नई बात यह हुई कि सारे साम्राज्य में केवल बादशाह के सिक्के को चलाने की कोशिश की गई। फ़्यूडल-लार्डों के सिक्कों के चलन की मनाही होने लगी। इसी प्रकार तौल और माप के बाँटों में भी सार्वभौमिक एकता लाने की चेष्टा की गई।

दुर्भाग्य से फ़िलिप पंचम के भी कोई पुत्र नहीं था।

केवल एक पुत्री थी। इसलिए उसके भाई चार्ल्स चतुर्थ को गद्दी मिली। इसने भी छः वर्ष राज्य किया, किन्तु इसके शासन-काल मे भी कोई महत्त्व-पूर्ण घटना नही हुई। हाँ, इसके भी पुत्र न होने के कारण उत्तराधिकारी के निर्णय मे बड़ी जटिल समस्या उपस्थित हो गई। अब फ़िलिप चतुर्थ के वंश मे कोई पुरुष शेष नहीं रह गया और यही पर फ़्रांस के स्वाभाविक विकास-युग पर पर्दा गिरता है। फ़िलिप आव वेलोस नामक फ़िलिप चतुर्थ के भाई का पुत्र था और इधर इँग्लैण्ड का एडवर्ड तृतीय फ़िलिप चतुर्थ की लड़की का लड़का था। एडवर्ड का कहना था कि मेरा सम्बन्ध फ़िलिप आव वेलोस की अपेक्षा फ़िलिप चतुर्थ से अधिक घनिष्ट है। अतएव फ़्रांस का सिंहासन मुझे मिलना चाहिए। एक ऐसेम्बली हुई। किन्तु उसमे फ़्रेंच लोगों ने एडवर्ड के विरुद्ध राय दी। यद्यपि इस समय फ्रेंच लोगों मे आधुनिक राष्ट्रीयता का भाव नहीं आया था तथापि उनमें इतनी जागृति अवश्य होगई थी कि वे अपने राज्यवंश के परम्परागत शत्रु को उसकी गद्दी पर नहीं बैठा सकते थे। वास्तव मे यह जागृति कुछ थोड़ी नहीं थी। जिस समय ह्यूमकेपर ने उस दिन से ३५० वर्ष पहले पेरिस के आस-पास के क्षेत्र को लेकर राज्य बनाना शुरू किया था, उस समय और इस समय के बीच मे बड़ी उन्नति हो गई थी। इस समय फ़्रांस-बादशाह के शासन में लगभग सारा फ़्रांस आ गया था। फ्लेंडर्स, बर-

गेंडी, ब्रिटेनी और गिनी को छोड़ कर और बड़ा काउण्ट या बैरन नहीं रह गया था। शासन-व्यवस्था भी बहुत विकसित हो गई थी। काम व्यवस्थापक, न्याय, अर्थ और शासन-विभागों मे बँट गया था। किन्तु इन सब विभागों पर एकदम बादशाह का सीधा अधिकार था। उसमें कोई हस्त-क्षेप नहीं कर सकता था। संक्षेप मे, एक छोटी सी जागीर से बढ़ते-बढ़ते केपशियन-वंश के राजाओं ने फ्रांस मे एक सुदृढ़ और विशाल राज्य स्थापित कर लिया था। छोटे-छोटे खण्डों मे विभक्त जन-समुदाय को इस प्रकार एकाकार करने मे इस राज्य-वंश ने जितना काम किया है, शायद उतना कार्य यूरोप के किसी राज्यवंश ने नहीं किया। यद्यपि अभी फ्रांस मे राष्ट्रीयता का भाव पूर्णरूप से परिपक्व नहीं हुआ था, तथापि उसका अंकुर जम गया था, जो किसी प्रकार से कुचला नहीं जा सकता था।

प्रकरण ६

शतवर्षीय युद्ध

फ़िलिप-षष्ठ (१३२८–१३५०)

जिस दिन से फ़िलिप आव वेलोस फ़िलिप षष्ठ के नाम से फ़्रांस के राजसिंहासन पर बैठा उस दिन से फ़्रास के इतिहास मे एक नूतन युग प्रारम्भ होता है। यदि हम इसके पूर्ववर्त्ती युग को विकास का युग कह सकते हैं तो उसको विनाश का युग कहना कुछ अनुचित नहीं। इस युग मे लगातार सौ वर्षों तक फ़्रांस और इंग्लैण्ड के बीच युद्ध चलता रहा जिसमे फ़्रांस को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। एक समय तो ऐसा मालूम होने लगा था कि अब फ़्रास सदैव के लिए विदेशियो के हाथ मे जानेवाला है।

इस भयंकर और दीर्घकालीन युद्ध के लिए फ़्रांस का बादशाह उत्तरदायी है अथवा इँग्लैण्ड का—यह कहना अत्यन्त कठिन है। वास्तव मे यह युद्ध अनिवार्य था। फ़्रांस के भीतर अब भी कई बड़े बड़े इलाके अँगरेज़ों के हाथ मे थे। न तो उन्नति-शील फ़्रांस इसे सहन कर सकता था और न इँग्लैण्ड बिना भीषण युद्ध किये अपने अधिकार छोड़ सकता था। इसके अतिरिक्त युद्ध के और भी बहुत से कारण थे। किन्तु इनमें फ्लेंडर्स की समस्या मुख्य थी।

फ्लेंडर्स यूरोप के उत्तर मे है और उन दिनों यहाँ कला-कौशल और उद्योग-धंधों मे बड़ी उन्नति हो रही थी। लोग काफ़ी मालदार थे। इसलिए उनमे और उनके स्वच्छन्द काउण्टो मे सदा झगड़ा चला करता था। काउण्ट बादशाह से सहायता माँगते थे और नागरिकों ने अपने व्यापार के कारण इँग्लैण्ड से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। क्योंकि जो ऊनी वस्त्र ये लोग बनाते थे, उनके लिए अधिकतर ऊन इँग्लैण्ड ही से आती थी। फ़िलिप षष्ठ ने गद्दी पर बैठते ही बैठते केसल शहर पर हमला किया और उसके नागरिकों को बुरी तरह मरवा डाला। सन् १३३६ मे फ्लेण्डर्स के काउण्ट ने अपने प्रान्त के समस्त अँगरेज़ी व्यापारियो को पकड़ने की आज्ञा निकाली। फिर क्या था, एडवर्ड ने भी इँग्लैण्ड के समस्त फ्लेण्डर्स-निवासियों को पकड़वा लिया और साथ ही ऊन भेजना भी बन्द कर दिया। फ्लेण्डर्स के नागरिकों मे खलबली पड़ गई। उनका रोज़गार बन्द हो गया। वे अपने अधिकारियों से युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। बस, यहीं से इस शतवर्षीय युद्ध का सूत्रपात होता है।

सन् १३३८ मे एडवर्ड अपने दल-बल-सहित फ्लेण्डर्स मे आ उतरा, फ्लेण्डर्स के नागरिको ने उसका अच्छा स्वागत किया किन्तु केवल सूखी बातों के अतिरिक्त वे कोई सहायता न कर सके। एडवर्ड ने जर्मन राजकुमारों और सम्राट् से भी सहायता लेनी चाही, किन्तु वे भी बातें बनाकर रह गये। हाँ,

सम्राट् ने उसको इम्पीरियल-विकार की पदवी बेशक दे दी। इस प्रकार एडवर्ड के इस हमले मे कोई दम नहीं था, केवल दिखावा-मात्र रहा। इसी प्रकार फ़िलिप ने भी इसका सामना करने के लिए जो उद्योग किया, वह भी तमाशा ही था। वास्तव मे कोई घनघोर युद्ध के लिए तैयार ही न हुआ। इसलिए एडवर्ड के हाथ कुछ न लगा। उसे फ़्रांस के बादशाह की उपाधि निस्संदेह मिल गई। यह फ़्लेण्डर्स के नागरिकों के अनुरोध और अभ्यर्थना का फल था। उनका मतलब यह था कि यदि वे अब फ़िलिप के विरुद्ध होंगे, तो राजविद्रोह के दोषी न हो सकेंगे।

एडवर्ड ने दूसरा आक्रमण ब्रिटेनी में होकर किया था। किन्तु यह भी पहलेही की तरह निष्फल रहा। पर इसके सम्बन्ध की एक घटना ऐसी है जो उल्लेखनीय कही जा सकती है। ब्रिटेनी का ड्यूक जौन-तृतीय बिना किसी पुत्र के मर गया था। इसलिए एक ओर तो उसका भाई जौन-मोंटफ़ोर्ड और दूसरी ओर उसकी नीस (भान्जी) जेन उसकी उत्तराधिकारी बनना चाहती थी। जेन फ़िलिप के नेफ़्यू (भान्जे) को ब्याही थी। इसलिए फ़िलिप ने जेन का ही साथ दिया, यद्यपि जिस नियम के अनुसार उसे गद्दी मिली थी, वह सर्वथा इसके विरुद्ध था। इसी प्रकार एडवर्ड ने जौन मोंटफ़ोर्ट का साथ दिया और जेन का विरोध किया, यद्यपि जिस नियम के अनुसार वह फ़्रांस का सिंहासन प्राप्त करना चाहता था, उसके अनुसार उसे जेन का साथ देना चाहिए था।

पर असली युद्ध का प्रारम्भ सन् १३४६ ई० में हुआ है। इस बार एडवर्ड ने सीधे नोरमण्डी पर धावा किया। किन्तु शायद इससे भी उसका उद्देश केवल फ्रांस के पश्चिमी किनारे पर अधिकार जमाना था जिससे अँगरेज़ी व्यापार मे असुविधा न हो। नोरमण्डो मे उतर कर वह सीधे केले की ओर बढ़ा। क्योंकि यही उस समय सबसे अच्छा बन्दरगाह था। फ्रेंच लोगों ने मार्ग के पुल तोड़ डाले किन्तु उसकी गति को न रोक सके। आख़िर क्रेसी पर दोनों सेनाओं का सामना हो गया। अँगरेज़ी और फ्रेंच सेनाओं मे बड़ो विभिन्नता थी। यह विभिन्नता इस युद्ध की सभो लड़ाइयों मे दृष्टिगोचर होती रही है। अँगरेजों की सेना प्रायः छोटी होती थी और उसमे अधिकतर प्यादे होते थे किन्तु इनके सिपाही शिक्षित, रण-कुशल और साहसी होते थे। इसके अतिरिक्त ये अपना प्राचीन लम्बा तीर-कमान इस्तेमाल करते थे, जो बहुत ही भयंकर होता था। फ्रेंच-सेना बड़ी तो बहुत थी, किन्तु उसमे संगठन का अभाव था। फ्यूडल-पद्धति के कारण उसको वश मे रखने मे कठिनाई होती थी। इसके अतिरिक्त वे इतने घमंडी थे कि अँगरेज़ी पैदल सिपाहियों को तो वे मानों घृणा की दृष्टि से देखते थे। एडवर्ड ने अपनी छोटो सी सेना क्रेसी की पहाड़ी पर चढ़ा ली थी। घुडसवारों को उसने घोड़े से उतर कर पैदल लड़ने की आज्ञा दे रक्खी थी। फ्रेंच-सैनिक समझते थे कि हम बात की बात में इस सेना को परास्त

कर देंगे, किन्तु जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तब वे पास भी न फटक पाये। हज़ारो मारे गये और अन्त मे बुरी तरह हारे। थोड़े दिनों मे एडवर्ड ने घेरा डालकर केले को भी ले लिया जो दो सौ वर्षों से ऊपर अँगरेज़ों के अधीन रहा।

युद्ध समाप्त नहीं हुआ था कि १३५० में फ़िलिप की मृत्यु हो गई। फ़िलिप के शासन मे फ़्रांस को और तो कोई लाभ नहीं हुआ, केवल बरगेण्डी के अन्तर्गत वीन के डोफ़िन ने निःसन्तान होने के कारण अपनी जागीर इस शर्त पर बादशाह को बेच दी कि वह सदैव फ़्रांस के युवराज के अधिकार मे रहे। उसी दिन से फ़्रांस के युवराज डोफ़िन के नाम से प्रसिद्ध होने लगे।

फ़िलिप षष्ठ के बाद उसका पुत्र जौन गद्दी पर बैठा। जौन 'जौन दी गुड' अर्थात् 'भला' के नाम से विख्यात है। किन्तु वास्तव मे यह लापरवाह और सुस्त था। इसलिए उससे किसी भलाई की आशा रखना व्यर्थ था।

इँग्लैण्ड से युद्ध बराबर चल रहा था। सन् १३५६ मे इँग्लैण्ड के ब्लेक प्रिंस ने पोटियर्स के क्षेत्र पर एक बड़ी भारी फ़्रेंच सेना को बुरी तरह हराया था। उसमे जौन स्वयं क़ैद हो गया था। यह लड़ाई क्रेसी की लड़ाई से यद्यपि बड़ी थी, तथापि इसमे भी महत्त्व कुछ अधिक न था, क्योंकि एक या दो लड़ाइयों मे जीत कर फ़्रांस पर अधिकार जमाना असम्भव था। सारे फ़्रांस मे उस समय छोटे-छोटे क़िले फैले हुए थे। एक

लड़ाई मे जीतने का अर्थ एक या दो क़िलों पर अधिकार करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। अँगरेज़ी सेनाएँ इसी प्रकार एक एक क़िले पर अधिकार जमा कर फ़ांस को वश मे करना चाहती थी।

यद्यपि अँगरेज़ों ने कभी समूचे फ़्रांस को अपने अधिकार मे नहीं कर पाया तथापि इस समय फ़्रांस के निवासियों की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। उसके कई कारण थे। अँगरेज़ लोग अपना अधिकार ही नहीं जमाते थे, वरन् लूट-मार भी करते थे। कही कहीं तो ऐसी बरबादी होगई थी कि अँगरेज़ी सेनाओं को भी यथेष्ट भोजन मिलना कठिन हो गया था। दूसरी भयंकर बात यह थी कि केन्द्रिक सरकार के कुछ शिथिल हो जाने से लोगों और वैस्सलों मे प्राचीन स्वार्थपूर्ण विद्वेष की आग कुछ-कुछ भड़क रही थी। तीसरा कारण राज-दरबार की आर्थिक कठिनाई थी। अब धीरे-धीरे सैनिकों को जागीर आदि के स्थान मे नक़द रुपया देने की प्रथा चल पड़ी थी किन्तु रुपये की कमी के कारण अथवा शान्ति के समय सब सैनिक नौकर नहीं रक्खे जा सकते थे। इसलिए ये लोग ऐसे समयो मे ख़ूब लूट-मार करते थे। विशेषकर किसान लोग ही लूटे जाते थे। किन्तु जब किसान लोग तंग आजाते तो वे भी 'मरता क्या न करता' सिद्धान्त के अनुसार लूट मार करना शुरू कर देते। अपनी मुसीबत का थोड़ा-बहुत मज़ा मध्यम श्रेणी के लोगों को भी चखाते। इनके अतिरिक्त एक दैवी

विपत्ति फ्रांस पर ही नहीं वरन् सारे यूरोप पर टूट पड़ी थी। एक भयंकर महामारी के कारण अत्यधिक नर-नाश हुआ था। कही कही पर तो आधी जनसंख्या नष्ट होगई थी। कहते हैं कि पेरिस की सड़को मे घास जम गई थी और शहर के बाहर भेड़िये भूकते थे।

ऐसी विघ्न-बाधाओं के बीच इंग्लैण्ड से लड़ना सचमुच बड़ा कठिन था। इसका सबसे बुरा परिणाम यह हुआ कि फ्रांस का आर्थिक विकास बिलकुल रुक गया। आमदनी कम थी और युद्ध-संचालन के लिए रुपयों की बड़ी आवश्यकता थी। अतएव फ़िलिप चतुर्थ और पंचम की प्रथा के अनुसार स्टेट्स-जनरल के अधिवेशन किये गये। अधिवेशन तो इसके बहुत से हुए, किन्तु इसका कहना था कि कर लगाने के बदले शासन-प्रबन्ध मे यथेष्ट सुधार और परिवर्तन होने चाहिए। उदाहरण के लिए सन् १३३५ ई० के स्टेट्स जनरल ने कहा—जो अफ़सर टैक्स वसूल करेगे वे जनता के प्रति उत्तरदायी समझे जायँगे, साथ ही जनता को हिसाब-किताब की देख-रेख का भी अधिकार होगा। इतना ही नहीं, सेना का भी सङ्गठन होना चाहिए, और उस पर जनता के प्रतिनिधियों का अधिकार होना चाहिए। सिक्का और कोष-विभाग के सुधार की भी आवश्यकता बताई गई। किन्तु सबसे बड़ी माँग यह थी कि यदि सरकारी कर्मचारी कोई बेजा काम करें तो जनता को बल-पूर्वक उसका निषेध करने

का अधिकार होना चाहिए। पाइटियर्स के युद्ध के बाद जौन को जनरल की बहुत सी बातें स्वीकार भी करनी पड़ी, जो १३५७ के ग्रेट ओरडीनेस के नाम से प्रसिद्ध है। एक वर्ष के लिए कर लगाने की स्वीकृति की गई थी, किन्तु उसकी वसूली और व्यय का अधिकार स्टेट्स-जनरल ने स्वयं अपने हाथ में रक्खा था। स्टेट्स-जनरल का वर्ष मे तीन बार अधिवेशन होने का नियम रक्खा गया था, बादशाह उसको चाहे या न चाहे। यहाँ तक कि बादशाह के दरबार मे इस सभा के कुछ प्रतिनिधि नियुक्त किये गये थे।

किन्तु ओरडीनेन्स ही स्टेट्स-जनरल की सबसे बड़ी सफलता थी। क्योकि धीरे-धीरे उसके सिद्धान्त इतने क्रान्तिकारी होने लगे कि वह साधारण जनता को सह्य न हुए। इसके अतिरिक्त यह राजविद्रोहियों का साथ देने, यहाँ तक कि अपनी विजय के लिए अँगरेज़ो से सहायता लेने के लिए उद्यत हो गई। अतएव कुछ दिनों मे जनता बिलकुल इसके विरुद्ध हो गई और डौफ़िन चार्ल्स ने फिर अपना प्रभाव जमा लिया।

इसी बीच मे एडवर्ड-तृतीय भी व्यर्थ के युद्ध से तङ्ग आकर सन्धि के लिए राज़ी होगया। क्योंकि एक तो पाइटियर्स के बाद उसकी कोई बड़ी विजय नहीं हुई थी दूसरे, होती भी तो उससे कोई विशेष लाभ नही था। अतएव बड़े सोच-विचार के बाद १३६० मे ब्रिटिनी की सन्धि हो

गई। सन्धि की शर्तें थीं कि एडवर्ड फ्रेंच बादशाहत पर अपने अधिकार की बात न उठाये और उसको फ्रांस के अन्तर्गत इँग्लैण्ड की प्राय: पूरी जागीर लौटा दी जायँ, और वह भी वैस्सल रूप से ही नहीं वरन् बिलकुल स्वतन्त्र रूप से। ३० लाख क्राउन के बदले अँगरेज़ जौन को भी लौटाने के लिए राज़ी हो गये। ज़मानत के रूप मे उसके दो पुत्र अँगरेज़ो के पास थाती रख दिये गये और जौन फ्रांस लौट आया, किन्तु उसका एक पुत्र वहाँ से भाग निकला। जब जौन ने यह वृत्तान्त सुना तब उसने स्वेच्छा से अँगरेजो के हाथों मे आत्मसमर्पण कर दिया और लण्डन मे ही सन् १३६४ मे मर गया। उस समय के बड़े लोगो मे इसी प्रकार का वीर-भाव जागृत हो रहा था। प्राणों की परवाह न करके वे अपने सिद्धान्त पर अटल रहते थे। यह उस वीरयुग का ही प्रभाव था जो कि जौन ने स्वयं आत्म-समर्पण किया था।

चार्ल्स पञ्चम (१३६४-१३८०)

जौन के बाद सन् १३६४ मे चार्ल्स पञ्चम गद्दी पर बैठा। इसको बुद्धिमान् की उपाधि दी गई थी। यह बुद्धिमान् था या नहीं, यह दूसरी बात है, किन्तु इसका स्वभाव अपने बाप के प्रतिकूल था। न तो यह बड़ा सिपाही ही था और न भावापन्न वीर। हॉ, इसकी कूटनीतिज्ञता और चतुराई मे कोई सन्देह नहीं। यह आदमियों को परखना

जानता था। इसका साथी और सिपहसालार बरट्रण्ड डी गैसक्लिन प्रारम्भ मे एक बहुत ही साधारण आदमी था। चार्ल्स का उद्देश था कि वह एक बार फिर फ्रांस को अपने प्राचीन गौरव तक पहुँचा दे और इसमे वह बहुत कुछ सफल भी हुआ।

वह इस ताक में था कि कब मौक़ा मिले और मैं युद्ध छेड़ूँ। भाग्य से केसटाइल के राज्य मे आपस मे विद्रोह मचा। चार्ल्स ने अपने फ़ालतू सिपाही वहाँ भेज कर उनसे अपना पिंड छुड़ाया। इधर एडवर्ड दी ब्लेक प्रिंस भी इस पारस्परिक झगड़े मे बेतरह फँस गया था। रुपयों के लिए उसे फ्रांस की प्रजा पर कर लगाना पड़ा। फल यह हुआ कि ये लोग चार्ल्स के पास इसकी शिकायत ले गये। बस झगड़ा शुरू हो गया।

इस बार फ्रेंच लोग युद्ध भी बड़ी हिकमत से किये। वे आमने-सामने की लड़ाई नहीं लड़ते थे। किन्तु मौक़े के अनुसार लड़ते और पीछे हट जाते थे। कभी कभी उन पर एकाएक धावा करते और कभी उनकी रसद रोक देते। ब्लेक प्रिंस पहले ही से तंग हो गया था, वह इँग्लेण्ड चला गया और वहीं मर गया। इधर एडवर्ड भी इतना बुड्ढा हो गया था कि स्वयं युद्ध का संचालन नही कर सकता था। ऐसी अवस्था मे चार्ल्स ने धीरे-धीरे समुद्र के किनारे के कुछ नगरो को छोड़कर अँगरेज़ों से अपने सारे प्रान्त लौटा लिये।

जिस प्रकार चार्ल्स इंग्लेण्ड के साथ युद्ध करने मे सफल हुआ था, उसी प्रकार राजकीय निर्माण मे उसका बड़ा हाथ था। चालीस वर्ष के निरन्तर युद्ध-विपत्तियों के बाद उसने जो काम कर दिखाया, वह किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। एक तो उसने स्टेट्स जनरल की भयंकरता समझ ली, अतएव उसके प्रभाव को कम करने के लिए उसने पूरा प्रयत्न किया। उसने कर लगाने की एक नई व्यवस्था तैयार की और उसकी वसूली एव हिसाब किताब का भी पक्का प्रबन्ध कर दिया। साथ ही यह नियम बनवा दिया कि जिस कर के लिए एक बार स्वीकृति ले ली जाय वह सदैव बिना किसी स्वीकृति के वसूल किया जा सकता है। इस प्रकार स्टेट्स जनरल का महत्त्व कम हो गया। उसका दूसरा काम सेना का संगठन था। फ्यूडल ज़माने मे बैरन अपने आप को बादशाह के उतने अधीन नहीं समझते थे जितने कि अपने आपको अपनी टुकड़ी का स्वामी। किन्तु जब इसने जागीर और ताल्लुको के स्थान मे एकदम रुपया देने की प्रथा चला दी तब यह बात जाती रही। सम्पूर्ण सेना समान रूप से बादशाह के हाथ मे आगई। बैरन इत्यादि का गर्व चूर्ण हो गया। इतना ही नही उसने बहुत सी अनावश्यक गढ़ियाँ और क़िले भी तुड़वा दिये। इसी के समय मे बारूद का भी आविष्कार हुआ। उस समय से वह बराबर युद्धो मे काम आने लगी।

चार्ल्स की मृत्यु के बाद १३८० मे चार्ल्स षष्ठ गद्दी पर बैठा। किन्तु इसके बैठते ही फ्रांस मे फिर विपत्तियों का दौरा शुरू होगया। पर इस बार की अधिकांश विपत्तियों का कारण घरेलू झगड़े ही थे, न कि बाहिरी आक्रमण। चार्ल्स गद्दी पर बैठने के समय केवल ११ वर्ष का था। इसलिए राज्य-कार्य उसके चाचा फ़िलिप के हाथो मे पड़ा। यह बड़ा ही स्वार्थी था। इसका एक-मात्र ध्यान अपनी बरगेण्डी की जागीर को पुष्ट करने की ओर था। उसके लिए यह बादशाह के हित अथवा फ्रांस की भलाई न्योछावर करने को भी तैयार था। इसने फ्लेंडर्स के काउण्ट की शादी की थी। फ्लेंडर्स के नागरिक आज-कल फिर भारी करों के विरोध-स्वरूप बिगड़ रहे थे। फ़िलिप ने बादशाही फ़ौज की सहायता से इनको बुरी तरह हरा दिया। इसके डर से अन्य नगरों के सार्वजनिक आन्दोलन भी कुछ दिनो के लिए ठंडे पड़ गये।

बीस वर्ष की आयु में चार्ल्स षष्ठ ने बादशाहत की बाग-डोर सँभाली और अपने पिता के मंत्रियों को पुनः नियुक्त किया। किन्तु इस बार कोई सुधार न हो सका। क्योंकि बादशाह का स्वास्थ्य भी ख़राब था और दिमाग़ भी। ज्यों-ज्यो उसकी आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका पागलपन भी वृद्धि पाता गया। अतएव वह मरण-पर्यन्त बड़े लोगों का खिलौना बना रहा। बड़े लोगों मे एक तो उसका चाचा और उसका दल था और दूसरा भाई जो ओरलियन्स का ड्यूक था। यद्यपि यह

होनहार युवक था तथापि यह भी फ़िलिप के समान ही स्वार्थी था। इसी कारण सारा फ़्रांस उस समय इन दोनों के दलों मे बँट सा गया था। फ़िलिप के फ़्लेंडर्स के काउंट हो जाने के कारण जन-साधारण की सहानुभूति उसकी ओर अधिक हो गई थी और ओरलियन्स के ड्यूक की ओर उच्चश्रेणी के अमीर अधिक थे।

सन् १४०४ मे ड्यूक फ़िलिप की मृत्यु हो गई। उसके स्थान पर जॉन दी फ़िअरलेस (निडर) गद्दी पर बैठा। उसने ड्यूक आव ओरलियन्स को मरवा डाला। किन्तु ओरलियन्स के मर जाने से उसका दल नष्ट नही हुआ। ड्यूक आव आरमेनेक्स उसके नेता बन गये और दोनो पार्टियो मे निरन्तर युद्ध चलता रहा। बरगेण्डीवालो ने पेरिस को अपने अधिकार मे कर लिया। वहाँ कुछ दिनों के लिए हुल्लडशाही का राज्य हो गया। पेरिस की यूनीवर्सिटी जैसी संस्था भी सर्वसाधारण का साथ दे रही थी। १४१३ मे स्टेट्स् जनरल का अधिवेशन हुआ। उसमे बड़े लम्बे-चौड़े सुधारो के प्रस्ताव पास हुए। किन्तु सुधार का पेनडुलम एकाएक जितना आगे बढ़ गया था, थोड़ो ही देर मे वह उतना ही पीछे हटा। फ़्रांस के इतिहास मे यह दृश्य एक स्थल पर नहीं, अनेक स्थलों पर दिखाई देता है। जनता हुल्लड़शाही से नाराज़ होगई। आरमेनेक फिर शक्ति-शाली हो गये। फ़्रांस मे इसी प्रकार गृह-कलह मचा हुआ था कि इँग्लैण्ड के नवयुवक बादशाह हेनरी

पंचम ने विजय-लालसा से प्रेरित होकर फ्रांस पर धावा बोल दिया।

वास्तव मे यह अवसर भी आक्रमण के लिए सर्वथा उपयुक्त था। आरमेनेक्स दलवालो मे इतनी शक्ति नहीं थी कि वे अँगरेज़ों का सामना करते। बरगेण्डीवाले तो खड़े-खड़े तमाशा देखना चाहते थे। हेनरी ने नोरमण्डी के पश्चिमोत्तर दिशा मे एडवर्ड के समान आगे बढ़ना शुरू किया। क्रेसी के समान एगिनकोर्ट पर बड़ी लड़ाई हुई, इसमे भी अँगरेज़ो की एक छोटी सी सेना ने फ्रांसीसियों के बड़े भारी सैन्य को हरा दिया। इस युद्ध के बाद हेनरी ने एक एक करके उत्तरी फ्रास के क़िलो पर अधिकार जमाना शुरू किया। आरमेनेकस पहले ही से हताश हो रहे थे। एक चाल के द्वारा सन् १४१८ मे ड्यूक जौन ने पेरिस को अपने वश मे करके चार्ल्स बादशाह को भी अपनी मुट्ठी मे कर लिया। किन्तु डौफ़िन अब भी ओर-लियन्स के साथ मे था, उसको बरगेनडियन्स से बड़ी घृणा थी। उसने भी संधि के बहाने से ड्यूक जौन को बुलवाकर मरवा डाला।

इस हत्या का बहुत ही संघातक परिणाम हुआ। बरगेण्डी का नया ड्यूक एकदम अँगरेज़ो से जा मिला। फ्रांस के राजा और रानी ने भी उसका साथ दिया। ट्रोयस मे एक संधिपत्र लिखा गया। उसमे यह निश्चित हुआ कि जब तक चार्ल्स

जीवित रहे तब तक तो वही बादशाह रहे, किन्तु उसके मरने के बाद हेनरी ही फ्रांस का बादशाह माना जाय। किन्तु हेनरी चार्ल्स के पहले ही चल बसा और दुर्भाग्यवश उस समय उसका पुत्र केवल एक वर्ष का था। अतएव उसके चाचा ड्यूक आव बेलफोर्ड तो उसके फ्रांसीसी राज्य के और ड्यूक आव ग्लोस्टर उसके इंग्लिश-राज्य के अभिभावक नियुक्त हुए। फ्रांस मे केवल बेरगेनडियन पार्टी ने ही इंग्लैंड के हेनरी-षष्ठ को बादशाह माना था। ओरलियन्सवाले अब भी डौफिन के साथ थे। किन्तु लोयर के दक्षिणी भूभाग के अतिरिक्त इनके पास और कुछ नहीं था। बरगेनडियन दल-वालो के इस पर भी दाँत लगे हुए थे। बेडफोर्ड के ड्यूक थे भी एक कुशल राजनीतिज्ञ। उन्होने झट से डौफिन के निवास-स्थान ओरनियन्स पर घेरा डाल दिया। उसका पतन निश्चित सा था। ओरलियन्सवाले उसकी रक्षा के लिए जो प्रयत्न कर रहे थे वे बिलकुल उपहासास्पद मालूम होते थे। डौफिन और उसके साथियो को बचाव का कोई उपाय नहीं सूझता था। इसी समय उनके पास एक ऐसी सहायता आई जिसकी कभी किसी को स्वप्न में भी आशा न थी। ऐसी ही घटनाओ के कारण ऐतिहासिको को मानना पड़ता है कि लौकिक-शक्तियो के अतिरिक्त भी कोई दैवी शक्ति है जो न जाने कब और किस प्रकार हमारे कार्यों मे हस्तक्षेप किया करती है।

जौन आव आर्क बरगेण्डी के सीमान्त-प्रान्त मे रहनेवाले एक किसान परिवार की लड़की थी। बचपन ही से वह अपने चारों ओर दुःख-दर्द और अत्याचार के दृश्य देख रही थी। धार्मिक बातों मे विश्वास होने के कारण यह उसकी पक्की धारणा हो गई थी कि यह ईश्वर की मर्जी के विरुद्ध है। उसके हृदय मे शान्ति की इच्छा उत्तरोत्तर तीव्र होने लगी। उसको ऐसा मालूम होने लगा, जैसे मानो ईश्वर स्वयं उसको यह आदेश कर रहा है कि वह अपना काम छोड़ कर शान्ति-स्थापना के लिए कटिबद्ध हो जाय। वह तैयार हो गई। किन्तु दूसरों को अपने दैवी आदेश का विश्वास दिलाने मे उसे बड़ी कठिनाई हुई। डौफ़िन के पास पहुँच कर उसने अपना सन्देश सुनाया। लोगो ने उसका प्रबल विरोध किया। किन्तु उसकी विजय हुई। लोगो ने उसका नेतृत्व स्वीकार कर लिया।

फ्रांस को यदि इस समय किसी बात की आवश्यकता थी तो वह एक उत्साहपूर्ण नेतृत्व ही था। जनता तो इसके लिए पहले ही से तैयार थी। जो स्थान अँगरेज़ो के अधीन थे, उनमे इस भाव के लक्षण पहले ही से दिखाई देने लगे थे। वास्तव मे अब लोगो के हृदय मे राष्ट्रीयभाव जागृत हो रहे थे। उनको मालूम हो गया था कि फ्रांस एक है और हम किसी प्रकार अँगरेज़ो की अधीनता नहीं स्वीकार कर सकते। लोगों के दिल मे यह इच्छा पहले ही काम कर

विजयी जोन ऑफ़ आर्क का आरलिएन्स में प्रवेश।—पृ० १७

रही थी, जौन आव आर्क ने उसको कार्य-रूप मे परिणत कर दिया। उसकी सफलता का रहस्य था ईश्वर की दयालुता और न्याय-प्रियता मे अटूट विश्वास। उसमे कोई विशेष सैनिक योग्यता नहीं थी। वह आगे खडी हो गई और लोग उसके पीछे हो लिये।

सबसे पहले उसने ओरलियन्स का घेरा हटा दिया और फिर अपना उद्देश पूरा करने के लिए आगे बढ़ी। उसका कहना था कि वह रीम्स के क़िले मे पहुँच कर डौफ़िन के सिर पर ताज रक्खेगी। और सचमुच वह अपने कार्य मे असाधारण रूप से सफल हुई। ६ मार्च १४२९ को पहले-पहल वह डौफ़िन के दरबार मे पहुँची थी और १७ जुलाई को उसने रीम्स मे पहुँच कर डौफ़िन को बादशाह बना दिया। वह चार्ल्स सप्तम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बस, यही उसका काम समाप्त हो गया। मई १४३० मे बरगें-डियनों ने उसे क़ैद कर लिया और अँगरेज़ो के हाथ बेच दिया। उन्होने उसे फाँसी पर लटका दिया। वास्तव मे उसकी फाँसी एक बड़ी भयङ्कर भूल और शोकजनक घटना है। जौन आव आर्क का काम पूरा हो चुका था। अब उसमें शक्ति नहीं रह गई थी। उसको मारना व्यर्थ था। किन्तु उसकी मृत्यु के लिए कौन उत्तरदायी है, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। इसमे सन्देह नहीं कि अधिकांश उत्तर-दायित्व अँगरेज़ों के ही मत्थे रहेगा, यद्यपि चार्ल्स सप्तम

उससे सर्वथा शून्य नहीं कहा जा सकता। रही जौन की बात, सो उसके लिए कोई सोच नहीं है। जीवित रह कर उसने फ्रांस का उद्धार किया और मरने पर शहीद हुई, उसने लोगो को सर्वोत्कृष्ट त्याग का मार्ग दिखा दिया।

इस दिन से फ्रांसीसी सेनाओं को बराबर सफलता मिलती रही। इसका एक कारण यह भी था कि उन्होने खुली लड़ाई लड़ना छोड़ दिया। केवल अपना मौका देखकर लड़ते थे। बहुत से स्थानों की जनता ने ज्योंही सुना कि फ्रेंच-सेनाएँ आ रही हैं, त्योंही वह बिगड़ खड़ी हुई और अँगरेज़ी सेनाओं को आत्म-समर्पण करना पड़ा। इधर १४३१ मे ड्यूक आव बेडफ़ोर्ड की मृत्यु हो गई और अँगरेज़ों मे आपस मे फूट पड़ गई। सन् १४३५ मे बरगेण्डी के ड्यूक ने भी अँगरेज़ों का साथ छोड़ कर बादशाह से सन्धि कर ली। १४३६ मे पेरिस, १४४९ मे रुआँ, १४५० मे नोरमेण्डी, १४५१ मे बोर्डो और गिनी चार्ल्स सप्तम के हाथ मे आ गये। गिनी का तो फ्रेंचों के हाथ मे आने का पहला अवसर था। वह तीन सौ साल से अँगरेज़ों के अधिकार मे थी। बस, अब केले को छोड़ कर फ्रांस मे और कोई स्थान अँगरेज़ों के शासन मे नहीं रह गया था। फ्रांस इस बार न केवल भौगोलिक रूप से वरन् राष्ट्रीय भावनाओं से सञ्चित होकर फ्रेंच बादशाह की अधीनता में आगया।

चार्ल्स सप्तम का स्थान भी फ्रेंच राष्ट्र के निर्माण मे

महत्त्व-पूर्ण है। एक तो वह अपनी विजयों के लिए प्रसिद्ध है, और दूसरे युद्ध के बाद उसने जिस प्रकार शासन किया उससे फ्रांस भी समृद्धि-शाली हुआ और उसकी राजकीय शक्ति भी बढ़ी। राजकीय मामलों मे उसकी नीति अपने प्रपितामह चार्ल्स दी वाइज़ (बुद्धिमान) से मिलती-जुलती थी। उसने रहे-सहे बैरनों को समझा दिया कि यदि उन्हे फ्रांस मे रहना है तो बादशाह की अधीनता स्वीकार करके रहना चाहिए। इस पर बैरनों ने अन्तिम बार उपद्रव भी करना चाहा, किन्तु उनको हार खानी पड़ी।

शासन-व्यवस्था के विषय मे उसके दो कार्य उल्लेखनीय हैं। एक तो यह कि सेना का सङ्गठन पूर्णरूप से बादशाह के हाथ मे आगया, अब बिना राजाज्ञा के कोई सेना का सञ्चालन नही कर सकता था और सेना के भार को उठाने के लिए उसने भूमि पर एक शाश्वत कर लगा दिया। उसने, स्टेट्स-जनरल से साफ़ कह दिया कि इस कर के लिए बार बार स्टेट्स-जनरल की स्वीकृति लेने की आवश्यकता नहीं। वास्तव मे वह भी इस बात को समझ गया था कि राजतन्त्र की दृढ़ता के लिए स्टेट्स-जनरल की आवश्यकता नहीं। अतएव उसने उसके कम से कम अधिवेशन किये। उसके लड़के लुई ११ वें ने तो बाईस वर्षों के बीच स्टेट्स-जनरल का केवल एक ही अधिवेशन किया था। इस प्रकार फ्रांस में राष्ट्रीय व्यवस्थापक सभाओं के विकास मे एक बड़ी

भारी बाधा पड़ गई। बात यह थी कि अमीर-उमराओं और उच्चकोटि के लोगों को भूमि-कर नहीं देना पड़ता था, इसलिए उन्होने न तो स्टेट्स-जनरल मे उसका विरोध किया और न प्रतिवर्ष स्टेट्स-जनरल द्वारा उसकी स्वीकृति कराने की आवश्यकता समझी। जन-साधारण मे तो उस समय इतनी शक्ति थी ही नहीं कि वे सफलता-पूर्वक स्टेट्स-जनरल के अधिवेशन करवा सकते। अतएव राजा की स्वछन्द शक्ति मे फिर वृद्धि होने लगी और उच्च श्रेणी एवं जन-साधारण के स्वार्थ दिन-प्रति-दिन पृथक् होते गये। इंग्लैण्ड मे यह बात न थी, अतएव पार्लियामेंट वहाँ उत्तरोत्तर शक्ति-शालिनी होती गई।

प्रकरण १०

यूरोप में फ्रांस का प्रसार

लुई ११। (१४६१-१४८३ ई०)

लुई ११ वें के राज्य के साथ फ्रांस मे एक नूतन युग का प्रारम्भ होता है। एक तो शतवर्षीय महायुद्ध का अन्त हो गया था। किन्तु यह कोई नूतन युग का सूचक नहीं। वास्तव मे अब एक प्रकार से फ्रांस का निर्माण पूर्ण हो गया था। फ्यूडल-संस्था का अन्त हो जाने के कारण सभी लोग राजा को समान रूप से अपना स्वामी मानने लगे थे। अमीर-उमराओं अर्थात् बेरन, काउन्ट, ड्यूक आदि लोगों की शक्ति का ह्रास हो गया था। इतना ही क्यों, चर्च और व्यवस्थापक सभाओ की भी शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी। मतलब यह कि फ्रांस मे बड़े उत्साह के साथ स्वतन्त्र और स्वच्छन्द राजतन्त्र की प्रतिष्ठा हो रही थी। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि फ्यूडल-संस्था का नाश होने के साथ केवल फ्रांस ही मे नहीं, वरन् यूरोप मे सर्वत्र इसी स्वतंत्र राजतंत्र के लक्षण दिखाई दे रहे थे। यूरोप के राजाओं को अपने घरेलू झगड़ों से कुछ अवकाश मिलने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे धीरे-धीरे अपने समीपवर्ती देशों मे अपना प्रभाव

बढ़ाने की कोशिश करने लगे। अतएव उनके स्वार्थों का संघर्ष होना बिलकुल स्वाभाविक था और वास्तव मे हुआ भी ऐसा ही। संक्षेप मे इस युग को हम अन्तर्राष्ट्रीय-स्पर्द्धा, कूटनीति, एवं युद्ध का युग कह सकते हैं। यद्यपि अभी तक वास्तविक और प्रबल अन्तर्राष्ट्रीय नीतियो का प्रचलन नही हुआ था, तथापि यह निश्चित था कि अब राष्ट्रीय समस्याये गौण एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुख्य हो गई हैं।

किन्तु इस समय फ्रांस के सामने एक ऐसी कठिनाई उपस्थित थी जिसे न तो हम एकदम राष्ट्रीय कह सकते हैं और न एकदम वैदेशिक। बरगेण्डी का ड्यूक चार्ल्स दी वोल्ड लुई का परम शत्रु था। उसके पास फ्रांस के राज्य-घराने मे से होने के कारण कुछ तो फ्रांस की जागीरें थी और कुछ जर्मनी की। वास्तव मे वह बादशाह की पदवी धारण करके फ्रांस के उत्तर-पूर्व मे एक नया राज्य ही स्थापित करना चाहता था। उसने अपनी जागीर मे फिर से एक प्रकार की फ्यूडल-पद्धति जारी कर दी थी। उसकी शक्ति भी अधिक थी। उसने लुई के मार्ग मे अड़चनें भी बहुत डालीं। पर लुई साधारण आदमी नही था। ऐतिहासिकों के अतिरिक्त साहित्यज्ञों ने भी लुई के चरित्र का ख़ूब ही चित्रण किया है। शायद वह तत्कालीन लोगो के लिए अधिक लोक-प्रिय विषय सिद्ध हुआ था। इसके दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि वह फ्यूडल बादशाह नही था, दूसरा यह कि वह

अपना काम निकालने के लिए किसी प्रकार की कूटनीति से संकोच नही करता था। अवसर पड़ने पर वह अपने शत्रुओं के आगे झुकता भी था और समय पाकर वह अपनी बात पलट देता, यहाँ तक कि अपनी पवित्र सौगन्धो की भी परवाह नहीं करता था। उसका आदर्श वाक्य था—जिसके हाथ मे सफलता रहेगी, उसे गौरव भी मिलेगा। उसका अधिकाश समय बरगेण्डी और इटली के साथ लड़ाई-झगड़ा करने मे ही समाप्त हुआ है। और उनके साथ उसने अपनी कूटनीति का ख़ूब प्रयोग भी किया।

कौमारावस्था मे लुई और उसके पिता चार्ल्स-सप्तम की नही पटती थी। इसलिए लोगो को यह आशा थी कि जब यह सिंहासन पर बैठेगा तब शायद उसके दृढ़ शासन मे कुछ शिथिलता आ जायगी। किन्तु यह केवल भ्रम निकला। लुई अपने राजकीय अधिकार एवं शक्ति के मामले मे एक रत्ती भर भी छोडने के लिए तैयार न था। हाँ, उसने अपने पिता को बेशक निकाल दिया। सबसे पहले बरगेंडी के साथ उसकी मुठभेड़ हुई। उसने अरीज़ की सन्धि के अनुसार कुछ धन देकर सोमनदी पर स्थित नगर मोल ले लिये। वैसे सन्धि के अनुसार ये नगर बरगेंडी को मिले हुए थे। फिर क्या था, झगड़े का सूत्रपात होगया। बरगेंडी के ड्यूक के नेतृत्व मे सर्वाभ्युदय-संस्था के नाम से फ़ांस के उन सब बैरनो ने जो लुई से असन्तुष्ट थे एक सभा बना

दिन से चार्ल्स दो बोल्ड की दशा बिगड़ती गई। शाहन्शाह फ्रेडेरिक तृतीय से उसने 'बादशाह' की पदवी के लिए प्रार्थना की थी, वह स्वीकृत न हुई। इधर स्विस और लौरेन के ड्यूकों ने उससे लड़ाई छेड़ दी, क्योकि उसने उनकी कुछ भूमि दबा ली थी। उनके साथ युद्ध करते हुए चार्ल्स मारा गया और लुई को इस प्रकार अपने सबसे प्रबल शत्रु से छुटकारा मिल गया।

वास्तव मे चार्ल्स की मृत्यु से लुई को बड़ा लाभ हुआ। क्योंकि मेरी नामक लड़की के अतिरिक्त उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। लुई ने बरगेंडी को तो फ़ौरन फ्रांस में मिला ही लिया और साथ ही जर्मनी की जागीरे छीनने का भी उद्योग किया। मेरी असहाय थी। उसने अपनी रक्षा के लिए आस्ट्रिया के शाहन्शाह के पुत्र से शादी भी की, किन्तु इससे उसे कोई विशेष लाभ न हुआ। तथापि यह विवाह राजनैतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व-पूर्ण था। क्योंकि इसके द्वारा हेप्सवर्ग के राज्य-घराने को फ्रांस के उत्तर-पूर्व मे कुछ प्रदेश मिल गये जिनके लिए लगभग दो सौ वर्षों तक बराबर इन दोनों देशों—आस्ट्रिया और फ्रांस मे युद्ध होते रहे।

बरगेंडी के अतिरिक्त लुई ने अन्य कई प्रदेशों को भी अपने शासनान्तर्गत कर लिया। ऐंजो के काउन्ट के परिवार की इसी बीच मे इतिश्री होगई थी। कोई प्रधान उत्तराधिकारी न रह जाने के कारण लुई ने उस राज्य-घराने की अधिकांश जागीर अपने अधिकार मे कर ली। इतना ही नहीं, इसके

साथ उसे नेपल्स के राज्य पर दावा करने का भी सुअवसर मिल गया। इसके द्वारा उसे रोन नदी के पूर्व प्रोवेंस नाम की एक नई काउण्टी (सूबा) मिल गई जो भाषा, भाव, नाम इत्यादि मे फ़्रेंच लोगो से कई शताब्दियो पहले ही बिलकुल पृथक् हो गई थी। इसके साथ लुई को रोसीलन प्रदेश भी मिल गया जिससे फ़्रांस देश का विस्तार दक्षिण की ओर प्रेरेनीज़ तक फैल गया। क्या यह आश्चर्य की बात नही है कि केवल शब्दों और रुपयो से लड़नेवाले बादशाह ने फ़्रांस के ऊपर इस प्रकार सफलता-पूर्वक राज्य किया जिस प्रकार हथियारो से लड़नेवाले बहुत कम बादशाह कर सके थे।

लुई का शासन और भी कई बातों के लिए प्रसिद्ध है। एक तो वह एकदम व्यक्तिगत था अर्थात् वह स्वयं अपने छोटे-बड़े नौकरो को अपनी सूक्ष्म बुद्धि के अनुसार नियुक्त किया करता था और वह भी अधिकतर निम्नश्रेणी के लोगों मे से, क्योकि वे सर्वथा उसी पर अवलम्बित रहते थे। दूसरे उसने मनमाने कर बढ़ा दिये। इसके लिए उसने स्टेट्स-जनरल के अधिवेशनों की कोई आवश्यकता न रक्खी। कोई कोई कर तो चौगुने हो गये। तीसरे उसने सैनिक दल का महत्त्व घटा दिया, क्योंकि वह अधिकतर अपनी सेनाओं मे विजातीय लोगो को नौकर रखता था। स्विस लोग बहुत दिनों तक ईमानदारी के साथ फ़्रेंच-सेनाओ मे काम करते रहे। चौथी बात यह थी कि उसने बड़ी अच्छी तरह फ़्रांस की राष्ट्रीय योग्यता का

अनुभव कर लिया था। इसी उद्देश से उसने समस्त फ्रांस के लिए एक ही क़ानून-व्यवस्था तैयार करने की योजना की थी। पाँचवे उसी ने पहले-पहल फ्रांस की राज्य-वृद्धि के लिए कूट-नीति का आश्रय लिया जो कालान्तर मे अन्तर्राष्ट्रीय पालिसी के नाम से विख्यात हुई।

चार्ल्स ८, (१४८३—९८)

अपने पिता लुई ११ की मृत्यु होने पर जब चार्ल्स ८ सन् १४८३ मे गद्दी पर बैठा, तब उसकी आयु केवल १३ वर्ष की थी। इसलिए उसकी बड़ी बहन बोजो की ऐनी 'संरक्षक' का काम करने लगी। यह बहुत ही चतुर स्त्री थी। तथापि लुई की कठोरता के नीचे दबे होने के कारण कुछ लोगों को सिर उठाने का यह अच्छा अवसर मिला गया। वे ओरलियन्स के लुई की अध्यक्षता मे, जो स्वयं संरक्षक बनना चाहता था, एकत्र होने लगे। कुछ काल के पश्चात् लोगो के आग्रह से ऐनी ने स्टेट्स-जनरल के अधिवेशन की आज्ञा दे दी। उस समय फ्रेंच-व्यवस्थापक सभाओं की यह विशेषता सी हो रही थी कि वे अपने समय से बहुत आगे बढ़कर बातें सोचा करते थे। यही हाल उस सभा का हुआ। उसने बड़ो स्वतंत्रता के साथ सरकार के दोषो का निरूपण किया और सुधारों की भी एक लम्बी चौड़ी सूची बना डाली। यह भी घोषित किया कि प्रत्येक कार्य जनता के हाथ मे होना चाहिए और

बादशाह को सदैव उसके प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। साथ ही यह प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ कि स्टेट्स-जनरल की स्वीकृति के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता और प्रत्येक दूसरे वर्ष इसके लिए स्टेट्स-जनरल का अधिवेशन अवश्य हुआ करेगा। ये बातें अच्छी ज़रूर थीं, किन्तु शोभा नहीं देती थीं। इनका परिणाम देखने ही से आपको हमारी बात समझ मे आ जायगी। क्योंकि इस अधिवेशन के बाद सौ वर्षों के भीतर स्टेट्स-जनरल के ५० अधिवेशनों के स्थान पर केवल १ अधिवेशन हुआ। और तीन सौ वर्षों मे उसके ७ अधिवेशन से अधिक न हो सके। वास्तव मे लोगों को यह न मालूम था कि वे पुस्तकों को कार्य रूप मे कैसे परिणत कर सकते हैं।

किन्तु ओरलियन्स के लुई को तो ऐसी कोरी बातों से संतोष न हो सकता था। उसने तुरन्त हथियार उठा लिये। इस कार्य में उसे फ्रांस के प्राचीन बैरनों मे से बचे हुए एक-मात्र प्रतिनिधि ब्रिटेनी के ड्यूक से भी सहायता मिल गई थी। किन्तु तौ भी यह युद्ध छेड़ना सरासर मूर्खता थी। एक लड़ाई मे इनकी पराजय हो गई और इसके फलस्वरुप ब्रिटेनी की जागीर फ्रांस के राज्य मे सम्मिलित कर ली गई। हां, ब्रिटेनी की उत्तराधिकारिणी राजकुमारी से नवयुवक बादशाह विवाह करने के लिए बेशक तैयार हो गया। पर उसका पिता पहले ही से मेक्सीमिलियन और मेरी की पुत्री

के साथ उसका विवाह तय कर चुका था । अतएव चार्ल्स असमंजस मे पड़ गया। परन्तु उसने आस्ट्रिया के मेस्कमिलियन, स्पेन के फ़रडीनेण्ड और इँग्लैण्ड के हेनरी ७ को थोड़ी थोड़ो घूस देकर अपना काम बना लिया। चार्ल्स एक प्रकार से अपनी भविष्य-चिन्ता से निश्चिन्त सा था। क्योंकि अपने पिता और पितामह के अनुग्रह से रुपये भी काफ़ी थे और सेना भी सुसंगठित थी। किन्तु चार्ल्स चुप चाप बैठनेवाला नहीं था। उसने अपने नेपल्स के उत्तराधिकार के आधार पर इटली पर धावा बोल दिया। इसके फल-स्वरुप आगामी शताब्दी मे फ़्रांस और इटली के बीच बरा बर युद्ध होते रहे। इससे इन देशो को जो हानि हुई सो तो हुई पर इटली और फ़्रांस के ख़ून का भी बहुत कुछ मिश्रण हो गया, जो फ़्रेंच लोगों के स्वभाव मे प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इसके कुछ ऐतिहासिकों ने चार्ल्स को दोषी ठहराया है, परन्तु वास्तव मे इटली की अवस्था ही उस समय ऐसी थी कि सभी राज-लोलुप बादशाहों की दृष्टि उस पर जमी हुई थी। इसके अतिरिक्त चार्ल्स को स्वयं नेपल्सवासियों ने अपने यहाँ बुलाया था, क्योंकि वहाँ के राजा की लोकप्रियता घटती जाती थी।

सन् १४९४ मे चार्ल्स ने अपनी शानदार फ़ौज के साथ इटली मे प्रवेश किया। घड़ी भर के लिए मानों सभी उसकी शान के वशीभूत हो गये। फ्लोरेन्स ने अपने अधिपति

को हटाकर प्रजातंत्र की घोषणा कर दी और सप्रेम चार्ल्स का स्वागत किया। रोम मे पोप को भी उसका आदर करना पड़ा और नेपल्स के राजा मे तो इतनी शक्ति ही न थी कि वह इसका सामना करता। किन्तु इसके बाद ही सन् १४९५ मे तख़्ता उलट गया। उसकी प्रजा उसके भारी करो के बोझ से दबी जा रही थी। इधर स्पेन का फरडोनेण्ड उसके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। और लुडोविको सूर एवं आस्ट्रिया के मेक्सीमिलियन ने भी उसके मार्ग मे बाधा डालने की कोशिश की। यहाँ तक कि इॅग्लैण्ड का हेनरी भी उसके शत्रुओ मे जा मिला। इसलिए चार्ल्स तुरन्त ही लौट पड़ा और उत्तरी इटली के एक रणक्षेत्र मे अपने शत्रुओं को हराता हुआ सकुशल फ्रांस लौट आया। चार्ल्स का शेष जीवन सुखभोग मे बीता। सन् १४९८ मे एक अचानक घटना से उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद लुई १२ वॉ सिंहासन पर बैठा। इसने चार्ल्स ८ वें के शासनारम्भ मे ही विद्रोह का झण्डा उठाया था।

लुई १२। (१४९८-१५१५)

लुई का स्वभाव बहुत ही सरल था, उसकी प्रजा उसे अपने पिता-तुल्य मानती थी। वह दिल से अपनी प्रजा का हित चाहता था। इसलिए उसने कभी उनकी आर्थिक और सैनिक कठिनाइयों को बढ़ाने की कोशिश नही की। यद्यपि

इस प्रकार उसके शासन-काल मे फ़्रांस को अधिक कष्ट नही उठाने पड़े तथापि वह इटली के युद्धों से नहीं बच सका।

इस समय इटली मे ऐसी तेजी के साथ परिवर्तन हो रहा था कि उसका यहाँ सविस्तर उल्लेख करना ठीक नहीं, क्योंकि उसका फ़्रास के ऊपर कोई स्थायी प्रभाव नही पडा। लुई, नेपल्स के अतिरिक्त, अपनी मातामही के कारण से मिलन पर अधिकार करना चाहता था और इसका वह बहुत जल्दी स्वामी हो भी गया। किन्तु जब वह नेपल्स की ओर अग्रसर हुआ तब उसे कठिनाई प्रतीत हुई। क्योंकि स्पेन का फरडीनेण्ड उस पर दाँत लगाये हुए था। अतएव पहले तो दोनो ने समझौता किया कि आओ, इसे आपस मे बॉट लें। पर पीछे से लुई को मालूम हुआ कि असल मे वह फ़रडीनेण्ड के चक्कर मे आ गया है, क्योंकि अपनी कूटनीति से सारे देश पर उसने अधिकार कर लिया था। इस प्रकार लुई को नेपल्स से हाथ धोना पड़ा। इधर रोम का पोप द्वितीय जुलियस इटली मे विचित्र हथकड़े फैला रहा था। वास्तव मे वह धर्माचार्य उतना नहीं था जितना कि शासक और कूटनीतिज्ञ। उसके मार्ग मे वेनिस सबसे बड़ी बाधा थी। इसलिए उसने अपनी बुद्धिमत्ता से लुई, फरडीनेण्ड और मेक्सिमिलियन का एक संघ बनाया और वेनिसवालों को हरा दिया। किन्तु जब उसने देखा कि फ़्रांस की सेनायें बहुत उन्नत हैं और उनकी शक्ति-वृद्धि से मेरे काम में बाधा पड़ेगी तब उसने

संघ के सभी सदस्यो को फ़्रांस के विरुद्ध भड़का दिया। इतना ही नहीं, उसने स्वयं वेनिसवालों, स्विस और इँग्लेंड के हेनरी को भो अपनी ओर खींच लिया। इतने विशाल विपक्ष का सामना करना लुई की शक्ति के बाहर था। उसकी सेनायें हारने लगी और वह इटली से निकाल दिया गया। अपने आपको चारो ओर हारता हुआ देखकर लुई ने संधि कर ली। यद्यपि इन युद्धों से लुई के हाथ कुछ भो न लगा, तथापि कभी कभी उसके योद्धाओ ने अपने शौर्य्य से रण-क्षेत्रों को बेशक चमका दिया।

लुई १२ वे के कोई लड़का नहीं था। इसलिए उसके बाद उसका दामाद फ्रांसिस १ [१५१५-१५४७] राजगद्दो पर बैठा। वह जितना ही नवयुवक था उतना ही आमोद-प्रमोद, सुख-भोग और आत्मप्रशंसा का इच्छुक था। उसमे न तो कोई विशेष प्रतिभा थी और न चरित्र। उसके शासनकाल मे जितने युद्ध हुए उनमे यद्यपि उस समय फ़्रांस को कोई विशेष क्षति होती नहीं दिखाई देती थी, तथापि फ़्रांसिस ने फ़्रांस को इतना शिथिल कर दिया कि सौ वर्ष तक फ़्रांस को यूरोप मे सम्मानास्पद पद पाने की आशा न रह गई।

फ़्रेंसिस के समय मे फ़्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे बहुत अन्तर आ गया। पर इसमे स्वयं फ़्रांस का कोई दोष न था। वास्तव मे चार्ल्स ५ वें के हाथ मे इस समय उन तीन देशों के साधन आगये थे जो बहुत दिनों से फ़्रांस का विरोध

करते आते थे। ये थे चार्ल्स दी बोल्ड की बरगेण्डी, मेक्सीमिलियन की आस्ट्रिया और फ़रडीनेण्ड का स्पेन। इस प्रकार यूरोप में प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए फ्रेंच-राज-घराने और हेप्सवर्ग के राजघराने मे चिरकालीन झगड़ा छिड़ गया। फ्रेंसिस स्वभाव से ही महत्त्वाकांक्षी था, वह भला अपने इटली के उत्तराधिकार को कब छोड़नेवाला था। उसने झट से एल्म को पार कर सन् १५१५ मे ही इटली पर धावा कर दिया और मेरीननो के क्षेत्र पर असाधारण विजय प्राप्त की। इस युद्ध मे स्विस लोग जो अभी तक अपने आपको अजेय समझते थे, बुरी तरह हारे। इस प्रकार सारी उत्तरी इटली उसकी शरण मे आ गई।

इसके बाद एक ऐसी घटना हुई जिसने फ़्रांस के ऊपर अपना स्थायी प्रभाव डाला। दिसम्बर के मास मे फ्रेंसिस ने पोपलिओ १० वें से भेंट की और उन दोनों ने मिल कर अपने अपने स्वार्थ की दृष्टि से फ्रेंच-चर्च की स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया। फ्रेंच-चर्च चार्ल्स ७ के काल से स्वतंत्र हो गया था। उसने पोप की शक्ति को कम करने के लिए अपने राज्य मे यह घोषणा कर दी थी कि न तो कोई बिशप पोप को किसी प्रकार का कर देगा और न पोप को फ़्रांस के किसी धर्मस्थान मे बिशप नियुक्त करने का अधिकार होगा। इससे पोप की शक्ति को धक्का लगा ही, फ़्रांस के राजाओं के हाथ से भी फ्रेंच-चर्च एकदम स्वतंत्र हो गया। यह फ्रेंच-

राजाओं को कुछ अखरने सा लगा। इसलिए मौक़ा पाकर फ्रेंसिस ने लिओो से संधि कर ली। इसके अनुसार पोप को तो फिर से फ्रेंच-चर्चों से कुछ कर प्राप्त करने का अधिकार हो गया और फ्रेंसिस को रिक्त बिशपरिकों मे बिशप नियुक्त करने का अधिकार मिल गया। इस प्रकार फ्रेंच-चर्च की स्वतंत्रता एक-दम नष्ट हो गई। उसने कुछ विरोध भी करना चाहा किन्तु बादशाह की स्वेच्छाचारिता के आगे कौन सुननेवाला था। उस समय से फ्रेंच-चर्च भी एक राजकीय संस्था हो गई। वह उसमे अपने मित्रों और सहायको को भरती करने लगा।

इसी समय फ्रेंसिस ने स्विस लोगों के साथ भी एक संधि कर ली जिसका नाम ही 'स्थायी-संधि' पड़ गया है। इसके द्वारा स्विस लोग फ्रेंसिस की इच्छानुसार फ्रेंच-सेनाओं मे भरती होने लगे और फ्रेंसिस इसके बदले उन लोगों को एक नियत वार्षिक कर देने लगा। यही क्रम बराबर फ्रेंच-राज्यक्रान्ति तक जारी रहा।

इस प्रकार फ्रेंसिस अबाधित रूप से इटली के उत्तरी प्रदेश एवं मिलन का स्वामी बन बैठा। किन्तु इसी समय आस्ट्रिया के चार्ल्स के हाथ मे इतनी अधिक शक्ति और राज्य-विस्तार का संचय हो रहा था कि उसे देख कर फ्रांस का सारा प्रभुत्व फीका मालूम होने लगा। फ्रांस के उत्तर के निम्न देश, फ्रेंच-कोन्ट और चार्ल्स दी बोल्ड के बचे हुए प्रदेश तो पहले

ही उसके हाथ मे थे। परन्तु १५१६ मे स्पेन के फ़रडीनेण्ड के मरने पर स्पेन, इटली और अमेरिका के प्रदेशो पर भी उसका अधिकार हो गया, साथ ही १५१९ मे उसके पितामह मेक्सीमिलियन प्रथम की मृत्यु से उसे आस्ट्रिया के बडे भारी प्रदेश पर स्वत्व मिल गया और उसे शाहन्शाह की पदवी का भी दावा होगया। इस प्रकार चार्ल्स के राज्य ने फ्रांस को चारों ओर से घेर लिया। इसके अतिरिक्त उसके पास सम्पत्ति भी काफ़ी हो गई। नेदरलैण्ड, मेक्सिको और पेरू से वह यथेष्ट धन प्राप्त कर सकता था। स्पेन के घुड़सवार भी स समय केवल स्विस-सवारों को छोड़ कर यूरोप मे बेजोड़ थे और स्पेन के समुद्री बेड़े का तो कोई सामना ही नहीं कर सकता था।

किन्तु वास्तव मे फ्रेंसिस और चार्ल्स की स्थिति इतनी विपरीत न थी जितना कि प्रारम्भ में मालूम होता है। क्योंकि फ्रांस के सभी शासन-विभागो का यथेष्ट निर्माण हो चुका था और फ्रास की सारी शक्ति फ्रेंसिस के हाथ मे थी। उसकी इच्छा ही वहाँ का क़ानून था। इसके विरुद्ध चार्ल्स का राज्य विस्तार मे यद्यपि बहुत बड़ा था तथापि उसके विभिन्न भागों मे कोई सहानुभूति न थी और उनका उद्देश ही एक था। नेदरलैण्ड, मे जो सबसे धनवान् देश था, उसकी बहुत कम प्रभुता थी। इधर स्वयं जर्मनी मे दो विरोधी दल तैयार हो रहे थे और टर्की आस्ट्रिया के डेनूब प्रान्त को अपने साम्राज्य

में मिलाने के लिए सचेष्ट हो रहा था। ऐसी अवस्था में यह चार्ल्स की शक्ति के बाहर की बात थी कि वह इतने बड़े साम्राज्य का संगठन कर लेता। उसमे ऐसी विलक्षण प्रतिभा न थी।

फ्रैंसिस ने चार्ल्स के विरुद्ध जो पहली चाल चली वह कुछ बुद्धिमत्ता-पूर्ण थी। मेक्सीमिलियन की मृत्यु से जो सम्राट्-पद ख़ाली हुआ था, वह सिद्धान्त रूप से प्राचीन रोमन-साम्राज्य का ही अवशेष-मात्र था। सम्राट् का चुनाव जर्मनी के सात राजकुमारों के हाथ मे था और कोई भी ईसाई राजा इस पद के लिए खड़ा हो सकता था। फ्रैंसिस के पास इटली आदि देशों मे साम्राज्य का एक बड़ा भारी भाग था ही, वह तुरन्त इसके लिए खड़ा हो गया। और उसने जर्मनी के राजकुमारों के फुसलाने के लिए रुपया भी यथेष्ट व्यय किया, किन्तु उन्होंने सब ले दे करके भी चार्ल्स को ही सम्राट् बना दिया।

इसी प्रकार फ्रैंसिस को एक बार और चार्ल्स की कूट-नीतिज्ञता के आगे मुँह की खानी पड़ी थी। इस समय इँग्लैण्ड का बादशाह हेनरी ८ धन और शक्ति—दोनों में अच्छी उन्नति कर रहा था। इसलिए दोनों ही—फ्रैंसिस और चार्ल्स—चाहते थे कि इससे मेल किया जाय। फ्रैंसिस ने हेनरी से भेंट की और उसके आगत-स्वागत मे रुपया पानी की तरह बहाया। किन्तु चार्ल्स ने उसके मंत्री कारडीनल-वूल्से को जो बहुत शक्ति-शाली था, यह लालच देकर अपनी ओर कर लिया कि

मैं लिओ के बाद तुम्हें पोप बनवा दूँगा। बस फिर क्या था, हेनरी चार्ल्स का साथी हो गया। किन्तु वह चार्ल्स को कोई बड़ी सहायता न दे सका और शायद हेनरी की अपेक्षा पोपलिओ की मैत्री चार्ल्स को अधिक हितकर सिद्ध हुई। पोप पहले तो फ्रेंसिस का साथी था। पर जब उसने देखा कि इटली मे फ्रांस की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, तब वह उसके विरुद्ध होगया। क्योंकि यह पोप लोगों की परम्परागत नीति थो कि और चाहे जो हो, इटली मे किसी की इतनी शक्ति न बढ़ने दी जाय जिससे उनके चर्च-राज्य को क्षति पहुँचे। इसलिए पोप और चार्ल्स की मैत्री हो गई और उसके दो परिणाम हुए। एक तो यह कि सन् १५२१ में चार्ल्स ने लूथर के विरुद्ध एक घोषणा-पत्र निकाला और दूसरे यह कि फ्रांस को इटली से बाहर निकालने का उद्योग होने लगा। दुर्भाग्य-वश इसी बीच में फ्रांस का प्रसिद्ध जनरल फ्रेंसिस के विरुद्ध हो गया।

किन्तु इसके कारण फ्रेंसिस पीछे हटनेवाला नहीं था। उसने १५२४ मे एक सुसज्जित सैन्य लेकर अपने विद्रोही सेनापति को हरा दिया और कुछ ही सप्ताहों में इटली में प्रवेश करके मिलन पर अधिकार कर लिया। किन्तु पेविया के युद्ध मे उसने ऐसी मूर्खता दिखाई कि उसकी वहाँ अधिकांश सेना मारी गई और वह स्वयं कैदी हो गया। एक वर्ष कैद रहने के बाद उसने मेडरिड में एक संधि पर हस्ताक्षर कर दिये।

उसके अनुसार उसने इटली पर अपना सारा अधिकार छोड़ दिया और चार्ल्स दी बोल्ड की डचो भी चार्ल्स को लौटा दी। किन्तु वास्तव मे चार्ल्स ने इस संधि मे इतनी अधिक माँगे पेश की थीं कि क़ैद से छूटते ही फ्रैंसिस उनसे मुकर गया।

इधर चार्ल्स की शक्ति इटली मे दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। यह देख कर पोप के उत्तराधिकारी नये पोप क्लेमेट ७ वें ने फिर फ्रैंसिस के साथ मैत्री कर ली और पीछे से इस युग में हेनरी ८ वॉ भी सम्मिलित होगया। इसके बाद फ्रैंसिस और चार्ल्स के बीच इटली मे जो युद्ध हुए उनसे किसी को कोई निश्चयात्मक लाभ नही हुआ। हॉ, चार्ल्स की फ़ौज ने सन् १५२७ में रोम मे जो लूट-खसोट मचाई उससे रोम के बहुत से प्राचीन स्मारक एवं कला की वस्तुएँ नष्ट हो गईं। सन् १५२६ मे चार्ल्स की चाची और फ्रैंसिस की मॉ ने मिलकर इन दोनों मे शान्ति करा दी, किन्तु वह बहुत दिन न चली। फिर युद्ध हुए, किन्तु उनका कोई उल्लेखनीय परिणाम न निकला। फ्रांस को अपने इटेलियन-प्रदेशों से बेशक हाथ धोना पड़ा। सन् १५४७ मे फ्रैंसिस की मृत्यु हो गई। चार्ल्स यद्यपि इस समय ज़िन्दा था तथापि वह भी राजकीय झंझटों से इतना ऊब गया था कि वह स्वयं सिंहासन छोड़ना चाहता था। फ्रैंसिस के शासन-काल मे फ्रांस के बहुत से शत्रु हुए, बहुत से युद्ध हुए। उनमे फ्रांस के धन-जन को भी यथेष्ट क्षति पहुँची और उनसे कोई प्रत्यक्ष लाभ

होता दिखाई न दिया। तथापि फ्रैंसिस के लिए इतना कहा जा सकता है कि उसने डच-राष्ट्र और उसकी राष्ट्रीय सीमाओं को एक बड़े भारी संकट से बचा लिया।

वास्तव मे यह फ्रांस के लिए एक बहुत ही कोमल अवसर था। उस समय वह माध्यमिक युग से निकल कर नूतन युग में पदार्पण कर रहा था। उसकी अन्तर्राष्ट्रीय-नीति के साथ साथ राष्ट्रीय-जीवन के अन्य सभी विभागो—जैसे राजनैतिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं आर्थिक आदि मे भीषण परिवर्तन हो रहा था। राष्ट्रीय जीवन मे मानो एक भारी क्रान्ति हो रही थी।

फ्यूडल-व्यवस्था का प्राणान्त हो चुका था। अब देश में वैस्सल, ड्यूक, बैरन आदि नहीं रह गये थे, केवल थे राजा और उसकी प्रजा। परन्तु इन राज्यहीन बैरनों के स्थान मे अमीरो की एक नूतन उच्चश्रेणी का निर्माण हो रहा था। अब इन लोगों के पास अपनी धन-सम्पत्ति और प्रतिष्ठा बढ़ाने का और कोई साधन नहीं रह गया था। इसलिए अब ये सदैव राज-दरबार मे हाज़िर होकर उच्च नौकरियों, उपाधियों, और पेन्शनों के लिए उद्योग करने लगे। राजाओं ने भी सोचा—अच्छा है, इनसे हमारे दरबार की शोभा बढ़ती है और हमे उससे किसी प्रकार की हानि नहीं। मतलब यह कि सार तो बादशाह ने ग्रहण कर लिया था और उच्च श्रेणी के अमीर लोग छिलके पर संतोष कर रहे थे।

फ्रेंच-चर्च में भी इसी प्रकार एक महान् परिवर्तन आगया था। फ्रेंसिस १ ने लियो १० वें पोप के साथ जो संधि की थी उससे फ्रेंच-चर्च बिलकुल राजा के अधिकार में आगया। राजा स्वेच्छानुसार चर्च के पदों और रुपयों को अपने साथियों को प्रसन्न करने में लगा रहा था। कौन बिशप बनने के योग्य है और कौन नहीं—इस बात का कोई ख़्याल नहीं किया जाता था।

इसी प्रकार माध्यमिक श्रेणी के लोगों में भी यथेष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगा था। राजा की शक्ति के बढ़ जाने से नगरों की स्थानीय स्वराज्य-प्रथा का ह्रास होने लगा। अमीरों की भाँति माध्यमिक श्रेणी के लोग भी राज-दरबार की चमक-दमक से आकर्षित होने लगे। सरकारी दफ़्तरों, कचहरियों, कौंसिलों और ख़ज़ानों में प्रवेश होने से इन लोगों को उन्नति का एक नवीन साधन मिल गया। धीरे-धीरे राजा का इतना महत्त्व बढ़ गया कि वह इच्छानुसार माध्यमिक श्रेणी के लोगों को उठा उठा कर उच्च श्रेणी में प्रतिष्ठित करने लगा। यद्यपि इन नूतन अमीरों की प्रतिष्ठा उन प्राचीन एवं राजवंशीय सरदारो के बराबर कभी नहीं हो पाई तथापि माध्यमिक वर्ग से ये कुछ ऊँचे अवश्य उठ गये। इधर लुई १२वे ने सरकारी पदो को बेचना शुरु कर दिया। इसलिए कालान्तर मे माध्यमिक श्रेणी के धनवान् और प्रतिष्ठा-लोलुप लोगों की, जिनके ऊपर राजा की कृपादृष्टि हो गई, एक नयी श्रेणी

ही बन गई जिसका स्थान माध्यमिक श्रेणी और उच्च श्रेणी के बीच मे था। इस प्रथा से राजा को यह लाभ हुआ कि उसके ख़ज़ाने भरने लगे। परन्तु इससे जो बुराइयाँ प्रकट होने लगीं वे प्रत्यक्ष हैं।

किसान लोग समाज में सबसे पीछे थे ही, इसलिए वे इन नूतन परिवर्तनों से अधिक लाभ न उठा सके। पर तौ भी उनमे से भी कुछ लोग उच्च श्रेणी मे प्रवेश कर गये। सफ़ंडम की प्रथा तो एक-दम उठ गई, पर विलोन बने ही रहे। भूमि-कर अधिक था, जिससे काश्तकार दुखी थे और इसके अतिरिक्त उन्हें प्राचीन फ़्यूडल-स्वामियों की अब भी कुछ न कुछ सेवा करनी पड़ती थी, क्योंकि वे ही अधिकतर ज़मीदार थे। तथापि सब बातो पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि कृषकों की आर्थिक दशा अच्छी थी।

इस समय फ़्रांस ही मे नही, सारे यूरोप मे दो बौद्धिक आन्दोलन ज़ोर पकड रहे थे। एक का नाम 'पुनरुद्धार' था जिसका केन्द्र इटली था, और दूसरे का 'सुधार' जिसका केन्द्र जर्मनी था। दूसरे की अपेक्षा पहले आन्दोलन का ही फ़्रांस पर अधिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि इटली से उसका इन दिनों अधिक सम्पर्क था। साहित्य मे भी इस समय फ़्रांस ने अच्छी उन्नति की। वहाँ ऐसे दो सुलेखक हुए हैं जिनकी ख्याति सारे विश्व मे फैल गई है। उनमे से एक तो रेबीलिस था जो व्यंग्य-लेखक था और दूसरी फ़्रेंसिस की बहन मारगेरेट ओफ़लोस

थी, यह कहानी-लिखने मे बहुत प्रसिद्ध है। कला के प्रति यद्यपि लोगो का अनुराग बढ़ रहा था तथापि इस विषय मे कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। इस प्रकार इन दिनो फ्रांस मे एक नवीन जीवन की स्फूर्ति आ रही थी, चारों ओर उत्साह दिखाई देता था। मुद्रण-कला का प्रचार हो रहा था और उसका लोगों ने अच्छा स्वागत किया था। लुई १२ ने तो कहा था कि यह मानवी नहीं, दैवी आविष्कार है। फ्रांस ने तत्कालीन समुद्री-आविष्कारो मे भी यथेष्ट भाग लिया था। राजसत्ता के सुदृढ़ होने के साथ साथ उद्योग-धंधो और व्यापार को भी उत्तेजना मिल रही थी। सड़कें सुरक्षित हो गई थीं और नाजायज़ चुंगियाँ बन्द हो गई थी। शासन-कार्य भी उत्तरोत्तर विशाल होता जाता था। राजकीय दरबार, जो पहले पार्लियामेंट, कौंसिल और चेम्बर आव कामर्स मे विभक्त हुआ था, अब और भी कई उपभागो मे बँट गया। लेटिन के स्थान मे फ्रेंच फ्रांस की राज्य-भाषा होगई। यह बात राष्ट्रीय एकता की सूचक थी।

इतना होने पर भी फ्यूडल-व्यवस्था के दो-एक चिह्न यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते थे। अभी तक प्रान्तों की प्राचीन सीमाओं मे कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था। वे ज्यो की त्यो थी। वास्तव मे उनके कारण फ्रांस के केन्द्रीकरण मे कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती थी। किसी किसी प्रान्त मे अब भी सर्वोपरि अदालतें और व्यवस्थापक सभायें थीं, जिन्हे कर आदि

के विषय मे भी सम्मति देने का अधिकार था। मतलब यह कि अब भी स्थानीय क़ानूनों मे बड़ा विपर्यय था, जो हमें प्राचीन फ़्यूडल-व्यवस्था की सूचना देता है। और ये भेद-भाव राज्यक्रान्ति के समय तक बराबर इसी प्रकार चलते रहे। वास्तव में इनसे फ़्रांस के एक अभिन्न राष्ट्र होने मे कोई बाधा नहीं पड़ती थी। यदि पड़ती होती तो शायद इनका भी अस्तित्व मिट जाता।

आधुनिक-फ्रांस

(१७८१–१८६४)

[१]

फ्रेंच-राज्यक्रान्ति

पाँचवीं मई सन् १७८९ ई० से फ्रांस का नूतन युग प्रारम्भ होता है। जिस घटनावली के कारण फ्रांस के इतिहास में जो नूतन युग उपस्थित हुआ है, वह फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के नाम से प्रसिद्ध है। वास्तव मे, फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने न केवल फ्रांस मे नूतन युग का प्रारम्भ किया है, बरन उसने तात्कालिक सम्पूर्ण सभ्य-संसार को प्रभावान्वित किया है। यहाँ पर, संक्षेप में माध्यमिक युग के अन्त मे फ्रांस की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का दिग्दर्शन करा देना अनुचित न होगा, क्योंकि इसी परिस्थिति में उस विचित्र घटनावली का सूत्रपात हुआ था।

सबसे पहली बात, जो हमे दिखाई देती है, वह फ्रांस के बादशाह की निरंकुशता है। सोलहवाँ लुई उस समय फ्रांस का बादशाह था। उसकी स्वेच्छाचारिता में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। राज-प्रबन्ध के लिए कोई नियम नहीं शेष रह गया था। न्यायालयों की बड़ी
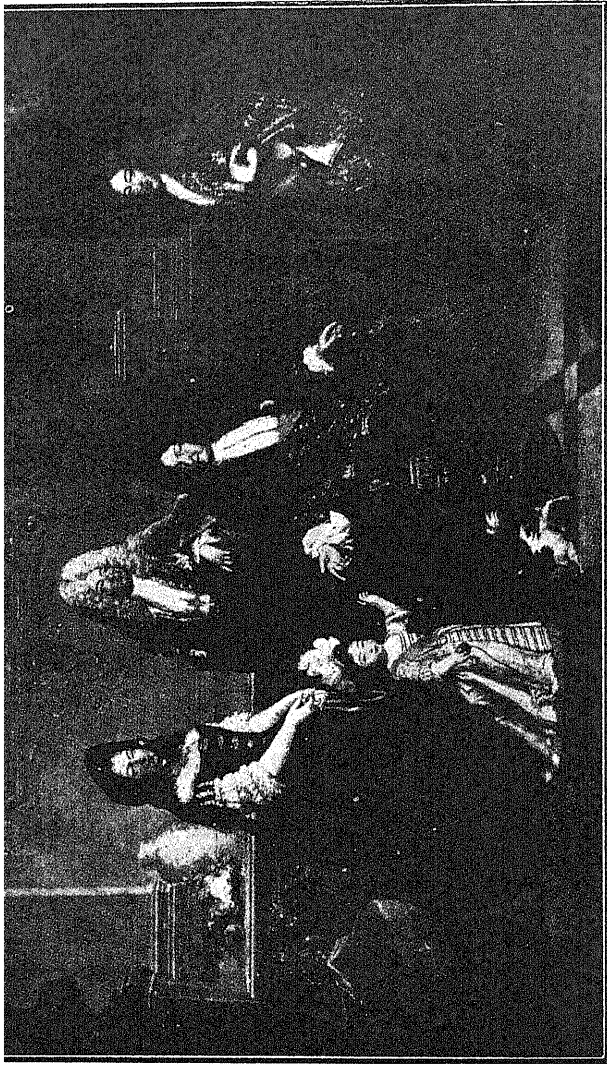
लुई चौदहवाँ अपने पुत्र सहित ।—पृ० १२४

दुर्दशा हो रही थी। अभियोगों का निर्णय लुई की मनमौजी इच्छा पर निर्भर रहता था। इतना ही नही, वह अपने एक संकेत के बिना किसी अभियोग मे अपने राज्य के बड़े से बड़े अमीर-उमरा से लेकर छोटे से छोटे किसान को बात की बात में बेस्टाइल मे ठूँस दिया करता था। बेस्टाइल के क़िले मे उस समय एक प्रसिद्ध कारागार था।

जब किसी बादशाह के हाथ मे इस प्रकार राज-प्रबन्ध के सम्पूर्ण अधिकार सिमट जाते हैं, तो उसका एक ही परिणाम होता है। राजा के चाटुकारों की बन आती है, क्योंकि बादशाह तो स्वयं अपनी आँख से हर एक बात देख नहीं सकता। उसके चापलूसों के मन मे जो आता है, वे वही कर बैठते है। लुई के चारों ओर भी इसी प्रकार के विशेषाधिकार-प्राप्त अमीर-उमरो का जमाव रहता था। यही उस समय फ्रांस की कोर्ट (परिषद्) कहलाती थी। इसमे प्राय तीन प्रकार के मनुष्य थे—(१) पादरी (२) अमीर-उमरा (३) मध्यम श्रेणी के लोग।

पादरियों और गिरजाघरों को बड़ी बड़ी जागीरें लगी हुई थीं। इनको किसी प्रकार का राज्य-कर नहीं देना पड़ता था। उल्टा इनको यह अधिकार था कि यदि चाहें, तो कभी कभी अपने आराम के लिए रिआया से कुछ रुपया वसूल कर लें। यही हाल अमीर-उमरों का था। इनको राज्य की ओर से बड़ी बड़ी जागीरें लगी हुई

थी। ये बादशाह के लिए फ़ौज रखते थे। बादशाह इनको ख़िताब दिया करते थे। राज्य-कोष मे इनको कर नहीं देना पड़ता था। आज-कल लुई उच्च घराने के राज-कुमारो मे धड़ाधड़ उपाधियाँ और जागीरें बाँट रहा था। मध्यम श्रेणी के लोग भी मौज मे थे। येनकेनप्रकारेण उन्होंने भी कुछ न कुछ विशेष अधिकार प्राप्त कर लिये थे, जहाँ यह सम्भव न होता था, वहाँ राज-कर्मचारियों को घूस देकर काम निकालते थे। मतलब यह कि निम्नश्रेणी के लोगों की मुसीबत थी। प्राचीन युग का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक डी टोकेविल कहता है--"किससे कर लेना उचित है, अथवा किससे कितना कर लेना उचित है, उस समय ये बातें विचारणीय नहीं थी। जो राज-कर्मचारियों के चंगुल मे फँस गया, उससे तो उन्होंने मनमाना कर वसूल किया और जो बच गया सो बच गया।"

तुर्गो-टरगट नामी एक दूसरा इतिहासज्ञ कहता है कि सब बुराइयों की जड़ नियमो का अभाव है। दूसरे शब्दों में नेकर ने इसी बात को इस प्रकार कहा है—फ़्रांस का सङ्गठन बड़ा विचित्र है, इसमे किसी राज-कर्मचारी को न तो यह मालूम होता है कि उसके क्या अधिकार हैं और न यह मालूम होता है कि उसके क्या कर्त्तव्य हैं?

वास्तव मे अभी तक फ़्रांस मे किसी व्यवस्था का जन्म नहीं हुआ था। प्राचीनकाल से कुछ प्रथायें चली आती थीं,

उन्होने कालान्तर मे नियमो का रूप धारण कर लिया था। किन्तु लुई के शासन-काल मे इन रहे-सहे नियमो को भी ताक़ पर रख दिया गया था। लुई की इच्छा ही एकमात्र नियम थी। फ्रांस मे पादरियो, अमीर-उमरा और मध्यम श्रेणी के लोगों की एक कौन्सिल थी, जिसको Hube gene-ıal कहते थे। किन्तु १६१४ से १७८९ तक उसका कोई अधिवेशन नहीं हुआ। कोई नया कर लगाने के समय अथवा कोई महत्त्व-पूर्ण क़ानून बनाते समय बादशाह बराबर इस कौन्सिल से परामर्श करता था। प्रान्तों मे एक एक बृहत् न्यायालय थे, वे भी किसी महत्त्वपूर्ण क़ानून के बनने के समय बादशाह से वाद-विवाद कर सकते थे। किन्तु लुई ने कौन्सिल और न्यायालय के परामर्श की रत्ती भर न परवाह की।

यद्यपि इस प्रकार की विशेषाधिकार सम्पन्न शासन-प्रणाली सर्वथा अन्याय-मूलक थी, परन्तु यदि इसका भी नियम-पूर्वक पालन किया जाता, तो शायद जन-साधारण को इतना कष्ट न होता। किन्तु जनता पन्द्रहवें लुई के अनर्थकारी युद्धो से पहले ही घबड़ा रही थी, जब सोलहवें लुई के राज-कोष का दिवाला निकल गया और उसको चारो ओर से रुपये की माँग हुई, तो लोग एकदम उद्विग्न हो उठे।

बस, लोगों के सामने दो प्रश्न उपस्थित हो गये। एक

तो यह कि समाज से उच्च-नीच की प्रथा उठा दी जाय, कोई राज-प्रदत्त विशेषाधिकारों के द्वारा समाज मे उच्च न समझा जाय। दूसरी समस्या यह थी कि ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे राजा भविष्य मे कभी किसी को कोई विशेषाधिकार न दे सके।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस समय लोगों के हृदय मे राजा के प्रति लेशमात्र भी घृणा नहीं थी। वे केवल अन्याय का प्रतिकार चाहते थे। वे जानते थे कि लुई अपनी कोर्ट (परिषद्) के हाथों का खिलौना हो रहा है। इसी प्रकार उनको धर्म से कोई चिढ़ नही थी, प्रत्युत धर्म से उनको प्रेम था। किन्तु वे पादरियों के अत्याचार से तङ्ग आ गये थे। प्रारम्भ मे वे न तो राजा के विरुद्ध थे और न पादरियों के, किन्तु जब लुई और पादरीसङ्घ ने एक-स्वर से बुराइयों का समर्थन किया और उनके दूर किये जाने मे रुकावट डाली, तब जनता बिगड़ गई।

अन्त मे ५ मई १७८९ ई० को धनाभाव के कारण लुई ने स्टेट्स-जनरल (व्यवस्थापक-सभा) के अधिवेशन की सूचना निकाली। उस समय लोगों ने राज्य-क्रान्ति का स्वप्न मे भी विचार नही किया था। नियमानुसार पादरी, अमीर-उमरा, और मध्यम श्रेणी के लोग निर्वाचित करके भेजे गये और उनको परिस्थिति पर गम्भीर रूप से विचार करने का परामर्श दिया गया। उस समय कोई नवीन

सङ्गठन करने का भी विचार नहीं था। हाँ, दो शताब्दी बाद फिर व्यवस्थापक-सभा का अधिवेशन हो रहा था, इसलिए लोग चाहते थे कि यदि इस अधिवेशन के द्वारा हमारे सामाजिक उद्धार का कोई नया मार्ग निकल आये, तो बड़ा अच्छा है। केवल एक बात पर लोग दृढ़ थे और उसके पीछे सर्वस्व लगा देने के लिए तैयार थे। वे चाहते थे कि किसी भी व्यक्ति पर अनुचित दबाव न डाला जाय, किसी की सम्पत्ति मे दूसरा कोई भी हाथ न लगा सके, सब पर बराबर कर लगाया जाय और राष्ट्र की अनुमति के बिना कोई नया कर न लगाया जा सके।

उपर्युक्त माँगें सर्वथा सरल और न्यायपूर्ण थी। साथ ही इनकी पूर्त्ति के बिना जनता का हृदय शान्त भी नहीं हो सकता था। दूसरी ओर लुई और उसकी कोर्ट ने धन-लालसा से व्यवस्थापक-सभा का अधिवेशन किया था, दोनो के दृष्टिकोण मे पूर्व-पश्चिम का अन्तर था।

सभा के तीन वर्ग थे (१) पादरी-वर्ग (२) अमीर-उमरा-वर्ग (३) मध्यम वर्ग। अभी तक अधिवेशन के समय यह प्रथा थी कि पहले तीनों वर्ग विचारणीय विषयो पर अलग अलग परामर्श करते थे। किन्तु इस बार मध्यम वर्ग इस बात पर सहमत न हुआ। इस वर्ग की सदस्य-संख्या दोनो वर्गों से अधिक थी, और यह उन दोनों वर्गों के अधिकारों की काट-छाँट करना चाहता था। इसलिए मध्यम-वर्ग ने कहा—हम

सब मिल कर परिस्थिति पर विचार करेंगे और जो बात बहुमत से तय हो जायगी, उसी पर दृढ़ रहेंगे। इस विधान से मध्यम-वर्ग को लाभ था और शेष दोनो वर्गों को हानि। बस, फिर क्या था, लड़ाई का श्रीगणेश हो गया। लुई ने शेष दोनों वर्गों का पक्ष लिया। मध्यम वर्ग ने १७ जून को अपना अधिवेशन किया और अपने आपको राष्ट्रीय-महासभा घोषित कर दिया। उन्होंने शपथ ली कि जब तक हम फ्रांस मे राज्य-व्यवस्था न स्थापित कर देंगे, तक तक दम न लेंगे। लुई ने कहा—यदि व्यवस्था, विशेषाधिकार आदि का प्रश्न न छेड़ा जाय, तो मैं सम्मिलित अधिवेशन करने पर सहमत हो सकता हूँ। राजा के इस पक्षपात से लोगों के हृदय मे संदेह उत्पन्न होने लगा। छोटे-मोटे पादरी और द्वितीय श्रेणी के अमीर-उमरा मध्यम वर्ग के साथ जा मिले। लुई को मध्यम वर्ग के अटल निश्चय के आगे सिर झुकाना पड़ा। वास्तव मे इसी एक घटना से राज्य-क्रान्ति का सूत्रपात होगया। ज्यों ज्यों लुई राज्य-व्यवस्था के नाम से घबड़ाने लगा, त्यों त्यों लोगों के हृदय मे उसके अधिकारो को मर्यादित करने की इच्छा जागृत होने लगी। लोगो को स्वयं अपने हृदय का पता नहीं था कि वे कहाँ जा रहे हैं। यदि लुई बारबार धृष्टतापूर्वक जनता की माँगों को अस्वीकृत न कर देता, तो शायद लोग इतना अधिक उसके पीछे न पड़ते।

फ्रांस के हृदय में पुनरुद्धार की प्रबल इच्छा हो रही थी।
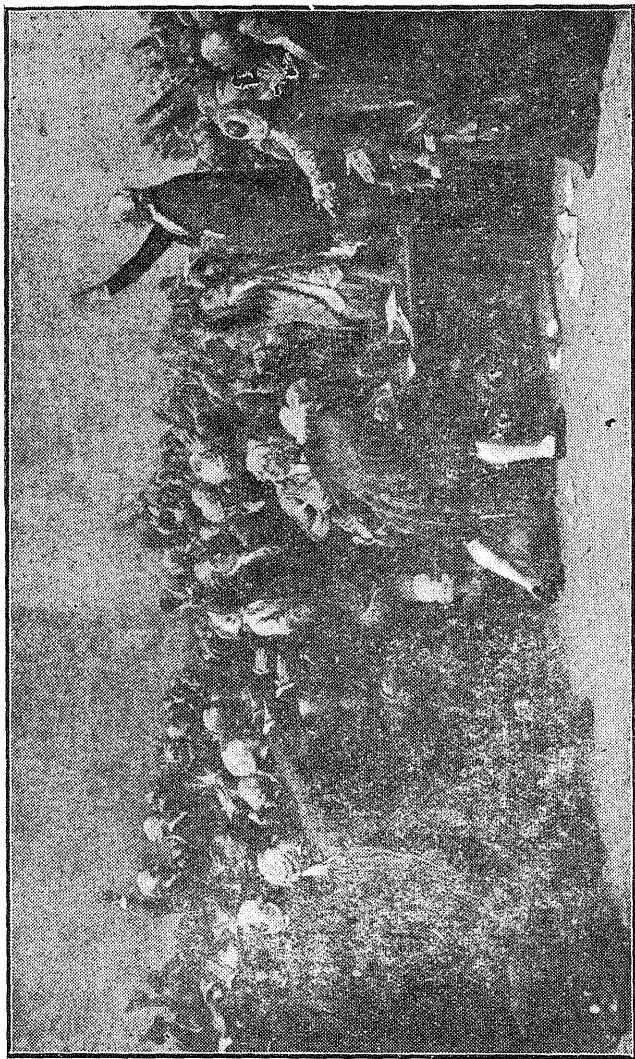
मध्यम वर्ग ने अपने आपको राष्ट्रीय महासभा घोषित कर दिया।—पृ० १३०

किन्तु उसके प्राचीन इतिहास मे इस नवीन पथ के लिए कोई संकेत नहीं था। उस समय फ्रांस मे दो प्रकार के विचारक थे। एक दल को हम ऐतिहासिक कह सकते है और दूसरे को दार्शनिक। ऐतिहासिक दल के नेता मोनटेस्क्यू थे। इन्होंने इँग्लैण्ड की राजनैतिक व्यवस्था के आधार पर अपने सिद्धांतों का निरूपण किया था। एक तो इन्होने कार्यकारिणी, व्यवस्थापक, और न्यायालय-विभागो को पृथक् कर देने की सलाह दी थी और दूसरे क़ानून बनाने के लिए उन्होंने इँग्लैण्ड की भाँति हाउस आव् लार्ड्स और हाऊस आव् कामन्स अर्थात् अमीर-उमराओं की कौन्सिल और जनता की कौन्सिल का संगठन करने का परामर्श दिया था। किन्तु तात्कालिक परिस्थिति कुछ ऐसी बेढब थी कि ये दोनों बातें जनता को जँचती नहीं थी। माध्यमिक-प्राचीन युग में कार्य-कारिणी, व्यवस्थापक, और न्यायालय-विभागों का ऐसा विचित्र सम्मिश्रण हो गया था कि एकाएक उनको पृथक् पृथक् कर देने से अर्थ के बजाय अनर्थ होने की आशंका थी। दूसरे सारी जाति की आँखें उस समय पादरियों और अमीर-उमराओं के विशेषाधिकारों पर लगी थीं, यदि इसी समय उनकी एक पृथक् कौन्सिल बना दी जाती, तो उद्धार का मार्ग ही एकदम अवरुद्ध हो जाता।

दार्शनिक दल अधिक साहसी था। जब तक हम दूसरे देशो के राजनैतिक विकास की खोज करेंगे, तब तक हम

स्वयं अपना मार्ग साफ़ कर लेंगे। अन्त मे, ऐतिहासिक दल दार्शनिक दल के उत्साह से दब गया। दार्शनिक दल ने घोषित किया कि हमारा उद्देश्य स्वभाग्य-निर्णय और सामान्याधिकार का एक ऐसा विधान खोजना है जो सब देशो के लिए, सब कालो के लिए, मनुष्य-मात्र के लिए हमेशा एक समान उपयोगी हो। अपनी धुन मे दार्शनिक दल ने एक से एक भयंकर गलतियाँ की। राष्ट्रीय-महासभा ने २६ अगस्त को निम्नलिखित घोषणा प्रकाशित की। इसका नाम था मनुष्य के अधिकारो का घोषणापत्र।

पृथ्वी पर जन्म लेने के समय सभी मनुष्य एक-समान स्वतंत्र होते हैं, सबको एक-समान अधिकार प्राप्त होते हैं। मनुष्य को उन सभी कामों के करने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए जिनसे किसी का अपकार न होता हो। समाज के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार किसी को न होना चाहिए। कौन सा काम समाज के लिए हितकर और कौन सा अहितकर है, यह सर्वसाधारण के बहुमत से ही निश्चित हो सकता है। क़ानून सबके लिए—चाहे छोटा हो और चाहे बड़ा—एक-समान होना चाहिए। जब प्रकृति ने सब मनुष्यों को एक-समान बनाया है, तब स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधि के द्वारा क़ानून-निर्माण मे परामर्श देने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को क्यो न दिया जाय। वास्तव मे, सम्पूर्ण राष्ट्र के हाथ में राज्य-प्रबन्ध की बागडोर होनी चाहिए।

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को, यदि वह योग्य है, तो राज्य-प्रबन्ध मे किसी भी कर्मचारी का पद मिल सकता है। कोई भी व्यक्ति बिना क़ानून की आज्ञा के गिरफ़्तार अथवा दण्डित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को वक्तृता देने तथा लेख लिखने की यानी अपना विचार प्रकाशित करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी। इस मे केवल एक बात का ध्यान रखा जायगा कि उसके कार्य से समाज का किसी प्रकार अहित तो नहीं होता। सब मनुष्यों पर एक-समान कर लगाया जायगा और कर लगाने और उसकी प्रणाली की देख-रेख का सबको एक-समान अधिकार होगा।

यह घोषणा-पत्र फ्रांस के सुप्रसिद्ध विद्वान् रूसो के विचारों के आधार पर बनाया गया था। सबसे मुख्य बात उसमें यही कही गई थी कि जब तक किसी देश के निवासियो के अधिकारों के सम्बन्ध मे पूर्ण निश्चय न हो जाय और राज-कर्मचारियों की शक्तियाँ पूर्णरूप से मर्यादित न हो जायँ तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि उस देश मे व्यवस्थित शासन-प्रणाली है।

देखने मे यह घोषणा-पत्र बड़ा सुन्दर मालूम होता है, किन्तु इसका परिणाम भी सुन लीजिए। दस साल के भीतर कार्यकारिणी-समिति और व्यवस्थापक-सभा एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित हो गये। कार्यकारिणी-समिति व्यवस्थापक-सभा की ग़ुलाम होगई। अन्त मे व्यवस्थापक-सभा के हाथ से

भी सारी शक्ति निकल गई और कुछ अनुत्तरदायित्व-पूर्ण आन्दोलनकारी मनमानी कार्यवाही करने लगे।

उधर लुई और उसकी कोर्ट पर दूसरा ही रंग चढ़ रहा था। उन्होंने क्रान्तिकारियों से बदला लेने की ठान ली थी। लुई ने अन्य देशो से धनलोलुप सैनिक बुलवाना प्रारंभ किया। फिर क्या था, दो एक जगह क्रान्तिकारियों ने उपद्रव मचाये। इतने मे ११ जुलाई को लुई ने फ्रांस के प्रसिद्ध अर्थ-सचिव नेकर को पदच्युत कर दिया। लोगों को लुई पर बड़ा क्रोध आया। उनको फ्रांस के आर्थिक सुधार से और भी निराशा हो गयी। जनता भड़कने लगी। दूसरे दिन उसने सेनागार मे पहुँच कर तोपें और बन्दूकें छीन ली और हथियारो से सुसज्जित होने की चेष्टा मे लग गये। १४ जुलाई को उन्होंने बेस्टाइल के क़िले पर धावा बोला। उस समय क़िले मे एक भी प्रसिद्ध राजनैतिक क़ैदी नही था। किन्तु बेस्टाइल तो कॉटे की भॉति लोगों की ऑखों मे खटकता था। वे उसको लुई के अत्याचारों की साक्षात् मूर्त्ति समझते थे। कई घंटो तक लुई के सैनिकों और विद्रोहियों मे मुठभेड़ होती रही। इसमे दो सौ विद्रोही काम आ गये। किन्तु अन्त मे उन्ही की विजय हुई।

जब लुई ने बेस्टाइल के पतन का हाल सुना, तो वह घबरा गया। उसने तुरन्त अपनी साहसहीनता और दुर्बलता का परिचय दिया। नेकर फिर बुला लिये गये और विदेशी फ़ौजें बरख़ास्त कर दी गईं। लुई ने वारसेल को छोड़ कर ट्र्यी मे

निवास करना प्रारम्भ किया और राष्ट्रीय-महासभा के एक भूतपूर्व सभापति बेली को नगर का संरक्षक बनाया। लोगों को लुई को रास्ते पर लाने का मार्ग मालूम हो गया। इतना ही नहीं, बेस्टाइल के पतन का प्रभाव देश-व्यापी हुआ। पेरिस मे लोगों ने राजसत्ता के चिह्न उखाड़ फेंके, बरगैंडो प्रान्त में और राइन की घाटी मे जनता ने उत्तेजित होकर गिरजाघरों और क़िलों में आग लगा दी, कचहरियो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने सोचा—जब विशेषाधिकारों के सनद ही जलकर ख़ाक हो जायेंगे, तब उनके अनुसार कार्य कौन करा सकता है?

धनवान् लोग विपत्ति मे पड़ गये। उन्होंने उदारता का स्वाँग रचा। ४ थी अगस्त को राष्ट्रीय महासभा की बैठक हुई। उसमे सैकड़ों हज़ारों पादरी और अमीर-उमरा उपस्थित हुए। उन्होंने त्याग-वृत्ति से प्रेरित होकर—स्वयं अपने विशेष अधिकारों को तिलाञ्जलि दे दी। इस त्याग के बदले महासभा ने उनको धन से कुछ सहायता देना अङ्गीकार कर लिया।

किन्तु लुई और उसकी कोर्ट का हृदय पत्थर का बना हुआ था। कुछ धूर्तों ने फिर लुई को विदेशी सेना सहायतार्थ बुलाने की सलाह दी। राज-दरबार मे जी-बहलाव के लिए एक नाटक खेला गया, उसमे नये आन्दोलन के झण्डे को पैरों से रौंदा गया। लगातार दो दो फ़सलों के ख़राब हो जाने से जनता पहले ही से भूखे शेर की तरह उत्तेजित बैठो

थी। इस ख़बर ने उसको पागल बना दिया। विद्रोहियों का एक बड़ा भारी झुण्ड वारसेल के राज्य-दरबार मे घुसता चला गया और राजा-रानी तथा युवराज को पेरिस आने के लिए बाध्य किया। सारे देश मे सनसनी फैल रहा थी। बड़े बड़े अमीर-उमरा, यहाँ तक कि लुई के निकट संबंधी भी राज-विद्रोहियों के डर के मारे विदेशो मे भागे जा रहे थे।

अभी तक आन्दोलन एक प्रकार से सामाजिक और राजनैतिक था। किन्तु लुई के षड्यन्त्रों और विदेशो मे अमीर-उमराओ के भागने से वह राष्ट्रोय रूप धारण कर रहा था। लोगो मे देश-भक्ति की भावनायें जागृत हो रही थी। बाह्य-आक्रमणों से महासभा को फ्रांस की रक्षा करने की चिन्ता हो रही थी। इसका जो एक ही परिणाम हो सकता था, वही हुआ। शक्ति महासभा के हाथों से निकल कर कुछ प्रमुख नेताओं के हाथ में चली गई। वही राष्ट्र के कर्त्ता-धर्त्ता रहे। फलस्वरूप कुछ दिनों तक फ्रांस मे पाशविक-वृत्तियों का ताण्डव नृत्य होता रहा।

किन्तु महासभा ने प्रारम्भ मे एक भो सुधार न किया और योंही जनता का नेतृत्व अपहरण कर लिया, यह बात नहीं थी। १६ जनवरी सन् १७९० की बैठक मे फ्रांस का एक नवीन राजनैतिक बटवारा कर दिया गया, अर्थात् सारा देश तहसील, ज़िला, और कमिश्नरियों मे विभक्त कर दिया गया। यह आसान काम नहीं था। अभो तक

विशेषाधिकारों के अनुसार फ्रांस का बड़ा बेहूदा बँटवारा था, साथ ही भिन्न भिन्न प्रान्तों, म्यूनीसिपलटियों, जागीरों के अधिकारों मे भी समानता न थी। इसके हो जाने से विशेषाधिकारों की चिरपरिचित प्रथा सदा के लिए उठ गई। दूसरी बात यह हुई कि व्यापारी कम्पनियाँ तोड़ दी गई, इन्होने ऐसे अद्भुत नियम बना रखे थे कि कोई व्यक्ति स्वतन्त्ररूप से व्यापार अथवा कला-कौशल मे उन्नति नहीं कर सकता था। तीसरी बात यह हुई कि न्यायालय तोड़ डाले गये। इन पर पादरियो का बड़ा प्रभाव था, और इनमें घूस का बाजार रातदिन गर्म रहता था। इसलिए यह तय किया गया कि प्रति दसवें वर्ष न्यायाधीशो का नया चुनाव हुआ करे और सारे देश मे एक ही प्रकार का क़ानून बर्ता जावे। पादरीवर्ग और अमीर-उमराओ का मूलोच्छेदन होगया। क़ानून की दृष्टि मे प्रत्येक मनुष्य की चाहे अमीर हो चाहे गरीब—समानता घोषित कर दी गई। पिताओं को अपने पुत्रों के बीच बराबर सम्पत्ति बाँटने का आदेश दिया गया। अभी तक पादरी-गण विवाहों और जन्म की रजिस्ट्री करते थे। इससे विधर्म्मियों को बड़ा कष्ट होता था। इसलिए यह काम म्युनिसिपलटियों को सौंप दिया गया।

किन्तु सब से महत्त्वपूर्ण सुधार जो महासभा ने किया, आर्थिक-व्यवस्था के सम्बन्ध में था। उस समय फ्रांस मे न जाने छोटे-मोटे कितने प्रकार के कर वसूल किये जाते थे।

में हस्तक्षेप करना चाहा, तब जनता ने महासभा का विरोध किया। महासभा ने पादरियो और बिशपों को यह आदेश दिया था कि साधारण जनता के द्वारा चुने जाने पर उनको गिरजाघरों के संचालन का भार ग्रहण करना होगा, साथ ही उनको यह शपथ लेनी होगी कि महासभा-द्वारा प्रचलित नियमो का पालन करेंगे।

रोमस्थित पोप ने आदेश घोषित कर दिया कि पादरियों को यह अनुचित आज्ञा कभी शिरोधार्य न करनी चाहिए। अधिकाश पादरियो ने इस आदेश का पालन किया, उन्होंने सरकारी गिरजाघरों को छोड़ दिया और छिप छिप कर दूसरे स्थानों में पूजा करने लगे। बहुत से धर्म्मभीरु जनों ने इनका साथ दिया। महासभा ने इस अवज्ञा पर दण्ड देना शुरू किया और लोगो ने महासभा के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया। वास्तव मे, विद्रोहियो मे फूट पैदा हो गई। कई पार्टियाँ बन गईं। खास पेरिस मे सैकड़ो सभा-समितियाँ खुल गईं, इनमे रातदिन भिन्न भिन्न राजनैतिक सिद्धान्तो की आलोचना-प्रत्यालोचना हुआ करती थी।

सभी बड़े बड़े नगरों मे उपद्रव शुरू हो गया। देश भर मे विद्रोह की आग भड़क उठी। लुई की परेशानी और भी बढ़ गई। मिराबो एक ऐसा दूरदर्शी आदमी था जो राज्य-क्रान्ति की गम्भीरता को समझ सकता था और लुई को समझा-बुझाकर आग बुझानेवाले उपाय काम मे लाने के

लिए राज़ी कर सकता था। किन्तु भाग्यवश २ री अप्रेल १७९१ को मिराबो की मृत्यु हो गई। दूसरा आदमी नेकर था, वह सितम्बर १७९० ही में त्यागपत्र दे चुका था, क्योंकि उसने राजा के प्रति-दिन-दिन बढ़नेवाली घृणा को अच्छी तरह समझ लिया था। साथ ही एक कट्टर रोमन-केथोलिक धर्मावलम्बी होने के कारण उसको स्वयं धार्मिक बातों में अनुचित हस्तक्षेप सह्य नहीं था।

लुई चारों ओर से हताश होगया। उसने दिल में भागने की ठान ली। जर्मनी में उसका भाई और कोड़े का राजकुमार पहले ही से उन लोगों की सहायता के द्वारा इस विद्रोह को दबाने का यत्न कर रहे थे। लुई ने सोचा—आस्ट्रिया, प्रूशिया और स्पेन आदि की सहायता से मैं सहज ही में विद्रोहियों की अक्ल ठिकाने कर दूँगा। वह चुपके चुपके तैयारी करने लगा, किन्तु लोग ताड़ गये।

२० जून १७९१ को लुई भेष बदल कर भाग रहा था कि वह बेरेनीज़ के पास पकड़ा गया। वह एक कड़े पहरे में पैरिस लाया गया। महासभा ने तुरन्त उसका राज-दण्ड छीन लिया। किन्तु कुछ दिनों बाद सन्तोषजनक सन्धि की आशा से फिर उसको गद्दी पर बैठा दिया। परन्तु लोगों ने 'प्रजातंत्र' शब्द सुन लिया था, वे समझ गये थे कि राजा के बिना हमारा काम और भी सुन्दर रीति से चल सकता है।

लुई ने महासभा की शर्तों को मान लिया। तीसरी सितम्बर १७९१ को महासभा ने फ्रांस का प्रथम शासन-व्यवस्था-पत्र बनाया। यद्यपि यह सफल नहीं हुआ, तथापि इसके निर्माताओं ने उससे बड़ी बड़ी आशाये बाँधी थी। शासन-व्यवस्था का विकास किस प्रकार होता है, इस दृष्टि से यह बहुत ही मनोरञ्जक है।

व्यवस्था-पत्र मे सबसे पहले मनुष्य के अधिकारो की घोषणा को दुहराया गया है, समानता की विरोधी माध्यमिक युग की सभी प्रथाओं का मूलोच्छेदन किया गया है, अमीर-उमराओ के विशेषाधिकार, धन के प्रभाव से उच्च पद मिल जाना, व्यापारी कम्पनियो का देश के व्यापार पर एकाधिकार कर लेना आदि प्रथाओ को रद्द कर दिया गया।

अन्त मे लिखने और बोलने, समाचार-पत्र निकालने और सभा-सङ्गठन आदि करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई। राष्ट्र ने यतीम बच्चो और दीन-हीन अपाहिजो के जीवन-यापन का भार भी अपने ऊपर लेने की घोषणा की, साथ ही सुयोग्य व्यक्तियो के लिए काम और आवश्यकीय कलाओं की निःशुल्क शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

इतने ही से यह मालूम हो सकता है कि क्रान्तिकारियो के हृदय मे जनता की सुविधा का विशेष ध्यान था। जिन सुविधाओ का यथेष्ट प्रबन्ध आज तक हमारी सभ्य सरकारें

नहीं कर सकी हैं, उन्हीं बातों की चिन्ता क्रान्तिकारियों को सता रही थी।

राज्य-व्यवस्था का सञ्चालन भी विचित्र ढङ्ग का रखा गया था। केवल एक व्यवस्थापक-सभा नियत करने का विधान था। मामूली मामूली आदमियों को व्यवस्थापक सभा के लिए सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया था। प्रति दूसरे वर्ष नवीन चुनाव का नियम रखा गया था, दो वर्ष के भीतर सभा का नवीन निर्वाचन नहीं हो सकता था, और न उसे कोई भङ्ग ही कर सकता था। यह सभा बादशाह के परामर्श से आवश्यकता के समय अन्य देशों से युद्ध छेड़ सकती थी। राजा अबाध्य था। किन्तु यदि कभी राजा बिना सभा की आज्ञा के देश से भाग जाय या किसी विदेशीय सेना को अपने देश के विरुद्ध उत्तेजित करे, तो उसी समय उसका शासनकाल समाप्त हो जायगा। इसी एक धारा से यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि लोगों में राजा के प्रति कितना अविश्वास बढ़ गया था।

लुई को कार्य-सञ्चालन के लिए मन्त्री चुनने का अधिकार दिया गया था। किन्तु व्यवस्थापक सभा का कोई सदस्य मन्त्री नहीं चुना जा सकता था। मन्त्रिमण्डल को व्यवस्थापक-सभा का प्रस्ताव स्थगित करने भर का अधिकार था, वह उसे रद्द नहीं कर सकता था। यदि व्यवस्थापक-सभा चार वर्ष के बाद फिर वही प्रस्ताव स्वीकृत करे, तो मन्त्रिमण्डल

उसको मानने के लिए बाध्य समझा जाता था। इस प्रकार व्यवस्थापक-सभा और कार्यकारिणी-समिति को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् करना महासभा की सबसे बड़ी भूल थी। वे समझते थे कि कार्यकारिणी-समिति के सदस्य व्यवस्थापक-सभा मे अनुचित प्रभाव डालते है किन्तु वास्तव मे दोनों संस्थाओं के सर्वोत्तम प्रतिनिधियों के द्वारा ही दोनों सभाओं का काम सुचारु रूप से चला करता है। व्यवस्थापक और कार्यकारिणी समितियों को पृथक् करके उसने न्यायालयों को भी इन दोनों से सर्वथा असम्बद्ध कर दिया। जजों की नियुक्ति होने का विधान नही रखा गया था, वरन् जनता-द्वारा उनका चुनाव होता था।

अन्त मे, महासभा ने यह प्रस्ताव किया कि १७९५ के पहले इस शासनव्यवस्था मे परिवर्तन करने का कोई प्रस्ताव न किया जाय और १७९० के पहले इसमे कोई परिवर्तन स्वीकार न किया। इसी प्रकार एक और विलक्षण प्रस्ताव किया गया था। वह यह था कि वर्तमान महासभा का कोई सदस्य व्यवस्थापक-सभा का सदस्य न होने पाये। यह नियम बना कर-मानों महासभा ने अपनी उदारता का परिचय दिया था, किन्तु वास्तव में इसके द्वारा जो थोड़े-बहुत अनुभवी राजनीतिज्ञ थे, उनके परामर्शों से व्यवस्थापक-सभा सर्वथा वंचित हो गई।

नई व्यवस्थापक-सभा में जो सदस्य चुने गये, वे तीन

दलों मे विभक्त थे। पहले दल को फ्यूल्टस नाम दिया जा सकता है। इनका वैध-आन्दोलन मे दृढ़ विश्वास था, इनकी राय मे फ्रांस की वर्तमान समस्याये इॅग्लैण्ड की राजनैतिक व्यवस्था के अनुकरण मे बहुत कुछ हल हो सकती थी। दूसरा दल मान्टगार्डसवालो का था। इनको हम गरमदल-वादी कह सकते हैं। ये कहते थे कि प्रजातंत्र की स्थापना के लिए यदि हमे पाशविक बल से भी काम लेना पड़े, तो हमें न हिचकना चाहिए। तीसरा दल जिरोनडिन कहलाता था। इस दल का सबसे अधिक प्रभाव था। औचित्य की ओर सब से अधिक ध्यान भी इसका ही था।

व्यवस्थापक-सभा ने प्रारम्भ मे ही देख लिया कि हमारी कार्यकारिणी-समिति अथवा मन्त्रिमण्डल सर्वथा कमज़ोर है और लुई पर हम कभी विश्वास नही कर सकते। साथ ही चारो ओर से शत्रुओ के आक्रमण की सम्भावना हो रही है। व्यवस्थापक-सभा ने बड़ी सावधानी से काम किया। पहले-पहल उसने महासभा के निश्चयानुसार जिन पादरियो ने नये नियमों के पालने की शपथ नही ली थी, उनका वेतन देना बन्द कर दिया और दूसरे जो राइन नदी की घाटी मे विदेशी आक्रमण के जुटाने की चिन्ता मे थे, उनको इमने षड्यंत्री घोषित कर दिया और उनकी जायदाद जब्त करके उसको राष्ट्रीय-कोष मे जमा कर दिया।

२७ अगस्त १७९१ को प्रुशिया के बादशाह और आस्ट्रिया

के सम्राट् लेपोल्ड ने घोषणा की कि वे लुई को फिर प्राचीन अधिकारो के साथ फ्रांस की गद्दी पर बैठाना चाहते हैं। इस पर व्यवस्थापक-सभा ने लुई से प्रार्थना की कि वह इन बादशाहों को साफ़ साफ़ समझा दें कि वे ऐसी अनधिकार चेष्टा न करें। किन्तु लुई क्यों इनकी बात माननेवाला था, यही तो उन बादशाहों को छिपछिप करके अपनी सहायता करने के लिए उकसाया करता था।

थोड़े दिनो के बाद इम्पीरियल चान्सलर कानिजने यूरोप के बादशाहों की ओर से कहा—"लुई एक बादशाह है। अपने मान और बड़प्पन की दृष्टि से बादशाहो के प्रति सहानुभूति दिखाना बादशाहों का परम कर्त्तव्य है। फ्रांस की प्रजा ने अपने बादशाह के साथ अन्याय किया है, इसलिए हम लुई की सहायता करने पर बाध्य हुए हैं।" बस, फ्रांस-जाति ने समझ लिया कि हमारे लिए यह जीवन-मरण का प्रश्न है। पहले इनका दूसरे राष्ट्रों के कार्यों मे हस्तक्षेप करने का कोई विचार नही था। वे केवल अपने ही देश मे सुधार करना चाहते थे। किन्तु जब दूसरे देशो ने व्यर्थ मे जबरदस्ती उनको ललकारा, तो उन्होने भी मरने-मारने की ठान ली। अभी तक क्रान्तिकारी शान्त और विचारशील थे किन्तु वे जबर्दस्ती युद्धप्रिय और रक्तपिपासु बना दिये गये।

लुई ने दोरङ्गी चाल चलना शुरू किया। ऊपर से तो वह व्यवस्थापक-सभा का परामर्श मानता था—यहाँ तक कि

उसने २० अप्रैल को लेपोल्ड के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी, किन्तु भीतर ही भीतर आक्रमणकारियों को फ्रांस पर हमला करने के लिए संदेशा भेज रहा था। जनता ने लुई की चाल न जाने कैसे ताड़ ली। फ्रांस की हार हो जाने पर तो जनता का संदेह निश्चय मे परिणत हो गया। मंत्रिमण्डल ने लुई से विद्रोही पादरियों को देश-निकाले की आज्ञा दिलाने की प्रार्थना की, लुई ने अस्वीकार कर दिया। लोग भड़क उठे, मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। इतने ही में २६ जुलाई को प्रुशिया के सेनाध्यक्ष ने एक घोषणापत्र निकाला—उसमे लिखा था कि फ्रांस के बादशाह ने ही हमको अपने अधिकारो के लिए फ्रांस पर आक्रमण करने के लिए बुलाया है।

बस, जनता को लुई के विश्वास-घात मे रत्तीभर संदेह न रह गया। वे लुई के निवास-स्थान पर टूट पड़े। लुई ने अपनी व्यवस्थापक-सभा मे शरण ली। वहाँ से वह अपनी ज़िन्दगी के रहे-सहे दिन काटने के लिए टेम्पिल नामक कारागार मे भेज दिया गया।

पेरिस, फ्रांस और सरकार पर जनता का आतङ्क छा गया। पागलों की भाँति जनता अपने उद्दण्ड नेताओं के इशारों पर नाचने लगी। इनमे डान्टन सबसे अग्रगण्य था। जब लोंगवी और वरडन नामी क़िलों के पतन का समाचार पेरिस पहुँचा, तब जनता बिलकुल उन्मत्त हो गई। उसने कारागारों के द्वार तोड़ दिये और उनमें बन्द निरीह क़ैदियों की हत्या

कर डाली, क्योंकि इनमें अधिकांश कैदी अमीर-उमरा और पादरी लोग थे। अपनी हार का बदला उन्होंने इनके खून से चुकाया।

व्यवस्थापक-सभा भी अब बड़े चक्कर मे पड़ी। एक ओर उत्तेजित जनता, दूसरी ओर विपक्षियो की विजयी सेनायें और तीसरी ओर विश्वासघातक बादशाह। सभा ने फिर बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने देश के नवयुवको से फ़ौज मे स्वयंसेवक बनने के लिए अपील की। हजारों की संख्या मे नवयुवक फ्रांस के झण्डे के नीचे मातृभूमि को विदेशियों के आक्रमण से बचाने के लिए आगये। उस समय लोगों के हृदय मे देशभक्ति की उमंग बड़े ज़ोर से लहर मार रही थी। सब प्रकार के मतभेद और फूट आपसे आप नष्ट होती जा रही थी। सब चाहते थे कि एक ऐसे सुदृढ़ शासन का संगठन होना चाहिए जो हमारे देश को विदेशियो के आक्रमण मे सुरक्षित रख सके। जो लोग इस विचार के नहीं थे, वे भी विदेशियों की भाँति देश के शत्रु समझे जाते थे। घर मे भी शत्रु और बाहर भी शत्रु। इसलिए व्यवस्थापक-सभा ने स्वयं अपने आपको भंग करना उचित समझा और एक ऐसी राष्ट्रीय पंचायत की आवश्यकता दर्शायी जिसको इस विपत्ति के समय देश की रक्षा करने का पूर्ण अधिकार हो।

फ्रांस की नवीन सेनाओं ने प्रूशियनों को वामी के क्षेत्र पर

३० अप्रैल को हराया और उनको अपनी पूर्वीय सीमा से बाहर निकाल दिया। इतना ही नहीं, फ्रांसीसियों ने ८वीं नवम्बर को जेमापीज के क्षेत्र पर दूसरी विजय प्राप्त की और वर्तमान बेलजियम पर अपना अधिकार जमा लिया। किन्तु यह हार या जीत अन्तिम न थी। दोनों ओर से विकट संघर्ष की तैयारी होने लगी। विदेशी हस्तक्षेप के फ्रांस मे तीन प्रभाव हुए— एक तो फ्रांस से सदा के लिए राजतंत्र का नाम उठ गया, दूसरे फ्रांसीसियों मे विजय-लिप्सा जागृत हो गई, और तीसरे कुछ दिनों के लिए फ्रांस मे ऐसा विकट शासन स्थापित हुआ कि उसको यदि हम पैशाचिकता का ताण्डव-नृत्य कहें, तो अनुचित न होगा। क्योंकि लोगों का ध्यान उस समय उचित, और अनुचित की ओर नहीं था। उनका एकमात्र उद्देश प्रबलता के साथ फ्रांस के नवीन प्रजातंत्र के विरोधियों का दमन करना था। इस पैशाचिकता के ताण्डव-नृत्य मे प्रजातंत्र के मौलिक सिद्धान्तों की कितनी हत्या हुई है, सो ईश्वर ही जाने।

राष्ट्रीय-पंचायत

(२)

राष्ट्रीय पंचायत का प्रथम अधिवेशन २१ सितम्बर १७९२ ई० को हुआ। पहले ही दिन उसने राजतंत्र की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। पंचायत ने कहा कि जनता की इच्छा ही सब प्रकार की शासन-व्यवस्थाओं का मूल-स्रोत है। जनता की

जैसी इच्छा हो, उसी प्रकार का शासन होना चाहिए। इस प्रकार फ्रांस मे साम्यवाद की प्रतिष्ठा हो गई। उस समय हुल्लड़शाही के दो नेता थे, एक डान्टन और दूसरा रोब्स-पियर। यद्यपि इन दोनो मे पटती नही थी, तथापि दोनो ने एक स्वर से लुई पर अभियोग चलाने के लिए पुकार मचाई। ११ दिसम्बर को लुई पंचायत के सामने बुलाया गया। राष्ट्र के साथ विश्वासघात एवं षड्यंत्र रचने का अपराध उसको लगाया गया। पंचों ने एकमत से उसको अपराधी ठहराया। ३८७ वोट उसको फाँसी पर लटकाये जाने के पक्ष मे और ३३८ वोट फाँसी न दी जाकर किसी अन्य दण्ड के पक्ष मे निकले। अन्त में बहु-मत के निर्णय के अनुसार २१ जनवरी १७९३ को लुई फाँसी के तख्ते पर लटका दिया गया। लुई वास्तव मे पहले ही मर चुका था, क्योकि जनता उसके प्रति एकदम उदासीन हो गई थी।

इधर लुई का मरना था कि उधर यूरोप के बादशाहो मे तहलका मच गया। राष्ट्रीय-पंचायत ने अपने १९ नवम्बर के अधिवेशन मे ही एक प्रस्ताव-द्वारा स्वतंत्रता की इच्छा रखनेवाली समस्त जातियों को उनकी कार्यसिद्धि मे सहायता देने का वचन दिया था। फ्रांस का प्रजातंत्र फ्रांस की ही सीमाओ मे सीमा-बद्ध नहीं रहना चाहता था। यूरोप के बादशाह सशंक तो थे ही, लुई के प्राणदण्ड का समाचार सुन कर इन्होंने फ्रांस से बदला चुकाने की ठानी। चारों ओर से गुप्तसंधियाँ और युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

किन्तु पंचायत को अपनी स्थिति का ज्ञान था। वह जानती थी कि वह किसके साथ खेल रही है। अभी तक उसने आस्ट्रिया और प्रुशिया के ही साथ युद्ध छेड़ा था किन्तु मार्च और अप्रेल मे इॅग्लैण्ड, हालैण्ड और स्पेन ने भी युद्ध के लिए निमन्त्रण भेज दिया। सम्पूर्ण जर्मन-साम्राज्य भी प्रजा-तन्त्र के विरोधियों मे जा मिला।

उस समय पंचायत की स्थिति बड़ी भयंकर थी। चारों ओर से शत्रु देश पर आक्रमण करने के लिए तुले हुए थे। घर भी सुरक्षित नहीं था, जहाॅ-तहाॅ विद्रोह की आग सुलग रही थी। लोअर नोरमण्डी, ब्रिटिनी, ऐनजो और लावेण्डी आदि प्रान्तों मे रोमन-कैथोलीज़्म मत का अधिक प्रचार होने के कारण वहाॅ पर पादरियो के जबरन शपथ खाने के नियम से लोग बड़े उत्तेजित हो रहे थे। लुई की मृत्यु ने जलती हुई आग पर घी का काम किया। इस पर पंचायत ने प्रजातंत्र की रक्षा के लिए सेना मे भरती होने की आज्ञा प्रचारित कर दी।

अमीर-उमराओ और पादरियों की अध्यक्षता मे उपर्युक्त प्रान्तो मे एक प्रबल आन्दोलन खड़ा हुआ। पंचायत को उसे दबाने की चिन्ता हुई। जो पंचायत ऐसी विकट परिस्थिति मे अपने मार्ग मे बराबर अग्रसर होती गई, उसकी हम प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। इतने ही से पंचायत की बाधाओं की इतिश्री नहीं होती। उसी समय भारतवर्ष मे अँगरेज़ो ने

फ़रासीसी नगरों पर—पाण्डोचेरी और टुबेगो पर अपना अधिकार जमा लिया। डूमोरीज़ नामक सेनापति ने शत्रुओं के हाथ से नीयरविनडेन क्षेत्र पर बुरी हार खाई, वह स्वयं शत्रुओं की सेना में जा मिला। उत्तरी सीमा पर शत्रुओं ने एक प्रबल आक्रमण का संगठन किया।

इतना होने पर भी पंचायत किसी प्रकार धैर्य-च्युत नहीं हुई। उसने दो कमेटियाँ नियत की, एक देश की अन्तःरक्षा के लिए और एक बाह्य-रक्षा के लिए। कुछ ही सप्ताहों में बाह्य-रक्षा कमेटी ने १,२०,००० रंगरूट सेना में भरती किये और उनको युद्ध के लिए सुसज्जित किया। अन्तःरक्षा कमेटी ने हज़ारों आदमियों को पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया। जहाँ उन्हें ज़रा भी सन्देह हुआ कि यह मनुष्य प्रजातंत्र का विरोधी है, उन्होंने उसे तुरन्त प्राणदण्ड की आज्ञा सुनाई। इसमें सन्देह नहीं, एक दो नहीं वरन् सैकड़ों निर्दोष प्राणियों को इन स्वतंत्रता-देवी के उपासकों द्वारा अपने प्राण गँवाने पड़े।

दुर्भाग्यवश इसी बीच में समस्त देश में एक भयंकर अकाल पड़ा। अन्न के लिए लोग 'त्राहि' 'त्राहि' करने लगे। राष्ट्रीय पंचायत ने देश के बाहर ग़ल्ला भेजना तो एक-दम बन्द ही कर दिया, साथ ही यह भी नियत कर दिया कि एक मनुष्य के हाथ कितना ग़ल्ला बेचा जाय। राष्ट्रीय-पंचायत ने मनमाने नियम बनाये, इसमें संदेह नहीं, किन्तु परिस्थिति की भयंकरता के कारण हम उनको क्षन्तव्य कह सकते हैं। किन्तु इस राज्य-

क्रान्ति का दूसरा पहलू भी था। उसका दृश्य बड़ा बीभत्स है। उसमे राग और द्वेष, डर और संदेह, निन्दा और पक्षपात की ही चर्चा सुनाई पड़ती है।

लुई के शासन-काल मे जिरोनडिन दल का मंत्रिमण्डल था। धीरे-धीरे देश मे उसका प्रभाव शिथिल हो गया, क्योंकि उसकी नीति उतनी गरम नही थी जितनी कि हुल्लड़शाही के देवता चाहते थे। मारा नामी एक बड़ा ही कलुषित-हृदय पुरुष था। इसके हाथ में तात्कालिक समाचार-पत्र थे। यह स्वयंराष्ट्रीय-पंचायत का सदस्य था। वह लोगों को समस्त फ़रासीसी या अमीर-उमराओं और पादरियों की हत्या के लिए उभाड़ रहा था। जिरोनडिन-दलवालों ने इस अनुचित कार्य के लिए मारा पर अभियोग चलाना चाहा। किन्तु हुल्लड़शाही मे बुद्धि का प्राधान्य नहीं रहता, केवल भावों की प्रधानता रहती है, देश-भक्ति और देश-द्रोह शब्द ही उस ज़माने में बहुत काम कर सकते हैं।

क्रान्तिवादी-न्यायालयों ने मारा को निर्दोष समझ कर मुक्त कर दिया और उसके स्थान पर जिरोनडिन दल के ३१ सदस्यों को फाँसी का हुक्म दिया। जनता ने इस न्याय का बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया।

जिरोनडिन के बाद पहाड़ी-दल ने शासनाधिकार प्राप्त किये। ये उस समय उद्दण्डता के लिए प्रसिद्ध हो रहे थे। जो जितना ही अधिक उद्दण्ड होता था, वह उतना ही जल्दी

उस समय फ्रांस के शासन मे उग्र हो जाता था। बोर्डो और लियोन की भाँति केश्रन और मारसिलीज़ में प्रजातंत्र के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़की। पश्चिमीय प्रान्तों मे किसानों ने उपद्रव मचाना शुरू किया। टूलन अँगरेज़ों के अधिकार मे चला गया, मेयनसी का भी पतन हो गया और कोंडो एवं बेलनसिन्स प्रान्तों पर आस्ट्रियन लोगों ने अधिकार जमा लिया।

किन्तु राष्ट्रीय-पञ्चायत ने हिम्मत न छोड़ी। बाह्य-रक्षा-कमेटी के सदस्य बडी तत्परता से काम करने लगे। वे स्वयं सेना के निरीक्षण के लिए भिन्न भिन्न क्षेत्रो का भ्रमण करते, पञ्चायत से युद्ध-क्षेत्र के लिए आज्ञाएँ निकालते। अन्तः-रक्षा कमेटी अपने काम मे जितनी तत्पर थी, उतनी ही वह वास्तव मे निर्दय थी। कुछ भी हो, दोनों कमेटियों का काम अन्त मे सराहनीय रहा। वर्ष समाप्त होने के पहले पश्चिमीय किनारे से विदेशी सेना हटा दी गई। बोर्डो और लियोन में शान्ति छा गई और नेपोलियन ने टोलोन को अँगरेज़ों के हाथ से छीन लिया। जोरडन फ्रांस की उत्तरीय फ़ौजों का सेनाध्यक्ष नियत किया गया।

किन्तु इस क्रान्ति मे न्याय की कितनी हत्या हुई, इसका हिसाब नही लगाया जा सकता। लुई की पत्नी, फ्रांस की रानी, मेरी-एनटोनिटी, गिरोनडिन-दल के एक एक करके सभी सदस्य, बहुत से सेनापति, सेनाध्यक्ष और अगणित

साधारण मनुष्य विश्वासघातकता के दोषारोपण से अथवा उत्साहहीनता के ही अपराध से बलि-देवी की भेंट चढ़ा दिये गये।

किसी भी हुल्लड़-शाही में बहुत दिनों तक मेल नहीं रह सकता। पहाड़ी दल में भी थोड़े दिनों में फूट के चिह्न दिखाई देने लगे। बाह्य-रक्षा-कमेटी का रोब्सपियरी सबसे प्रमुख सदस्य था। हेबर्ट ने अपने दल-बल-सहित उस पर विलासिता का दोषारोपण किया और डान्टन के अनुयायियों ने उसे स्वेच्छाचारी सिद्ध करना चाहा। किन्तु रोब्सपियरी कब परवाह करनेवाला था। उसको अपनी लोक-प्रियता पर दृढ़ विश्वास था। जकोबिन-क्लब आदि कई संस्थाएँ उसकी समर्थक थीं। निर्दयता की मात्रा उसमें आवश्यकता से अधिक थी, वह समझता था कि जो कुछ मैं करता हूँ, वह सब ठीक है। उसने हेबर्ट और डान्टन दोनों को १२ दिन के भीतर फाँसी पर लटकवा दिया। हेबर्ट को २४ मार्च १७९४ को और डान्टन को ५ वीं अप्रेल को। रोब्सपियरी को यह ख़बर न थी कि जिस उद्दण्डता के कारण वह फ्रांस का शासन कर रहा है, वह उद्दण्डता क्रान्तिकारियों का असली मनोरथ नहीं है। लोग प्रजातंत्र की रक्षा के लिए उस उद्दण्डता को सह रहे थे, किन्तु कुछ भी हो, वे प्रजातंत्र के मूल सिद्धान्तों का गला नहीं घोटना चाहते थे। हेबर्ट और डान्टन की हत्या के बाद रोब्सपियरी ने उनके साथियों को उनके पीछे पीछे भेज दिया। राष्ट्रीय-पञ्चा-

यत के सदस्य अपने साथियों की यह दुर्दशा देखकर स्तम्भित हो गये। रोब्सपियरी ने अपने को राज्यक्रान्ति का सर्वप्रधान नेता कहना शुरू कर दिया। उसने कारनाट और कंबन पर भी विश्वासघातकता का मिथ्यादोष लगाया। ये दोनों देश के सच्चे हितैषी थे और देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने मे जी जान से मिहनत करते थे। बस, पैशाचिकता की हद हो गई।

हुल्लडशाही को भी यह अन्याय असह्य हुआ। २७ जुलाई १७६४ को बहुमत से रोब्सपियरी को पंचायत मे एकाधिकार प्राप्त करने की चेष्टा मे प्राण-दंड दिया गया। एक वर्ष के बाद लोगों मे प्रतिहिंसा के भाव कुछ कम हुए और फिर प्रजातंत्र के मौलिक सिद्धान्तो की ओर लोगो का ध्यान गया।

राष्ट्रीय-पंचायत के प्रारम्भिक कार्यों का जो उल्लेख ऊपर किया गया है, वह बडा घृणोत्पादक है। उससे राज्यक्रान्ति सचमुच हुल्लड़शाही मालूम होती है। किन्तु वास्तव मे ऐसी बात नहीं थी। क्रान्तिकारियों के हृदय मे प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था की स्थापना का पूरा पूरा ध्यान था। बाह्य हस्तक्षेप के कारण ही फ्रांस को ऐसा उग्ररूप धारण करना पडा था। चारो ओर से शत्रुओ के द्वारा घिरे होने पर भी दो एक बार शासन-व्यवस्था का मसविदा बनाने की कोशिश की गई। यद्यपि इन मसविदो के अनुसार कभी कार्य नहीं किया गया, तथापि इनसे क्रान्तिकारियों के हृदय का अच्छा पता चलता

है और यह भी ज्ञात होता है कि विकास के मार्ग में कैसा उत्थान-पतन हुआ करता है। पहला मसविदा गिरोनडिनदल-वालो का बनाया हुआ था। उसकी दो बाते सबसे मुख्य हैं। एक तो उन्होने मानवीयता का विचार करके यह नियम बनाया कि राजनैतिक अभियोगों को छोड़कर कभी किसी अपराध मे प्राणदड न दिया जाय। राजनैतिक अभियोगों का अपवाद क्यों रखा गया था, यह उस समय की राजनैतिक परिस्थिति के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है।

दूसरी बात यह थी कि व्यवस्थापक और कार्यकारिणी-समितियां मे दलबन्दी न रहे। केवल एक व्यवस्थापक-सभा का संगठन किया जाय। २१ वर्ष से ऊपर के सभी मनुष्य चाहे उनके पास पैसा हो चाहे न हो, इस सभा के लिए सदस्य चुन सकें। यही लोग कार्यकारिणी-समिति के लिए सात मंत्री और एक संयोजक चुना करें। इनमे से आधे सदस्य प्रत्येक वर्ष बदले जाया करें। इसके अतिरिक्त व्यवस्था मे यह नियम भी रखा गया था कि वोट-दाता यदि चाहें तो किसी भी क़ानून के विषय मे स्वयं अपनी राय दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे व्यवस्थापक-सभा को किन्ही किन्हीं, क़ानूनों के ऊपर पुनः विचार करने के लिए बाध्य कर सकते हैं। व्यवस्था के निर्माताओं ने व्यवस्थापक-सभा की स्वेच्छाचारिता को रोकने के लिए दो बातों का व्यवस्था मे विशेष रूप से समावेश किया था। एक तो सभा

का जल्दी जल्दी चुनाव होना और दूसरा सर्वसाधारण को सदस्य चुनने का अधिकार दिया जाना।

यह व्यवस्था व्यवहार मे किस प्रकार की थी, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योकि गिरोनडिन मंत्रिमण्डल कभी इसको कार्य रूप मे परिणत नही कर सका। थोड़े ही दिनों में उसका पतन हो गया। किन्तु उस समय भी इस व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गई थी। जेकोबिन दलवालों का कहना था कि यह व्यवस्था प्रजातंत्र के अनुकूल नहीं है, क्योंकि इसमे यह नियम नही है कि जनता की स्वीकृति के बिना कभी कोई क़ानून नही बनाया जायगा। साथ ही यह स्वतंत्रता मे भी बाधक है, क्योंकि इसमे व्यवस्थापक-सभा और कार्य-कारिणी-समिति एक दूसरे से सर्वथा स्वतंत्र रखी गई हैं। तीसरे इसमे दलबन्दी की बू भी आती है, क्योंकि इसमे सदस्यों को विभागानुसार चुनने का विधान रखा गया है।

गिरोनडिन के बाद पहाड़ी-दल का आगमन हुआ। शत्रुओं से थोड़ा–बहुत अवकाश मिलने पर इसने एक नया व्यवस्था-पत्र तैयार किया। यह पहले से एक प्रकार बिलकुल भिन्न था। इसका पहला नियम यह था कि देश मे कोई क़ानून जनता की अनुमति के बिना नही बनाया जा सकता। अगर क़ानून बनने के बाद चालीस दिवस तक कोई मतदाता उसके विरुद्ध कोई प्रस्ताव उपस्थित करने की घोषणा न करे, तो वह क़ानून सर्वसम्मति से ग्राह्य समझ लिया जाता था।

वोटर लोग ही कार्यकारिणी-समिति के सदस्यों की एक सूची तैयार कर देते थे, उसमें से व्यवस्थापक-सभा शासन के प्रत्येक विभाग के एक एक सदस्य चुन लेती थी। व्यवस्थापक-सभा का प्रत्येक वर्ष नया चुनाव हुआ करता था।

इस नये विधान के अनुसार राष्ट्र का केवल यह अधिकार ही नहीं था कि यदि वह चाहे तो अत्याचारी शासक के विरुद्ध विद्रोह कर सके, किन्तु उसमें विद्रोह करना कर्त्तव्य ठहराया गया था। इतना होने पर भी रोब्सपियरी ने जो लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में बड़ा ही चतुर था, यह नियम भी बनवा लिया था कि व्यवस्थापक-सभा के सदस्यों की चाहे जैसी राजनैतिक सम्मतियाँ हों, वे उसके लिए दण्डित नहीं किये जा सकते थे।

यह व्यवस्था भी दोषों से शून्य नहीं थी। एक ओर जेकोबिन लोगों ने उसको प्रचलित करने की आज्ञा निकाली, दूसरी ओर उनको उसे स्थगित करना पड़ा। वास्तव में, वायुमण्डल उस समय ऐसा अशान्त था कि उसमें किसी प्रकार का राजनैतिक प्रयोग यथाविधि नहीं किया जा सकता। प्रजातंत्र घर में और बाहर दोनों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ था। उस समय आवश्यकता थी कुछ दृढ़-प्रतिज्ञ आदमियों की जो इन दोनों शत्रुओं को नष्ट करें। और बाह्य-रक्षा तथा अन्तः-रक्षा कमेटी की कार्यवाही में आप देख ही

चुके हैं कि किस प्रकार प्रजातंत्र शासन की बागडोर इने-गिने नेताओ के हाथ मे चली गई थी।

फ्रांस की सेनाओं तथा उसके विपक्षियों की सेनाओं मे उस समय घोर अन्तर था। एक जीवन-सहित थी और दूसरी जीवन-रहित। फ्रांस देश-प्रेम के भाव से उद्वेलित हो रहा था और शत्रुओं के अधिकांश सैनिक रुपये के लोभ से लड़ाई के मैदान मे आये थे। इसके अतिरिक्त यद्यपि आस्ट्रिया, जर्मन-साम्राज्य, प्रुशिया, स्पेन आदि सभी फ्रांस के शत्रु हो रहे थे, तथापि उनमे यथेष्ट एकता नहीं थी। जब इन्होंने फ्रांस पर आक्रमण किया तब फ्रांस तैयार नहीं था। किन्तु उन्होंने अपनी पहली सफलताओं से पूरा पूरा लाभ उठाया।

कारनोट रंगरूट सिपाहियो की सेना लेकर पेरिस से चला। उसकी फ़ौज मे अफ़सर भी मामूली सिपाही थे। किन्तु उनमे उत्साह कूट कूट कर भरा हुआ था। कठिनाइयों और आपत्तियो का उनको लेश-मात्र भी डर नहीं था। वे युद्ध को धर्मयुद्ध समझते थे। उन्होंने शत्रुओं से न केवल जीते हुए प्रान्त वापस लौटा लिये, वरन् उल्टे उनके देश पर हमला बाल दिया। जोरडन ने १५ अक्टूबर १७९३ को मोवेग के क्षेत्र पर आस्ट्रियन लोगों को हराया और होश एवं पिचेग्रू ने २७ दिसम्बर को शत्रुओं को राइन नदी के उस पार खदेड़ दिया। इधर वेण्डी ने अपने स्वदेशवासियों के विद्रोहों को कुचल डाला और पूर्वीय सीमा के सैनिकों को

सहायता देने पहुँच गया। २८ जून को फ्लूरस पर फ़रासीसियों की भारी जीत हुई, इसमे नेदरलैण्ड देश प्रजातंत्रवालों के हाथ मे आ गया। २८ अप्रेल और पहिली मई को क्रमानुसार सोरगियो और बोलोन के क्षेत्र पर फ्रांस की विजय हुई। इसके कारण स्पेनवालो को अपने देश मे शरण लेनी पड़ी।

१७९४ के अन्त मे फ्रांस ने शत्रुओं का तख़्ता उलट दिया। होलैण्ड पर इनका अधिकार हो गया। उत्तरी जर्मनी में भी इनका आतंक छा गया और स्पेन के ऊपर दो ओर से हमला किया गया।

राष्ट्रीय-पंचायत ने यद्यपि अपने सबसे बड़े कर्णधार रोब्सपियरी को फाँसी पर लटका दिया था, तथापि उसने अपने कार्य मे किसी प्रकार शैथिल्य नही आने दिया। उसने बाह्य आक्रमणों से भली प्रकार अपने देश की रक्षा की, साथ ही साथ देश मे क्रमशः शान्ति का प्रसार होने लगा। पेरिस मे एक दो नहीं वरन् कोमून आव पेरिस, जेकोबिन-क्लब आदि सैकड़ों ऐसे अड्डे थे जहाँ से निरन्तर हुल्लड़शाही का उत्पात शुरू हुआ करता था। किन्तु राष्ट्रीय-पंचायत ने इन क्लबों का ज़ोर भी बहुत कम कर दिया। इसका एक विशेष कारण था—पंचायत के शेष सदस्यों को देश की सच्ची लगन, वे प्रजातंत्र के मूल-सिद्धान्तों को कभी अकुण्ठित नहीं करना चाहते थे, यद्यपि कभी कभी

उन्हे ऐसे दमनकारी क़ानूनों का आश्रय लेना पड़ता था जो सार्वजनिक समता के विरुद्ध कहे जा सकते हैं।

जब फ्रांस ने आक्रामक रूप धारण किया, तब उसके दो एक शत्रुओं ने सोचा, कि फ्रांस से लड़ाई करना अपने आप बला सर मोल लेना है। स्पेन यह जानता था कि इस समय फ्रांस आसानी के साथ संधि कर लेगा। इसलिए उसने अपना सन-डोमिंगो नामक प्रान्त फ्रांस को दे दिया। यह संधि ५ वीं अप्रेल को हुई थी। प्रुशिया ने सोचा कि फ्रांस के साथ अधिक काल तक लड़ने से हमारे देश मे भी प्रजातांत्रिक छूत के लगने का डर है, इसलिए उसने भी राइन नदी की दूसरी ओर का भाग देकर २८ जुलाई ७५ को फ्रांस के साथ संधि कर ली। फ्रांस की नवीन सरकार को यूरोप की कम से कम दो प्राचीन सरकारों ने स्वीकार कर लिया, यह राष्ट्रीय-पंचायत के लिए कम गौरव की बात नही थी। इधर होश ने उन षड्यन्त्री अँगरेज़ों को, जो पश्चिमी किनारे पर विद्रोह फैलाने की इच्छा से उतरे थे, छिन्न-भिन्न कर दिया।

राष्ट्रीय-पंचायत को दो एक असफलतायें भी हुई, भूमध्य-सागर और वेस्टइण्डीज़ समुदाय मे से फ्रांस के टापू उसके हाथ से निकल गये। किन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि पंचायत ने यथाशक्ति अपने कर्त्तव्य का भली भाँति नहीं पालन किया। यद्यपि पंचायत का सारा जीवन युद्ध में बीता, और युद्ध ही उसने प्रधान रूप से अपना उद्देश रक्खा, तथापि वह व्यवस्था-

संबन्धी कार्यों से सर्वथा उदासीन नहीं रही। वास्तव मे वर्त-मान शिक्षा-प्रणाली और सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक संस्थाओ की नींव इसी भयंकर जमाने मे पड़ी थी। उस समय ये सूक्ष्म-विचार के रूप मे प्रकट हुए थे। पंचायत के मन्तव्यों के आधार पर ही नेपोलियन के सुप्रसिद्ध क़ानून-ग्रन्थ बने थे। पहले-पहल पंचायत ने समस्त फ्रांस मे एक समान-मान और फ़ौज-दारी का क़ानून जारी किया। पंचायत ने ही फ्रांस के सार्व-जनिक ऋणकोष का निर्माण किया था, जिसके कारण आज तक फ्रांस की साख चली आती है।

किन्तु पंचायत के विधायक कार्यों मे उसका व्यवस्थापत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इससे एक यह बात ज्ञात होती है कि लोगों के हृदय मे शासन-व्यवस्था के लिए कैसी व्याकुलता हो रही थी, एक के बाद एक व्यवस्थाओ का निर्माण हो रहा था। साथ ही लोगो के विचारों मे कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा था। ६ वर्ष के भीतर फ्रांस कहाँ से कहाँ पहुँच गया था।

उक्त व्यवस्था फ्रांस मे १७६५ से १७६६ ई० तक प्रचलित रही। इसके देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक व्यवस्था मे पिछली व्यवस्थाओ की त्रुटियो को दूर करने की आयोजना की गई थी। एकाएक बिना किसी प्रतिबन्ध के प्रत्येक व्यक्ति को वोट देने अथवा सदस्य बनने के अधिकार से व्यवस्थापक सभाओं मे हुल्लड़शाही का जोर रहता था। इसलिए अब

की बार व्यवस्था के निर्मात्ताओं ने यह नियम रखा कि जनता स्वतंत्ररूप से व्यवस्थापक-सभा के कार्य मे हस्तक्षेप नही कर सकेगी, साथ हो वोट देने के लिए भो कतिपय बातों का होना आवश्यक कर दिया गया। अशिक्षित अथवा असंयत मनुष्य व्यवस्थापक-सभा के सभ्य न हो सकें, इस बात का तो सबसे अधिक ध्यान रखा गया था। पिछले अनुभवों से उन्हें यह भो शिक्षा मिली थो कि केवल एक परिषद् से ठीक ठीक काम नही चल सकता। इसलिए उन्होंने दो सभाओं के संगठन का प्रस्ताव किया। पहलो सभा मे ५०० सदस्य रहें और दूसरी सभा मे केवल २५० सदस्य हो जो पहले की अपेक्षा अधिक गंभीर हो। पहली सभा कानूनों के लिए प्रस्ताव करे और दूसरी सभा उन पर विचार करके उन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करे।

साधारण जनता सभाओं के अधिवेशनो मे भाग न ले सके—इसके लिए कठोर नियम बना दिये गये थे। बहुत कम आदमियों को इनमे उपस्थित होने की अनुमति दी जाती थी। सभा-भवन से फ़ौजें बहुत दूर हटा दो जाती थीं और व्यवस्थापक-सभाओं को स्थायी कमेटियाँ बनाने का अधिकार नहीं दिया था।

मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से पूर्ण स्वतंत्रता दी गई थी, किन्तु सभा-समितियों का संगठन करना संदेह की दृष्टि से देखा जाता था। इससे तात्कालिक परिस्थिति का अनुमान सहज मे हो सकता है। इस शासन-व्यवस्था की सबसे बड़ी

त्रुटि यह थी कि प्राचीन व्यवस्थाओं के अनुसार इसके निर्माताओं ने व्यवस्थापक-सभा एवं कार्यकारिणी-सभा के कार्य को सर्वथा पृथक् पृथक् समझा। यह नियम बनाया गया कि जो व्यवस्थापक-सभा का सदस्य हो वह कदापि कार्यकारिणी का सदस्य न बन सकेगा और २५ वर्ष से अधिक आयुवाले और सरकार को कर देनेवाले मनुष्य सभाओं के लिए सदस्य चुन सकेंगे। प्रत्येक वर्ष के अन्त मे सभा के तिहाई सदस्य बदल दिये जाते थे। कोई सदस्य २ वर्ष के पहले पुनः व्यवस्थापक-सभा का सदस्य नही बन सकता था। पहली सभा के सदस्यों की आयु कम से कम ३० वर्ष की होनी आवश्यक थी, दूसरी व्यवस्थापक-सभा की सदस्यता के लिए विवाहित और चालीस वर्ष से ऊपर होने पर किसी विधवा के साथ ब्याह करना आवश्यक था।

कार्यकारिणी-समिति मे पॉच सदस्य होने का नियम था। प्रत्येक पॉचवें वर्ष सभा का नया चुनाव होना निश्चित हुआ था। किन्तु कोई सदस्य पॉच वर्ष के पहले पुनः कार्यकारिणी-समिति का सभ्य नहीं हो सकता था। पहली व्यवस्थापक-सभा कार्यकारिणी-समिति के लिए दस नाम पेश करती थी, उनमे से द्वितीय सभा कार्यकारिणी-समिति के मंत्री चुनती थी। चालीस वर्ष से कम आयुवाले मंत्री नही हो सकते थे। जहॉ एक बार कार्यकारिणी-समिति का संगठन हो गया फिर व्यवस्थापक-सभाओं से उसका सारा संबंध टूट जाता था। न

तो कार्यकारिणी-सभा व्यवस्थापक-सभाओं को भंग कर सकती थी और न सभायें मंत्रियों को निकाल सकती थीं। मंत्रियों को राज्य-संचालन का पूर्ण अधिकार था। उसमे व्यवस्थापक सभायें हस्तक्षेप नहीं कर सकती थीं किन्तु उनकी सहायता से हाथ सिकोड़ कर वे उनके काम मे बाधा डाल सकती थीं। दूसरी बात यह थी कि सभाओं का चुनाव प्रत्येक वर्ष मे हुआ करता था और कार्यकारिणी-समिति का पाँच वर्ष मे एक बार। ऐसी अवस्था में इन दोनों मे कभी सामञ्जस्य नहीं हो सकता था।

ज्यों ही इस व्यवस्था का श्रीगणेश किया गया, त्योंही एक नया खतरा सामने आया। यद्यपि रोब्सपियरी का शरीर संसार से उठ गया था, किन्तु लोग उसकी भयंकरताओ को अभी भूल नहीं सके थे। इससे बढ़कर लोगों को अपनी दीन-हीन दशा पर बड़ा शोक हो रहा था, क्योंकि लगातार युद्धों के मारे अनेक आर्थिक समस्यायें उत्पन्न हो गई थीं। तीसरे राजतंत्रवाले अभी अपनी आशाओ से बिलकुल हाथ नहीं धो बैठे थे। उनको यह आशा बँधी कि शायद नवीन निर्वाचन मे उनके मत का बहुमत हो जाय और शायद इस प्रकार पुन. फ्रांस के सिंहासन पर लुई के उत्तराधिकारी को बैठाल सके।

राष्ट्रीय-पंचायत इस बात को ताड़ गई। क्योंकि जनरल पिचेग्रू इन्ही राजतंत्र-वादियों में जा मिला था। पंचायत ने

सोचा—कहीं यह आशंका सच निकली तो हमारा सारा करना-धरना मिट्टी हो जायगा। उसने भंग होने के पहले एक प्रस्ताव किया, जो सर्वथा वैध नहीं कहा जा सकता। प्रस्ताव था कि वोट-दाताओं को आगामी सभाओं के तिहाई सदस्य राष्ट्रीय-पंचायतों के सदस्यों में चुनना चाहिए और शेष तिहाई सदस्यों के चुनने के पहले ही कार्यकारिणी-समिति का चुनाव हो जाना चाहिए। इस प्रकार यह निश्चित हो गया कि कम से कम पाँच वर्ष तक कार्यकारिणी-समिति में और एक वर्ष तक व्यवस्थापक-सभाओं में क्रान्ति-कारियों के भावों का प्राधान्य रहेगा।

राज्य-तंत्रवादी वैध आन्दोलन से हताश हो गये। ५ आक्टोबर १७९५ को ही वे ४०,००० सेना लेकर पंचायत पर चढ़ आये। नवयुवक जनरल बोनापार्ट ने बात की बात में विद्रोहियों के झुण्ड को भगा दिया, किन्तु एक बात प्रत्यक्ष हो गई, वह यह कि देश में शान्ति की स्थापना के लिए अभी बहुत दिनों तक कठोर उपायों का अवलम्बन करना पड़ेगा। दूरदर्शी यह भी समझ गये थे कि व्यवस्थापक-सभाओं और कार्यकारिणी-समिति के पारस्परिक झगड़ों के कारण नवीन संगठन बहुत दिन नहीं टिकने का।

२६ आक्टोबर १७९५ ई० को अपना काम समाप्त करके राष्ट्रीय-पञ्चायत स्वयं भङ्ग हो गई। तात्कालिक एक प्रसिद्ध विद्वान् सीईज़ ने पञ्चायत के संबन्ध में कहा था—

यह उन लोगों की पञ्चायत थी जो साहसी तो बड़े थे किन्तु उनमे प्रखर बुद्धि के कोई लक्षण नही थे। उनकी शक्ति अगाध हो गई थी, उनका प्रभाव देश भर पर छा गया था, इसका कारण उनका स्वतन्त्रता की दुहाई देना था। उद्दण्ड और बुद्धिमान् होने के कारण उन्होने स्वयं अपने मार्ग में रोड़े अटकाये। एक एक करके सभी राज्य-प्रबन्ध उखाड़ कर फेंक दिये और जब ठोकर खाकर मुँह के बल गिरे तो अपनी अयोग्यता के कारण देश को पीटने लगे। इससे यह स्पष्ट है कि यह एक ऐसे व्यक्ति की राय है जिसने क्रान्ति मे बिलकुल भाग नहीं लिया था। यद्यपि पञ्चायत ने सैकड़ों निर्दोष अमीर, उमराओं, पादरियों और जनरलो की हत्या की किन्तु उसने बाह्य आक्रमणों से फ्रांस की रक्षा करने मे कोई बात उठा नहीं रखी। इसलिए यदि हम सब बातो का विचार करें, तो हम सीईज़ की राय से सहमत नहीं हो सकते। पञ्चायत ने क्रातिकारियो की भावनाओं की बड़े यत्न से रक्षा की है और उनकी भावनायें अनुचित थीं यह समझना भी निर्मूल है। डान्टन ने सैकड़ों राजतन्त्रवादियों को हँसते-हँसते फाँसी पर लटकवा दिया। जब उसकी बारी आई तो उसने उतनी ही प्रसन्नता के साथ पञ्चायत की आज्ञा शिरोधार्य की। लोगों ने उसे भागने की सलाह दी, उसने उत्तर दिया—यदि मैं भाग जाऊँगा, तो फिर अपने देश को कहाँ पाऊँगा।

---

(३)

कार्यकारिणी-समिति

(२७ आक्टोबर १७६५ से १० नवम्बर १७६६)

फ्रांस के नवीन संगठन का जन्म अनुकूल परिस्थिति मे नहीं हुआ था। संगठन के दोषपूर्ण होने के कारण कठिनाइयों का होना तो अनिवार्य ही था, फ्रांस की तात्कालिक परिस्थिति उसकी कठिनाइयों को और भी कठिन बना रही थी।

फ्रांस-सरकार ने राष्ट्रीय व्यय के लिए अंधाधुन्ध नोट निकाल दिये थे। किन्तु राष्ट्रीय-कोष मे उनके आधार के लिए यथेष्ट सोना-चाँदी न होने के कारण उनकी शाख बिलकुल गिर गई थी। लोग नोट लेना पसन्द नहीं करते थे। क्रय-विक्रय के एकाधिकार-सम्बन्धी नियम तथा खाद्य सामग्री की दर निश्चित करने से व्यापार और कला-कौशल मे ह्रास हो रहा था। प्रुशिया और स्पेन से संधि हो जाने पर भी फ्रांस को युद्ध से छुटकारा नहीं मिल गया था। विरोधी-दल के कई सदस्य अब भी युद्ध-क्षेत्र में डटे हुए थे। फ्रांस युद्ध करने के लिए बाध्य था। किन्तु अब फ्रांस केवल बाध्य ही नहीं था, वरन् स्वयं युद्ध के लिए लालायित था। देश मे हाहाकार मचा हुआ था, बृहत् सेनाओ के लिए खाना आवे, तो कहाँ से आवे। सिर्फ एक ही मार्ग था। और वह यह कि दूसरे देशों में जाकर लूट मार की जावे और एक साथ दोनों उद्देशो

की पूर्ति की जावे—विरोधियों को हराना और अपना निर्वाह करना।

तीन जनरल युद्ध-कौशल मे पहले ही से नाम कमा चुके थे। १–मोरा, यह पूर्व मे राईन नदी की ओर भेजा गया, २–जोइडन, यह उत्तर की ओर भेजा गया, ३–होश, यह पश्चिम भेजा गया। दक्षिण दिशा उस समय सुरक्षित नहीं थी। कार्य-कारिणी-समिति ने सबसे पहले उसी ओर ध्यान दिया और जनरल बोनापार्ट को एल्प्स पर चढ़ाई करने के लिए भेज दिया। उस समय बोनापार्ट से बढ़कर और कोई व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं दिखाई देता था।

जर्मन-साम्राज्य, आस्ट्रिया, इटली आदि मे जो उस समय फ्रांस से लड़ रहे थे, आस्ट्रिया सबसे कट्टर और सब से प्रबल शत्रु था। कारनोट जो इस बार कार्यकारिणी का सदस्य हो गया था और जो युद्ध का मुख्य संचालक था, इस बात को अच्छी तरह जानता था। उसने जनरल होश को ब्रिटेनी प्रांत मे इसलिए भेजा, कि यदि समुद्र की ओर से कोई हमला हो तो उसको रोके, और शेष तीनों जनरलों को तीन भिन्न भिन्न मार्गों से आस्ट्रिया पर आक्रमण करने के लिए भेजा। जोरडन मेन नदी की घाटी से, मोरो नेकर नदी की घाटी से और बोनापार्ट इटली के मार्ग से आस्ट्रिया की ओर चले।

जोरडन और मोरो दोनों के पास मिलाकर १,२०,००० सैनिक थे किन्तु इनको अधिक सफलता नहीं हुई। वे एक दूसरे

से बहुत पृथक् थे। वे थोड़ी दूर आगे बढ़े और कई स्थानों पर उन्होंने आस्ट्रियन लोगों को हराया। इससे आस्ट्रिया की राजधानी वियना में थोड़ी सी खलबली अवश्य हुई, किन्तु आस्ट्रियन सिपहसालार चार्ल्स बड़ा बहादुर था। उसने पहले जोरडन को वर्जबर्ग के क्षेत्र पर हराया और फिर मोरो को फ्रांस के अलसस प्रान्त तक खदेड़ दिया। ये घटनायें ३ सितम्बर के लगभग की हैं।

यह सभी लोगों ने सुना है कि नेपोलियन से बढ़कर साहसी जनरल होना कठिन है। बोनापार्ट ने अपने सिपाहियों में एक नवीन जीवन भर दिया। उसने इटली की विजय से अपने सैनिकों का बड़ी बड़ी आशायें दिलाईं। इसलिए उनके लिए युद्ध बेगार के बजाय उत्साह में परिणत होगया। बोनापार्ट ने थोड़े ही दिनों में एक से एक शानदार विजय प्राप्त की। १४ अप्रेल को उसने मेलीसिमों में पेडमेन्टी लोगों को हराया और १५ को डेगों में आस्ट्रियनों को हराया। २६ अप्रेल को उसने फिर मोनडोवी में पेडुमेण्टी लोगों को हराया और २८ अप्रेल को एक क्षणिक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इसके द्वारा नाइस और सेवोय प्रान्तों एवं कोनी, टोरटोना और ऐलीसेन्ड्रा के क़िलों पर फ्रांस का अधिकार होगया। इधर संधि हो ही रही थी कि बोनापार्ट ने आस्ट्रियनों को बड़ी दूर तक पीछे हटा दिया और पिसेनज़ा लोडी और वोरघेटी नामक

स्थानों में (९,१०,३० मई) को उनको पराजित किया । इतना ही नहीं, वरोना पर अधिकार किया और मेनटुआ पर घेरा डाल दिया। उसने पराजित देशो से युद्ध-कर वसूल किया और अपने सैनिको को सन्तुष्ट करके बहुत सा धन कार्यकारिणी-समिति और जर्मन प्रान्तों मे लड़नेवाले फ़रासीसी जनरलों के पास भेज दिया।

लगातार हारों का संवाद सुनकर आस्ट्रिया की नींद टूट गई। उसने वर्म्सवर नामक सेनाध्यक्ष को नवीन सेना के साथ बोनापार्ट से लड़ने के लिए भेजा। किन्तु उसने अपनी सेना को दो भागो मे विभक्त करके बोनापार्ट पर दो ओर से हमला करना चाहा। यह उसकी प्रधान भूल हुई। बोनापार्ट ने ३ री और ५ वीं अगस्त को उसकी सेना के दोनों भागों को बहुत आसानी से हरा दिया और फिर पीछे से वर्म्सवर पर आक्रमण किया। कई स्थानों पर हार खाने के बाद उन्होंने मेनटुआ के क़िले मे शरण ली।

फिर भी आस्ट्रिया हताश नही हुआ। उसने अलविनज़ी सेनापति की अध्यक्षता मे पुनः एक सेना भेजी। किन्तु वह भी बोनापार्ट के आगे न ठहर सका। बात यह थी कि बोनापार्ट मे परिस्थिति को अपने अनुकूल बना लेने की विलक्षण योग्यता थी। वहाँ किस बात की कमी है और वह कमी किस प्रकार पूरी की जा सकती है, यह बोनापार्ट फ़ौरन ताड़ लेता था। इसके अतिरिक्त उसने अपने सैनिकों

मे न जाने कौन सा जादू भर दिया था कि वे उसके इशारे पर जान देने के लिए तैयार रहते थे। इसलिए उसे भयंकर से भयंकर शत्रु का सामना करने मे कठिनाई नहीं होती थी। उसने आस्ट्रियनों को अरकोला, बेरोना, रिवोली, सनगिओ-रगी, और ला फवोरियटा आदि स्थानों पर (१५ नवम्बर १७६७ और १३, १४, १५, १६ जनवरी १७६८) हराया और उनको आस्ट्रिया के भीतरी प्रान्तों मे खदेड़ दिया। इधर वर्म्सवर ने मेनटुआ के क़िले में घिरे घिरे अन्त मे आत्म-समर्पण कर दिया।

नेपोलियन बोनापार्ट केवल जनरल ही नहीं था, वरन् उसमे शासन की भी योग्यता थी। यह उसके कार्य-ढंग से मालूम हो जाता है। ज्योंही उसे कुछ अवकाश मिला, त्योंही उसने पराजित देशो के संगठन का विचार किया। उसने मोडेना के ड्यूक को गद्दी से उतार दिया और उसके राज्य मे प्रजातंत्र-शासन स्थापित किया। रोमगना, वोलोना आदि प्रान्त भी इसी राज्य मे जोड़ दिये। इसके बाद वह वेनिस और लेगुरिया मे प्रजातंत्र-स्थापन के लिए चल पड़ा।

आर्क ड्यूक चार्ल्स आस्ट्रिया का सबसे प्रसिद्ध सेनापति था। उसने ही जोरडन और मोरो को हराया था। अब की बार आस्ट्रिया उसको ही बोनापार्ट से युद्ध करने के लिए भेजा। बोनापार्ट ने अपने दो सहायकों को उससे लड़ने के लिए भेजा और आप स्वयं न्यू-मारकेट मे होकर ७ वी अप्रेल को

लेबेन मे जा पहुँचा। इधर चार्ल्स का हटना था कि उत्तर मे फ्रेंच-जनरलों ने फिर तहलका मचा दिया। होश ने राइन नदी पार कर ४ दिन मे तीन जगह आस्ट्रियनों को हराया, साथ ही मोरो ने आस्ट्रियनों को काले पर्वतों तक भगा दिया। आस्ट्रिया की राजधानी वियना मे इस समाचार से सनसनी फैल गई। उन्होंने सधि करना चाहा। बोनापार्ट को इन बातो का ज्ञान न था। वह संधि के लिए राज़ी होगया। उसने १८ अप्रेल को संधि की प्रारम्भिक शर्तों पर हस्ताक्षर कर दिये और इस प्रकार फ्रांस की विजयपताका को आगे बढ़ने से रोक दिया।

वास्तव मे बोनापार्ट के विचित्र शौर्य से आस्ट्रियन लोग एकदम स्तम्भित हो गये थे। आस्ट्रियन ही नहीं, इँग्लैंड मे भी लोगो को बोनापार्ट की विजयो से बड़ा आश्चर्य हुआ था। उसने भी फ्रांस से संधि करने का प्रस्ताव किया। किन्तु दुर्भाग्य-वश उस समय संधि न हो सकी। सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह भी थी कि जिस समय फ्रांस में नैतिक और आर्थिक अध:पतन बड़ा भयंकर रूप धारण कर रहा था, उसी समय बोनापार्ट यूरोप मे फ्रांस का नाम ऊँचा कर रहा था।

किन्तु पेरिस मे क्रान्तिवादी सरकार की अवस्था अच्छी नहीं थी। प्रारम्भ मे होश ने राजतंत्रवादियों के विद्रोह को दबा दिया था। अँगरेज़ भीतर ही भीतर इन

लोगो को उभार रहे थे। फ़रवरी और मार्च मे इस आन्दोलन के दो प्रमुख-नेताओ को गोली मार दी गई। किन्तु क्रान्तिवादी सरकार और उसकी पुलिस का दबाव देश पर दिन-प्रति-दिन कम हो रहा था। चारो ओर लूट मार हो रही थी, दिन दहाड़े डाके पड़ जाते थे। राष्ट्रीय-पंचायत के विधान के अनुसार कार्यकारिणी-समिति को जो अधिकार दिये गये थे, उनसे वह देश की भली प्रकार रक्षा नही कर सकता था। राष्ट्रीय ख़ज़ाने मे एक कौड़ा भी नही रह गई थी, रात-दिन के युद्धो से एक एक करके सब पैसे ख़र्च हो गये थे। यद्यपि बोनापार्ट ने इटली से लाखों फ्रैंक समिति के पास भेजे थे, तथापि ख़र्च पूरा नही होता था। केवल रुपये-पैसे की ही कमी नहीं थी। सच बात यह है कि लोग युद्ध से तंग आ गये थे, किन्तु उससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं सूझता था। आम तौर से लोगों मे नैतिक बल का ह्रास हो रहा था, जुए और सट्टेबाजी का प्रचार दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता जाता था। ये बुराइयाँ केवल निम्न श्रेणी के लोगों मे ही नहीं थी, बरन् बड़े बड़े लोग भी इनके शिकार हो रहे थे।

इस अस्त-व्यस्त अवस्था में राजतंत्रवादियों की बन आई। सोलहवें लुई के लड़के को जो टेम्पिल के कारागार मे बन्दी था, उन्होंने सत्रहवें लुई की उपाधि दे रखी थी। वह १७९५ मे मर गया। सोलहवें लुई का एक और भाई था। वह

क्रान्ति के प्रारम्भ में ही भाग गया था और आजकल एक बड़े भारी षड्यंत्र का संगठन कर रहा था। इधर जो बहुत से लोग फ़्रास से भाग गये थे, वे पुनः लौटने लगे। उनकी जायदाद ज़ब्त कर ली गई थी और राष्ट्रीय-कोष मे सम्मि लित कर ली गई थी। इसलिए उनका आना ही क्रान्तिवादियों के दिल मे संदेह उत्पन्न करनेवाला था। इस प्रकार का एक राजतंत्रवादो आन्दोलन देश भर मे फैला था और उसका केन्द्र पेरिस था। इस संस्था का नाम क्लिची था।

दूसरे वर्ष नियमानुमार व्यवस्थापक-सभा मे थोड़े से नवीन सदस्य निर्वाचित किये गये। उसमे राजतंत्रवादी भो यथेष्ट संख्या मे चुने गये। उन्होने अपने दल के जनरल पिचेग्रू को पहली व्यवस्थापक-सभा का सभापनि बना दिया और अपने ही दल के बरथेलमी को कार्यकारिणी-समिति का सभ्य बना दिया। कार्यकारिणी-समिति राजतंत्रवादियो की बढ़ती हुई शक्ति से घबरा गये। उन्होने पेरिस मे एक फ़ौज बुला कर सभा-भवनों के चारों ओर सैन्य स्थापित कर दी और फिर जेकोबिनों ने, यद्यपि उनका बहुमत नहीं था, नवीन-निर्वाचन को क़ानून-विरुद्ध घोषित कर दिया। उन्होंने ५३ सदस्यों को जिनमे जनरल पिचेग्रू सभापति भी सम्मिलित था, देश-निकाले की आज्ञा दी। अपनी समिति के दो सभ्यों को भी उन्होने यही आज्ञा दी, एक तो बरथेलमी को जो जान बूझ कर राजतंत्रवादो था और दूसरे कारनोट को, जिसने राजतंत्रवादियों

मे जो युद्ध आस्ट्रिया के साथ किये गये थे, वे आक्रमक कहे जा सकते हैं किन्तु उस समय इसके अतिरिक्त फ्रांस के लिए और गति नहीं थी। किन्तु आज जिन युद्धों का प्रारम्भ किया जा रहा था वे अधिकतर विजय-लालसा अथवा धन-लिप्सा की प्रेरणा से किये गये और यह सिलसिला १८१४ ई० तक जारी रहा। कार्यकारिणी-समिति ने इँग्लैंड के साथ संधि की बातचीत बन्द कर दी। समिति तो अब यह भी चाहने लगी कि बोनापार्ट लिबेन की क्षणिक संधि के आधार पर आस्ट्रिया के साथ स्थायी संधि-पत्र पर हस्ताक्षर न करे।

किन्तु बोनापार्ट मे देश पर आधिपत्य जमाने के भाव जागृत हो रहे थे। उसने सोचा कि यदि मैं अपनी विजयों के द्वारा आस्ट्रिया के साथ एक शानदार सन्धि भी स्थापित कर सकूँ तो जनता को मुझसे अच्छी सहानुभूति होगी, इसके साथ ही उसको फ्रांस के कट्टर शत्रु इँग्लैण्ड से बदला लेने का भी अवसर मिल जायगा। इसलिए कार्यकारिणी-समिति की आज्ञा के विरुद्ध उसने वेनिस में १७ अक्टूबर १७९७ को आस्ट्रिया के साथ संधि कर ली। इसके द्वारा आस्ट्रिया ने बेलजियम देश और राईन नदी का समस्त पश्चिमीय भाग और इजोनियन टापू फ्रांस को सौंप दिये। फ्रांस ने इटली मे जीते हुए वेनिस आदि प्रान्त आस्ट्रिया को लौटा दिये और आस्ट्रिया ने फ्रांस के प्रजातंत्र शासन को स्वीकार किया।

आस्ट्रिया से संधि करने पर बोनापार्ट को अवकाश मिला, किन्तु समिति इस समय युद्ध के लिए तुली बैठी थी। उसने बोनापार्ट को इँग्लैंड के विरुद्ध भेजना चाहा। यहाँ तक कि इँग्लैंड मे उतरने का प्रबन्ध कर लिया गया था। किन्तु बोनापार्ट ने इतनी अपर्याप्त सेना से इॅग्लैंड पर आक्रमण करना उचित न समझा। उसको पूर्व की ओर बढ़ना ही अधिक आकर्षक मालूम हुआ। किन्तु वास्तव मे उसकी स्कीम कुछ अधिक प्रशस्त नहीं थी। क्योंकि पूर्व की ओर आगे बढ़ने से उसने एक तो फ़्रांस के बहुत पुराने मित्र टर्की की सहानुभूति खो दी और दूसरे मिस्र पर हमला करने से उसने कोई विशेष लाभ नहीं उठाया। वास्तव मे उसका उद्देश्य भी मिस्र मे फ़्रांस का राज्य-स्थापित करना नहीं था। वह उस मार्ग से हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करना चाहता था, और हिन्दुस्तान मे अँगरेज़ों को हराना चाहता था। यह कार्यक्रम व्यावहारिक था या अव्यावहारिक, यह प्रश्न दूसरा है, किन्तु इससे बोनापार्ट की कल्पनाशक्ति की प्रचुरता का पता चलता है। कुछ दिनो बाद जो फ़्रांस को बेलेन, मोस्को और वाटरलू के युद्धो मे घसीटा जाना पड़ा। वह इसी महान् योद्धा की कल्पना का फल था।

कार्यकारिणी-समिति ने बोनापार्ट की अवहेलना को कोई महत्त्व नहीं दिया, क्योंकि यह उसकी हार्दिक इच्छा थी कि इतना शक्तिशाली जनरल जितने दिनों तक फ़्रांस से बाहर

रहे उतना ही अच्छा। बोनापार्ट मई १७९८ मे टोलोन से पूर्व की ओर रवाना हुआ। विजय-श्री ने उसका अच्छा स्वागत किया। ११ जून को उसने मार्ग मे मालटा जीत लिया और २ जुलाई को एलेक्ज़ेन्ड्रिया और २३ जुलाई को केरो पर अधिकार जमा लिया। मामेलुक लोग उसको रोकने के लिए आये, किन्तु उन्हे हारकर लौट जाना पड़ा। उसने मिस्र मे प्रचलित प्रथाओं के अनुसार एक नवीन राज्य स्थापित किया और कुछ विद्वानो को उस देश की भाषा, इतिहास, और विज्ञान सीखने के लिए नियत कर दिया।

जल-युद्ध में फ्रांसवालों ने अँगरेज़ों को बहुत कम नीचा दिखाया है। जिस बेड़े के द्वारा बोनापार्ट मिश्र मे उतरा था, उसको नेलसन ने १ अगस्त को छिन्न-भिन्न कर दिया। अतः बोनापार्ट को अधिकाधिक अन्तरीय प्रदेशों मे जाना पड़ा। उसने क्रमशः गाज़ा और जाफा पर अधिकार जमा लिया और १६ अप्रेल १७९९ ई० को मार्ऊंट-थेवर की पहाड़ी पर तुर्कों को करारी हार दी। जहाज़ो बेड़े के नष्ट हो जाने से उसको फ्रांस से किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती थी। उसकी सेना दिन पर दिन कम होती जाती थी, इस पर भी उसकी सेना मे प्लेग प्रारम्भ होगया। अतएव उसने आगे बढ़ना उचित न समझा। २५ जुलाई को आबूकिर के मैदान मे उसने फिर तुर्कों को बुरी तरह हराया। इधर उसके पास सेना और लड़ाई के सामान की

कमी हो रही थी, उधर उसने सुना कि यूरोप मे भी फ्रांस का स्थान गिर रहा है। वह अपने अधीनस्थ कलेबर के पास शेष सेना को छोड़ कर एक नाव पर सवार होकर ८ अक्टूबर को फ्रांस पहुँच गया। वहाँ उसको चारो ओर घोर अशान्ति दिखाई पड़ी।

इस अशान्ति को दूर करना कार्य-समिति की शक्ति के बाहर था। कभी वह उग्ररूप धारण करती और कभी भीरुता दिखलाती। राष्ट्रीय-कोष की सम्मान-रक्षा के हेतु उसने शब्दाडम्बर से भरा हुआ एक नवीन विधान चलाया। किन्तु वास्तव मे उसके द्वारा क्रान्तिवादी सरकार ने अपना दिवाला निकाल दिया, क्योकि उसमे राष्ट्रीय ऋण का केवल दो तिहाई भाग कागज़ी नोटों के द्वारा अदा करने का वचन दिया गया था। इसी प्रकार जब जनता मे उसने अपना विद्रोह बढ़ते हुए देखा, तो ११ मई १७९८ को सविधि निर्वाचन कार्य-समिति ने अवैध ठहरा दिया। रुपयों के भीषण अभाव के कारण उसने अमीरों से बलपूर्वक ऋण लेना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद असन्तोष को और भी बढ़ाने के लिए उसने २० वर्ष से लेकर २५ तक के सभी फ्रेंच लोगों को सेना में भरती होना अनिवार्य कर दिया। पोप की पार्थिव-शक्तियों पर आक्षेप, हालैण्ड में उसके प्रतिनिधियों की लूटमार, जिनोवा और मिलन मे उसके सदस्यों का नीचता-पूर्ण दुर्व्यवहार आदि बीसों घटनायें ऐसी हुईं जिनसे पहले क्रान्तिवादियों को स्वतंत्रतादेवी का उपासक

समझ कर उनकी पूजा करने वाले फ्रेंच लोग भी अब तंग आ गये। केवल फ्रांस ही मे यह हालत नहीं थी। यूरोप के एक विशिष्ट जनसमुदाय ने भी फ्रांस की इस राज्य-क्रान्ति का स्वागत किया, किन्तु उनके दुराचरण के कारण उसकी भी सहानुभूति जाती रही।

मार्च १७९९ ई० मे इँग्लैण्ड के प्रधानमंत्री मि० पिट के समझाने-बुझाने से यूरोप के बादशाहों ने फ्रांस के विरुद्ध एक नवीन जत्था तैयार किया। यह संघ पहले की अपेक्षा अधिक शक्ति-सम्पन्न था, क्योंकि एक तो इसमे टर्की और रूस भी सम्मिलित हो गये थे और दूसरे यह कि अब यूरोपीय जनता भी फ्रांस के विरुद्ध सहायता देने को तैयार हो गई थी। और फ्रांस के लिए सबसे अनिष्टकर बात यह थी कि उसमें अब १७९२ की भाँति न तो उत्साह रह गया था और न उतनी शक्ति ही थी।

प्रारम्भ मे फ्रांस को नेपेल्स में थोड़ी सी सफलता हुई, किन्तु पाँच पाँच शत्रुओं के आगे कार्य-समिति के पैर उखड़ने लगे। जोरडन ने राईन नदी पार तो की, किन्तु आर्च ड्यूक चार्ल्स ने स्टोकह पर उसको बुरी तरह हराया। २५ मार्च १७९९ मे उसको अलसस प्रान्त मे शरण लेनी पड़ी। मोरो की भी यह दशा हुई। २८ अप्रेल को कसोनो के क्षेत्र पर उसकी पराजय हुई, अन्त में उसको जिनोवा मे हटना पड़ा। मेकडोनल्ड को भी १८।१९ जून को लाट्रेबिया में हार खानी पड़ी। अन्त

मे जोवर्ट, जो मोरो और मेकडोनल्ड के स्थान में जनरल नियुक्त किये गये थे, १५ अगस्त को नोवी के युद्ध मे मारे गये। इस प्रकार इटली फ्रांस के हाथ से फिर निकल गया। उत्तर में फ्रांस को थोड़ी सी सफलता हुई। अँगरेज़ी और रूसी सेनायें बरजेन (बेलजियम) पर उतरनेवाली थीं, बर्न ने उनको नही उतरने दिया। मेसीना ने ज्यूरिच पर मोस्कोवालों को पूर्णरूप से पराजित किया और वे २५ सितम्बर को विपत्ती संघ से पृथक् हो गये।

लगातार हारों से कार्य-समिति जनता मे बदनाम हो गई। सब लोग उसको कम्पो-फोरमियों की संधि की उपेक्षा करने के लिए दोष देने लगें। और बात भी बहुत दर्जे तक ठीक थी। व्यवस्थापक सभाओं ने कार्य-समिति से बदला चुकाना चाहा। उसके तीन सदस्यों को त्यागपत्र देने के लिए बाध्य किया। व्यवस्थापक-सभायें तो पहले ही से निर्जीव हो गई थीं, अब कार्य-समिति के नष्ट होने का भी समय आगया। लोग सब ओर से हताश हो रहे थे। उनकी एकमात्र चिन्ता यह थी कि किसी प्रकार फ्रांस में शान्तिदायक व्यवस्था प्रतिष्ठित हो जाय जिससे प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों की रक्षा हो सके। राजतांत्रिक भावनाओ की वृद्धि से सभी सशंक थे। ठीक इसी समय बोनापार्ट ने फ्रांस की भूमि पर पैर रखा। लोगों का हृदय-कमल खिल उठा। उन्होंने एक-स्वर से राष्ट्र की रक्षा करने के लिए बोनापार्ट से प्रार्थना की। सब लोगों

की आँखें वर्तमान संगठन के विनाश की ओर लगी हुई थीं। सभी दल के लोग बोनापार्ट को इसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करने के लिए उत्साहित कर रहे थे। यही आश्चर्य की बात थी। सीईज यद्यपि इस समय कार्य-समिति का सदस्य हो गया था किन्तु वह इसलिए अप्रसन्न था कि इस संगठन के निर्माण के पहले उसकी बात क्यों नहीं पूछी गई। जेकोबिन तो ख़ून-ख़बर सबके लिए तैयार थे, वे केवल राजतंत्र को फूटी आँखों नहीं देखना चाहते थे। जो लोग नरमदलवादी थे, वे इस समय समानता के सिद्धान्त को सबसे अधिक मूल्यवान् समझते थे। यहाँ तक जो समर्थन हुआ, वह असाधारण नहीं हुआ। किन्तु वे राजतंत्रवादी भी बोनापार्ट का साथ देने को तैयार थे, वे समझते थे कि जब वर्तमान संगठन टूट जायगा तो बोनापार्ट देवतुल्य भावनाओं से फ़्रांस का शासन अठारहवें लुई के हाथ सौंप देगा। बोनापार्ट ने अच्छा मौक़ा देखा, उसने सबको सहायता देना स्वीकार कर लिया, किन्तु वह किसी दल में सम्मिलित नहीं हुआ। यही उसकी सबसे बड़ी चतुराई थी।

९ नवम्बर १७९९ को उसने बल-पूर्वक ५०० सदस्योंवाली पहली व्यवस्थापक-सभा को अपने सैनिकों द्वारा भंग करा दिया। तमाशा यह था कि कार्य-समिति के कई सभ्य और द्वितीय व्यवस्थापक सभा के अधिकांश सदस्य उसके साथ थे। सोच-विचार के पश्चात् बोनापार्ट ने दो अन्य साथियों के साथ फ़्रांस का संरक्षक बनने का पद स्वीकार किया। किन्तु

वास्तव मे बोनापार्ट अकेला इस समय राष्ट्र का कर्णधार था। उसकी धाक फ्रांस पर पूरी तरह से जम गई थी। इस प्रकार राज्य-क्रान्ति के नाम से बोनापार्ट फ्रास का पहला स्वेच्छाचारी शासक बना। उसने जुगनू की भाँति थोड़ी देर के लिए अंधकार में चमत्कार फैला दिया, किन्तु फिर उसके बाद फ्रांस में और भी घोरतर अंधकार छा गया।

---

(४)

संरक्षकता

(१० नवम्बर १७९९–१७ मई १८०४)

कार्य-समिति को छिन्न भिन्न करके बोनापार्ट ने फ्रांस पर अपना एकाधिकार प्रभुत्व जमाया। कार्य-समिति का संगठन प्रजातांत्रिक द्वितीय व्यवस्थापत्र के अनुसार हुआ था। पहले व्यवस्थापत्र में शासन की बागडोर एकदम जनता के हाथ में दी गई थी, किन्तु उसका परिणाम हुआ भयंकरता और पैशाचिकता। इसलिए द्वितीय व्यवस्थापत्र में जनता सामान्यतः परामर्श-दात्री बनाई गई और राज्य-प्रबन्ध कार्य-समिति के हाथ में सौंपा गया। किन्तु फ्रांस की अन्तरंग और बाह्य परिस्थिति के कारण यह व्यवस्था भी असफल रही। इसलिए बोनापार्ट ने जो तृतीय व्यवस्था चलाई उसमे जनता का केवल नाम ही नाम रह गया। यद्यपि शासन अब भी प्रजातांत्रिक कहलाता था, बल्कि पहले की अपेक्षा और जटिल हो गया था किन्तु वास्तविक शक्ति सब बोनापार्ट के हाथ मे सिमिट गई थी।

सीईज उस समय सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक राजनीतिज्ञ था। उसने द्वितीय व्यवस्थापत्र के समय अपनी एक स्कीम तैयार की थी। किन्तु सर्वसम्मति ने उसको उस समय अस्वीकृत कर दिया था। सीईज हार माननेवाला नहीं

था। द्वितीय व्यवस्थापत्र के असफल होने पर उसने नये अनुभव प्राप्त किये और अपनी स्कीम अधिक परिवर्द्धित और परिष्कृत कर ली। सचमुच जिस समय और जिस परिस्थिति मे यह स्कीम तैयार की गई थी, उसको देखते हुए सीईज का अनुभव विस्मय-जनक मालूम होता है। सीईज ने बोनापार्ट के सामने अपनी स्कीम प्रस्तुत की। बोनापार्ट तो इसकी खोज ही मे था, उसने यह स्वीकार कर लिया किन्तु ज्यों की त्यों नहीं। जो बात उसके मतलब की थी, वह उसने ग्रहण कर ली, और जो उसकी वृद्धि मे किसी प्रकार बाधक सिद्ध हो सकती थी, उसे निकाल दिया। यह बहुत पहले ही लक्षित हो गया था कि बोनापार्ट का मस्तिष्क किधर जा रहा है।

सीईज का कहना था कि एक हाथ में शक्ति की एकाग्रता होने से स्वेच्छाचारिता और भयंकरता का प्रचार होता है। यदि व्यवस्थापक और कार्य-समितियों को बराबर अधिकार दिया, तो उन दोनों में निरन्तर द्वन्द्व-युद्ध हुआ करते हैं। इसलिए व्यवस्थापकों का काम सरकार और उसके विपक्षियों के परस्पर वाद-विवाद को निपटाना रखा जाय। जो राष्ट्र स्वतन्त्रता का उपभोग करना चाहता है, वह जितनी अधिक संस्थाओं मे अपने प्रतिनिधि भेज सके उतना ही अच्छा है। किन्तु किसी एक व्यक्ति को दो संस्थाओं में प्रतिनिधि बनाकर कदापि न भेजें। सीईज के अनुसार चार प्रतिनिधि-

सभायें होनी चाहिए थीं। पहली एक मूलव्यवस्थापक-सभा, जो फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के मूल सिद्धान्तों की रक्षा करेगी, दूसरी जन-समूह-समिति जो व्यवस्थापक सभा को जनता की सम्मतियाँ बतलाती रहेगी, तीसरी कार्य-समिति अथवा राज्य-प्रबन्ध-समिति जो कि मंत्रियों का निर्वाचन करेगी और क़ानूनों का अन्तिम रूप निर्धारित करेगी, चौथी व्यवस्थापक सभा होगी, यह कर-धर तो कुछ नहीं सकेगी किन्तु कार्य-समिति और जन-समूह-समिति के निर्णयों पर अपनी सम्मति प्रकाशित कर देगी।

उक्त व्यवस्थापत्र उसने १७९५ ई० मे उपस्थित किया था। सन् १७९९ ई० मे उसने इसमें और परिवर्द्धन कर दिया था, इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि लोगों को उस समय राज्य-क्रान्ति के सिद्धान्तों की रक्षा करने की कितनी चिन्ता थी। उसने एक नया 'गुरु' निकाला था। जनता को सरकार में विश्वास होना चाहिए और सरकार को शासन करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। विश्वास जनता की वस्तु है और अधिकार सरकार की, अतएव जनता का प्रतिनिधि-सभाओं के लिए पृथक् पृथक् सदस्य चुनना व्यर्थ है। वह सदस्य बनने योग्य पुरुषों की सूची तैयार कर दिया करे, सरकार उसी सूची में भिन्न भिन्न सभाओं के लिए सदस्य चुन लिया करेगी। किन्तु सम्प्रति राजतंत्र के पुनरुत्थान का हौवा लोगो के सिर पर सवार था। इसलिए सीईज

ने उसमे एक धारा यह भी जोड़ दी कि सन् १७८९ से जो प्रजातंत्र की स्थापना मे भाग ले रहे हैं, उनका नाम उक्त सूची मे अवश्य जोड़ दिया जाय और दस वर्ष तक इस सूची मे कोई परिवर्तन न हो सके। प्रजातंत्र के सिद्धान्तों की रक्षा करने के लिए इससे अधिक और कोई गारंटी नही हो सकती थी।

जनता के हस्तक्षेप को कम करने के लिए सीईज ने एक और युक्ति निकाली थी। वह यह थी कि जन-समूह-समिति और व्यवस्थापक-सभा के सदस्य कोंजरवेटर-परिषद् निर्वाचित किया करे। इस परिषद् मे केवल सौ आजीवन सभ्य रहेंगे जिनको सीईज और बोनापार्ट अथवा जिसको यह लोग चाहें, वे फ्रांस के धनी-मानी और प्रतिष्ठित पुरुषों में से चुनेंगे। साधारण मनुष्य भी इस बात को देख सकता है कि यह सब जनता को भुलावा देने का ढंग था, उसी के लिए इतने बड़े स्वांग की रचना की गई थी। वास्तव में आदिशक्ति बोनापार्ट के हाथों मे समर्पित कर दी गई थी। किन्तु स्वांग का यहीं पर अन्त नहीं होता है। उक्त कोजरवेटर-परिषद् को सर्व प्रथम निर्णायक चुनने का अधिकार दिया गया था। यह सर्वप्रथम निर्णायक क्या करेगा, सो भी सुन लीजिए। वह फ्रांस का एक अन्तरंग संरक्षक और एक बाह्य संरक्षक चुनेगा। यह संरक्षक फिर कार्य-समिति और मंत्रियो का निर्वाचन करेंगे। और अन्त में मंत्री लोग अपने अपने विभाग के भिन्न भिन्न

कर्मचारी नियुक्त करेंगे। किन्तु कर्मचारी उसी सूची मे से नियुक्त किये जा सकेंगे जिसको जनता ने अपने वोटाधिकार से तैयार की होगी। बस, इतना ही जनता का अधिकार रह गया था। वास्तव मे एक ओर इसके द्वारा प्रजातंत्र के मूल सिद्धान्त का खून किया गया था, नाममात्र केवल प्रजातंत्र का रह गया था, दूसरी ओर 'सर्वप्रथम निर्णायक' पद की स्थापना से राजतत्र का अन्त कर दिया गया था।

किन्तु बोनापार्ट सीईज की भाँति दार्शनिक नहीं था। उसको व्यवस्था की जटिलता और तर्क मुग्ध नहीं कर सकता था। वह एक कार्य-शील जनरल था। उसने सीईज के व्यवस्था-पत्र मे से अपने मतलब की बातें निकाल ली और असार वस्तु फेंक दी। उसने सन् ई० १७६७ मे टेलीरेण्ड को लिखा था कि वास्तव मे केवल राजाओं और बादशाहो के अधिकार के विषय मे जिनका पद पैतृक हुआ करता है, जनता को सदैव सचेत रहना चाहिए जिससे वे अपने अधिकारो का दुरुपयोग न कर सकें, किन्तु प्रजातंत्र के सभापति या संरक्षक की शक्ति के विषय मे जनता को चिन्ता करने की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वह उन्ही के द्वारा उस उच्च सिंहासन पर बैठाया गया है।

बोनापार्ट जानता था कि एक दिन वह राष्ट्र-पति के उच्च पद पर बैठाया जायगा, इसलिए उसे व्यवस्था के झमेले मे अधिक रुचि नहीं थी। हाँ, वह उस झमेले का नाम निस्संदेह नहीं

मेटना चाहता था और वास्तव मे यह उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। बोनापार्ट को सीईज के 'सर्वप्रधान निर्णायक' का पद बिलकुल अनावश्यक जान पड़ा, इसलिए व्यवस्था-पत्र मे से उसने वह धारा निकाल दी और स्वयं अपने आपको १० वर्ष के लिए फ़्रांस का प्रथम संरक्षक घोषित कर दिया। यद्यपि इस पद मे केम्बेसिरीस और लेबरन भी इसके साझी-दार थे, किन्तु वे केवल काठ के पुतले थे। जिधर बोनापार्ट उनकी नकेल घुमाता था, उधर ही वे घूम जाते थे। उसने सीईज को कोजरवेटर-परिषद का, जिसका नाम उसने महा-परिषद् कर दिया था, सभापति बना दिया और बड़ी चतुराई से उसमे अपने ही चेलों को निर्वाचित कराया। भविष्य के लिए यह नियम बना दिया कि इसके सदस्य मूल-व्यवस्थापक-सभा जन-समूह-समिति एवं सरकार की सूचियो के आधार पर चुने जाया करेंगे। उसने जन-समूह-समिति का अस्तित्व तो स्वीकार किया किन्तु उसको कोई नया क़ानून बनाने का अधिकार नहीं दिया, केवल प्रस्ताव करना उसका कर्त्तव्य शेष रह गया। व्यवस्थापक-सभा को भी उसने क़ायम रखा, किन्तु इसको वाद-विवाद करने की भी स्वतंत्रता नहीं दी। इस प्रकार बोनापार्ट के लिये केवल एक बाधा रह गई, वह यह कि जनता के द्वारा चुनी हुई सूची में से प्रतिनिधि-सभाओं के सदस्य और कर्मचारियों के चुनने का नियम था। न जाने जनता के द्वारा कैसी सूची बनाई जाय। इसलिए

उसने निश्चय किया कि पहले एक वर्ष तक शासन का काम बिना सूची के ही चलाया जाय और प्रति तीसरे वर्ष इस सूची पर पुनर्विचार किया जाय।

इसलिए सम्प्रति स्थायी प्रतिनिधि-सभाओं के संगठन की आवश्यकता मिट गई। अस्थायी रूप से संगठन कर लिया गया। उसमे भी व्यर्थ के वाद-विवादों मे अधिक समय नहीं नष्ट किया गया। इसमे सन् १७८९ के द्वितीय व्यवस्थापत्र के अनुसार नागरिकों के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिक तूल नही खींचा गया था। हाँ, प्रारम्भ मे यह अवश्य कहा गया था कि यह व्यवस्था प्रतिनिधि-सत्तात्मक-शासन के सिद्धान्तो के आधार पर बनाई गई है, इसमे जनता की सम्पत्ति, स्वतंत्रता और समता का यथेष्ट ध्यान रखा गया है। अब राज्य-क्रान्ति का अन्त हुआ समझना चाहिए, इसलिए न्याय-पूर्वक इस व्यवस्था के अनुसार राज-प्रबन्ध किया जायगा। किन्तु यदि भविष्य मे कभी किसी विद्रोह अथवा युद्ध की सम्भावना होगी, तो कुछ काल के लिए यह व्यवस्था स्थगित की जा सकती है।

इसमे संदेह नही कि राज्य-क्रान्ति का आन्दोलन कुछ दिनों के लिए शान्त हो गया, किन्तु उसके सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। विशेषाधिकार-प्राप्त जन-समूहों के विशेषाधिकार नष्ट कर दिये गये थे, इसलिए समता और सम्पत्ति की एक

प्रकार से थोड़ी-बहुत रक्षा हो रही थी। किन्तु स्वतंत्रता किस चिड़िया का नाम है, यह उस समय नागरिक नहीं जान सके थे। राज्य-क्रान्ति के प्रारम्भ मे जिन विचारों का उदय हुआ था, ठीक उनके उल्टे विचारों का इस समय प्रसार हो रहा था। प्रारम्भ मे कलेक्टर, जज, और पादरियों तक का चुनाव जनता के द्वारा किया जाता था किन्तु अब कार्य-समिति अथवा सीनेट के द्वारा उनका निर्वाचन होता था। इतना ही नहीं, स्वयं व्यवस्थापकों का चुनाव भी इन्हीं के हाथों मे था। थियोडो ने कहा है कि सीनेट, व्यवस्थापक-सभायें, जन-समूह-समितियाँ और समाचार-पत्र सब बोनापार्ट के दिखावटी हथियार थे, वह इनमे जैसी कूक भर देता था, वे वैसा ही राग अलापने लगते थे। इनके द्वारा उसके वचनों को व्यवस्थित होने की छाप लग जाती थी, और उनका आसानी से प्रचार हो जाता था।

सीनेट की ओर बोनापार्ट का सबसे अधिक ध्यान था। इसको सबसे अधिक शक्ति भी थी और यही उसकी सबसे अधिक आज्ञाकारिणी थी। इसके द्वारा उसने व्यवस्था में मनमाना परिवर्तन किया। इसके एक अधिवेशन मे उसने कहा था—वर्तमान सरकार स्वायत्त-शासन-सम्पन्न जनता की प्रतिनिधि है, इसलिए उसके संरक्षक का कोई प्रकृत-विरोध नही हो सकता। जन-समूह-समिति ने कुछ विरोध किया। इसलिए वह सदैव के लिए दबा दी गई। व्यवस्थापक-सभा पहले ही से गूँगी थी, उसको अपनी ओर से एक शब्द भी

बोलने की आज्ञा नहीं थी, कुछ दिनों बाद सीनेट की आज्ञाओं को उसके पास भेजने की भी आवश्यकता न रह गई।

इस प्रकार के शासन का एक ही अर्थ हो सकता था, और आख़िर हुआ भी वही। सम्पूर्ण शक्ति बोनापार्ट के हाथ मे चली गई। राज्य-क्रान्ति-वादियों ने यथाशक्ति केन्द्रिक सरकार को शक्तिहीन करने का उद्योग किया था। प्रान्तिक शासन मे केन्द्रिक-सरकार का हस्तक्षेप बहुत कम कर दिया था। प्रान्तिक-शासन जनता-द्वारा निर्वाचित कर्मचारियों के हाथ मे था। किन्तु अब दशा पलट गई। बोनापार्ट ने छोटे-छोटे ज़िलों मे भी अपनी पसन्द का एक कर्मचारी नियुक्त किया। और भी जितनी संस्थाये थी, म्यूनिसिपलटियाँ थीं, उन सबोंमें सरकार के यथेष्ट प्रतिनिधि मौजूद थे, इस प्रकार वे केन्द्रिक-सरकार के कार्यों मे चूँ नहीं कर सकती थीं। बहुत हुआ तो प्रस्ताव-मात्र कर दिया। १४ वें लुई के समय मे भी केन्द्रिक-सरकार के अधिकार शायद इतने सुदृढ़ नही थे, प्रान्तीय विभागों को कही अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी, किन्तु आश्चर्य इसी बात का है कि क्रान्ति के ज़माने मे कितना भीषण विचार-परिवर्तन हुआ था। किन्तु तौ भी बोनापार्ट की व्यवस्था के विरुद्ध उस समय किसी ने आवाज़ न उठाई।

इसका एक विशेष कारण था। बोनापार्ट अधिकार-प्रिय होते हुए भी राज-तंत्रवादियों का पक्षपाती नहीं था। वह

जनता की समता और सम्पत्ति को सुरक्षित रखना चाहता था। तिस पर नीचे से लेकर ऊपर तक सभी कर्मचारी उसको अपने मन के मिल गये। स्वयं उसमें भी शक्ति की कमी नहीं थी। उसने बहुत जल्दी सारे देश मे शान्ति स्थापित कर दी, लोग शान्ति-पूर्वक अपने अपने काम मे लगे, धन-धान्य की कमी पूरी होने लगी। राष्ट्र का आय-व्यय व्यवस्थित हो गया और पेरिस मे फ़्रांस का बैंक स्थापित किया गया, जिसके द्वारा राष्ट्र को युद्ध-काल में रुपयों के लिये कुछ सुभीता हो गया। सड़कों और नहरों आदि की ओर भी ध्यान दिया गया, कृषि मे वृद्धि हुई, इसी हिसाब से कला-कौशल मे उन्नति होने लगी। युद्ध के कारण व्यापार बिलकुल रुक गया था, वह भी फिर चमक उठा। इस प्रकार जिस वायुमण्डल के लिए जनता बहुत दिनो से तरस रही थी, वह उसे प्राप्त हो गया।

इधर सीनेट फ़्रांस के लिए एक सार्वदेशिक क़ानून निर्माण करने में लगा हुआ था और प्रथम संरक्षक एक नवीन 'आरडर आव लीजन आव होनर' स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था, जिसका मतलब यह होता है कि जिन लोगों ने क्रान्ति के समय सैनिक रूप से अथवा ग़ैर-सैनिक रूप से क्रान्ति मे सहायता दी थी, वे राष्ट्र की ओर से उपाधियों-द्वारा सम्मानित किये जायँ। एक ओर क्रान्ति के द्वारा प्राचीन उपाधिधारियों का मान-मर्दन किया गया था और दूसरी ओर बोनापार्ट नवीन उपाधियों की सृष्टि में तत्पर हो रहा था। बोनापार्ट ने 'फ़्रांस के

विश्वविद्यालय की भी नींव डाली थी। इसमे भी उसने अपने विचार भर दिये थे। इसमे सैनिक और धार्मिक आदर्शों का यथेष्ट समावेश किया गया था—शिक्षा-सम्बन्धो तथ्यों के लिए फ़्रांस मे यही विश्वविद्यालय, सर्वप्रधान था। निम्न-श्रेणी के बालकों की भी इस विश्वविद्यालय-द्वारा परीक्षा ली जाती थी। वास्तव मे बोनापार्ट मे विलक्षण कार्य-शक्ति थी। वर्तमान और भविष्य उसके लिए एक समान महत्त्वपूर्ण थे। उसकी महत्ता केवल इसी एक बात से प्रकट होती है कि उसने अपनी कल्पना के अनुसार फ़्रांस की जीवन-धारा पर अपनी छाप इस प्रकार अंकित कर दी थी कि उसका धोया जाना किसी प्रकार सहज नहीं था।

बोनापार्ट का मस्तिष्क काल्पनिक होते हुए भी उदार और महत था। एक ओर उसने बड़ी निर्दयता से सन् १८०० में वेण्डी के राज-तंत्र-वादियों के विद्रोह का दमन किया था, और दूसरी ओर बहुत से समाचार-पत्रों को बन्द करवा दिया था, किन्तु सबसे पहले उसने उन लोगों के लिए जो कि कार्य-समिति के ज़माने मे देश से निर्वासित कर दिये गये थे, पुनः फ़्रांस का द्वार खोल दिया गया। बहुत से पादरी जिन्होंने नये विधान के शपथ अभी तक नहीं लिये थे, कारागार मे सड़ रहे थे, बोनापार्ट ने उनको भी मुक्त कर दिया, साथ ही साथ उसने भागे हुए अमीर-उमराओं को भी नागरिक जनता के कार्यों मे भाग लेने का अधिकार दे दिया, किन्तु राष्ट्रीय-कोष मे जो जागीरे सम्मि-

लित की गई थीं, वे उनको वापस नहीं लौटाई गईं। संक्षेप में, उसने जनता को यह संदेश सुनाया कि हम लोग सबसे पहले फ्रेंच-राष्ट्र के नागरिक हैं, जेकोबिन, नरमदलवादी अथवा राजतंत्रवादी होना हमारे लिए बिलकुल गौण है। इस संदेश का फ्रांस-वासियों ने हृदय से स्वागत किया।

बोनापार्ट के कार्य वास्तव में एक से एक साहस-पूर्ण हैं। क्रान्ति के आदि ही में पादरियों को शपथ दिलाने का नियम बनाया गया था, उसके पश्चात् रोमन केथोलिक पादरियों पर अकथनीय अत्याचार हुए। २१ जनवरी १७९५ के नियम के अनुसार प्रजातंत्र ने पादरियों को वेतन देने और धार्मिक स्थानों का सञ्चालन करने से हाथ हटा लिया। लोगों को अपने धार्मिक अनुष्ठानों के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गई। किन्तु गिरजाघरों का सञ्चालन उस समय आसान काम नहीं था। पादरी तो राजनैतिक संदेह के कारण जेलों में ठूँस दिये गये और गिरजाघर लावारिस हो गये। बोनापार्ट ने गिरजाघरों का पुनरुद्धार किया। १५ जुलाई १८०१ ई० को उसने पोप पियस (द्वितीय) के साथ संधि की और पुनः पादरियों और बिशपों को वेतन देना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उसने रोमन-केथोलिक धर्मवालों की सहानुभूति अपनी ओर खींच ली।

किन्तु बोनापार्ट की यह चाल भी बिना मतलब नहीं थी। क्योंकि पोप की अनुमति के अनुसार पादरी, बिशप और आर्चबिशप आदि नियुक्त करने का अधिकार उसने सरकार

के हाथ मे रखा। साथ ही विश्वविद्यालय की भाँति उसके लिए भी कुछ नियम बना दिया। मतलब यह कि यह धार्मिक संघ भी उसके हित-वर्द्धन का एक नवीन साधन बन गया।

तृतीय व्यवस्था के अनुसार जो प्रतिनिधि-सभाएँ बनी थीं, यद्यपि वे सब प्रकार से निर्जीव और बोनापार्ट की अनुचर थीं, तौ भी उनमे बोनापार्ट के नवीन सुधारों के विरुद्ध कुछ काना-फूसी हुई। इस नाममात्र के विरोध को दूर करने के लिए उसने जो जो चालें चलीं, उनसे उसकी लोक-प्रियता का अनुमान हो सकता है। १८०२ मे व्यवस्थापक-सभा और जन-समूह-समिति के एक अंश को पुनः चुनने का समय आया। बोनापार्ट ने कौन निकाला जाय और कौन न निकाला जाय, चिट्ठी द्वारा इसको निश्चित कराने के बजाय स्वयं कुछ लोगों के नाम काट दिये। इस प्रकार डोनों, बेनजमिन कोन्सटेंट, चेनियर आदि उसके प्रमुख विरोधी बात की बात मे इन सभाओं से पृथक् कर दिये गये। इतने से भी बोनापार्ट को सन्तोष न हुआ। २ अगस्त १८०२ को सीनेट का एक विशेष अधिवेशन हुआ—उसमे बोनापार्ट आजन्म फ्रांस का संरक्षक घोषित कर दिया गया, उसको अपना उत्तराधिकारी भी निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। जन-समूह-समिति के सदस्यों की संख्या कम कर दी गई, साथ ही व्यवस्थापक-सभा के अधिवेशनो की तिथियाँ पहले से घोषित करना भी अनिवार्य न रह गया। इतना ही नही, फ्रांस के अभ्युत्थान के लिए

यदि किसी देश से कोई राजनैतिक संधि की जाय, तो इन सभाओं से उसकी स्वीकृति लेने की भी आवश्यकता नहीं रही। सीनेट के लिए सदस्य चुनने का इन सभाओं का स्वत्व भी रद्द कर दिया गया। जनता-द्वारा सदस्य बनने योग्य मनुष्यों की सूची भी इस तरह दुहराई गई कि सब प्रकार से व्यवस्था मे बोनापार्ट का बोल-बाला हो गया। स्वयं इस विशेष अधिवेशन की कार्यवाही की स्वीकृति जनता से नहीं ली गई। सीनेट ने अपनी रिपोर्ट में अपने सिद्धान्त का वर्णन किया है—देश मे सर्वत्र अभ्युदय का मार्ग खुला हुआ है, देश धन-धान्य-पूर्ण है, इसका अर्थ ही यही है कि जनता जिन नियमों का पालन कर रही है, उनसे वह सर्वथा संतुष्ट है। जनता के अधिकार सुरक्षित हैं या नहीं, यही स्वायत्त-शासन-पूर्ण राष्ट्र का मतलब है, इसी सामाजिक कर्त्तव्य का पालन करना सीनेट का धर्म है, और जनता को भी इससे अधिक सिनेट के कार्यों मे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं।

इस समय बोनापार्ट फ़्रांस के हृदय का सम्राट् था या नहीं, यह आप केवल इसी बात से जान सकते हैं कि उसे आजन्म संरक्षक बनाने के विषय मे ४० लाख वोटो में से ३५ लाख वोट उसके पक्ष मे आये थे। केवल एक इसी विषय पर वोट भी लिये गये थे। किन्तु इस अद्भुत लोकप्रियता का भी एक रहस्य है। बोनापार्ट ने केवल देश के भीतर शान्ति की स्थापना नहीं की थी, वरन् देश-देशान्तरों में फ़्रांस

की विजय-पताका फहरा दी थी। उसने जर्मनी के साथ संधि कर ली और इँग्लैण्ड को, जिसने फ्रांस को क्लान्त समझ कर संधि करना नापसंद किया था, पहली ही मुठ-भेड़ मे नीचा दिखाया।

मोरो जर्मनी मे फ्रेंच-सेना का संचालन कर रहे थे और मेसीना इटली मे। मोरोने ३, ५ मई १८०० को आस्ट्रियन सेनाध्यक्ष क्रे को स्टोकह, इनजिन आदि क्षेत्रों मे हराया जिससे उनको उल्म के क़िले मे शरण लेनी पड़ी। किन्तु मेसीना के पास सेना बहुत कम थी, वे स्वयं जिनोवा के क़िले मे घिरे हुए थे किन्तु उन्होंने बड़ी बहादुरी से १२,००० हज़ार आस्ट्रियन-सेना को अपने पास नहीं फटकने दिया। आस्ट्रियन-सेना के संचालक उस समय मेला थे। बोनापार्ट थोड़ी सी फ़ौज लेकर हज़ारो कठिनाइयों का सामना करते हुए मेला और आस्ट्रिया के रास्ते मे जा डटा। मेला आस्ट्रिया से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने से घबरा गया, उसने बोनापार्ट पर हमला किया, किन्तु दो एक जगह हार खाने के बाद १४ जून को मेरेंगो मे उसकी ऐसी करारी हार हुई कि उसने बोना-पार्ट को आत्म-समर्पण कर दिया।

उधर मोरो भी चुपचाप नही बैठा था। होच्सटेड की विजय के बाद वह म्युनिच तक पहुँचा गया। बोनापार्ट चाहता था कि चारों तरफ़ से घेरघार कर आस्ट्रिया को संधि के लिए बाध्य किया जाय। उसने जाड़े ही में धावा बोल दिया, यद्यपि

जाड़े के दिनों मे उस शीत-प्रदेश मे लडाई लड़ना एक प्रकार से असम्भव था। फ्रेंच-सेना-नायक मेकडोनेल्ड ने टिरोल पर आस्ट्रियनों को हराया और मूरट ने पोन्टीफिकल राज्यों पर अधिकार जमा लिया। इधर मोरो के द्वारा जिसकी सेना सब प्रकार से सुसज्जित थी, ३ दिसम्बर को होहेनलिंडेन पर आस्ट्रियनों का भीषण पराजय हुआ। मोरो एक-दम वियना मे पहुँच गया। वियना आस्ट्रिया की राजधानी थी। आस्ट्रियनो को संधि के लिए बाध्य होना पड़ा। ९ फ़रवरी १८०१ को लूनविली की संधि पर दोनों ओर के हस्ताक्षर हुए। इस संधि-पत्र के द्वारा समस्त इटली पर फ़्रांस का प्रभुत्व हो गया। टसकेनी मे यूट्रिआ नामक एक नवीन राज्य स्थापित किया गया, उसमे एक स्पेन का राजकुमार बादशाह बनाया गया।

यूरोप भर में बोनापार्ट की धाक जम गई। केवल इँग्लैण्ड और पुर्तगाल फ़्रांस के विरोधी रह गये। शेष रूस, प्रूशिया, स्वीडेन और डेन्मार्क ने फ़्रांस से संधि कर ली और इँग्लैण्ड के बढ़ते हुए व्यापार को रोकने के लिए एक पृथक् संधि की। किन्तु इँग्लैण्ड का जहाज़ी बेड़ा उस समय इन सबसे बढ़ा-चढ़ा था, नेल्सन ने २ अप्रेल सन् १८०१ को डेनमार्कवालो को कोपेनहेगन मे बुरी तरह हराया और यह व्यापारिक-संधि तुरन्त छिन्न-भिन्न हो गई। जहाज़ी शक्ति फ़्रांस की भी बहुत हीन थी। फ़्रांस का मालटा उपनिवेश अँगरेज़ों ने घेर रखा था,

वे उसको भी नहीं छुड़ा सके थे, क्योंकि इनका सारा ध्यान यूरोपीय युद्धो मे लगा हुआ था। यहाँ तक कि क्लेबर भी जिसको बोनापार्ट मिस्र मे छोड़ आया था, फ़्रांस को नहीं लौट सका। उसने इँग्लैण्ड के सिडनी स्मिथ के साथ फ़्रांस जाने के लिए संधि की, किन्तु उसको इँग्लैण्ड के प्रधान मंत्री पिट ने अस्वीकृत कर दिया। क्लेबर ने कई बार मिस्र मे तुर्कों को हराया, २० मार्च १८०० मे हेली पोलिस मे तुर्कों को पराजित किया, किन्तु थोड़ी सी फ़ौज से वह मिस्र मे कब तक टिक सकता था। १४ जून को वह मार डाला गया। उसके पश्चात् जेनरल मेनिओ ने सेना का चार्ज लिया, किन्तु हार खाकर ६ वीं अप्रेल को आत्म-समर्पण कर दिया और मिस्र छोड़ दिया।

किन्तु बोनापार्ट फ़्रांस की जल-सेना से हताश नहीं था। वह उसके संगठन के लिए उद्योग कर रहा था। उसने बोलोन मे इँग्लैण्ड के आक्रमण के हेतु एक जहाज़ी बेड़ा तैयार किया था। अलसिराज मे जो जल-युद्ध हुआ था, उससे प्रकट हो गया था कि जल-युद्ध मे फ़रासीसी किसी से पीछे नहीं रह सकते। सब बातो को सोच-विचार कर अन्त मे इँग्लैण्ड ने २७ मार्च १८०२ को फ़्रांस से संधि कर लेना उचित समझा। एमीन की संधि स्थापित हो गई। उसके द्वारा इँग्लैण्ड ने फ़्रांस की यूरोपीय-विजयो को स्वीकार कर लिया। स्विटज़रलैण्ड से लेकर इटली तक कई एक प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गये। उन

पर फ्रांस का आधिपत्य था, इँग्लैण्ड ने यह भी स्वीकार कर लिया। इतना ही नहीं, फ्रांस को मालटा और केप भी लौटा दिये। केवल सीलोन (लंका) और ट्रिनीडाड इँग्लैण्ड को मिले। इस प्रकार यह संधि अधिकतर फ्रांस के पक्ष मे थी।

दो वर्ष पहले बोनापार्ट जब मिस्र से चलने लगा था, तब फ्रास मे हाहाकार मचा हुआ था और यूरोप मे भी थोड़ी अशान्ति नहीं थी। आज दो साल बाद कायापलट हो गई। फ्रांस ने फिर स्वस्थ होकर साँस ली। यूरोप मे भी शान्ति छा गई। बोनापार्ट ने नये नये सुधार चलाये, जनता ने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया कि सुधारों का वास्तविक मूल्य क्या है, केवल उनके शान्तिदायक परिणाम को देखकर अपने संरक्षक के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट की। उसको जन्म भर के लिए संरक्षक बना दिया।

आगे क्या होनेवाला है, साधारण मनुष्य इस बात को नहीं जान सकते थे। लेनबिली और एमीन की संधि हुई अवश्य थी, किन्तु उनमे स्थायित्व नहीं था। इसका एक बड़ा भारी कारण स्वयं बोनापार्ट था। उसका स्वभाव बड़ा विचित्र, एक प्रकार से उद्दण्ड था। यूरोप ने क्यो बोनापार्ट का प्रभाव स्वीकार कर लिया था, बोनापार्ट किस प्रकार इतने बड़े जटिल संगठन के साथ फ्रांस का राज्य चला रहा था, इसका एक-मात्र रहस्य बोनापार्ट की असीम शक्ति कही जा सकती है।

प्रारम्भ से ही बोनापार्ट को अपनी बात सर्वोपरि रखने

की आदत थी। इटली के प्रजातंत्र उस समय इतने कमज़ोर थे कि वे अकेले अपने पैरों पर नहीं खड़े हो सकते थे, स्विट्ज़र-लैण्ड फूट का घर था, जर्मनी भी बिना किसी दूसरे की सहायता के अपने राज्य का यथोचित सुधार नहीं कर सकता था। बोनापार्ट ने इन सब देशों के कार्यों मे हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया।

उसने पिडमोंट और इलबा नामक टापू फ्रांस-राज्य मे ११ सितम्बर १८०२ में मिला लिये। उसने जिनोआ का डोज (सभापति) चुनना स्वीकार कर लिया। जनवरी सन् १८०३ मे स्वयं सिलेसपाइन प्रजातंत्र का सभापति हो गया, और फ़रवरी १८०३ मे हेलवेटिक पंचायत का सरपंच बनना भी उसने स्वीकार कर लिया। जर्मनी मे उसने धार्मिक जागीरों को धार्मिक बन्धनों से मुक्त कर दिया। इस प्रकार फ्रांस मे जो बिशप लोगों को जागीरों से हाथ धोना पड़ा था, उसने उनकी हानि की कुछ पूर्त्ति करना चाहा।

शान्ति-स्थापना के थोड़े ही दिनो बाद यह प्रत्यक्ष हो गया कि फ्रांस यूरोप भर मे किसी न किसी रूप में अपना शासन जमाना चाहता था। बोनापार्ट ने सन् डोमिंगों के नीग्रों को दबाने की भी चेष्टा की। इन बातों से इँग्लैण्ड तुरन्त सतर्क हो गया। उसने फ्रांस की इस साम्राज्य-बर्द्धन की नीति को सर्वथा अनुचित समझा इसलिए उसने, यद्यपि एमीन की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये थे परन्तु मालटा से अपनी फ़ौजें न हटाई

और फ़्रांस एवं डच लोगों के बहुत से व्यापारी जहाज़ों को पकड़ लिया। बोनापार्ट कब चूकनेवाला था, उसने फ़्रेंच-बन्दरगाहों मे ब्रिटिश-माल का आना बन्द कर दिया। इँग्लैंड के बादशाह जार्ज (तृतीय) की जर्मनी मे कुछ पैतृक ज़मीन थी, बोनापार्ट ने उस पर हमला कर दिया। यद्यपि अभी तक दोनो ने युद्ध की घोषणा नहीं की, तथापि वास्तव मे युद्ध का श्रीगणेश पुनः हो गया।

दुर्भाग्य-वश बोनापार्ट को एक ऐसा कृत्य करना पड़ा जिससे फिर यूरोप मे उसके विरुद्ध आग भड़क उठी और उसके शत्रुओं ने बोनापार्ट को नीचा दिखाने के लिए एक संघ स्थापित किया। राजतंत्रवादी बिलकुल चुप नहीं हो गये थे। जार्ज कडोडल, पिचेग्रू, मारो आदि कई राजतंत्र-वादियों ने प्रथम संरक्षक को मार डालने के लिए एक षड्यंत्र रचा। पुलिस ने उसका भण्डाफोड़ कर दिया। पिचेग्रू ने आत्म-हत्या कर ली, मोरो यूनाइटेड स्टेट्स को भाग गये और शेष क़ानून के अनुसार मार डाले गये। किन्तु बोनापार्ट को इससे संतोष न हुआ। उसने बेडन की ग्राण्ड डची से राजतंत्र-वादियों के उम्मेदवार को पकड़ बुलाया। उस राजकुमार को १८०४ की २१ मार्च को गोली से मरवा दिया। इससे प्रूशिया फ़्रांस के साथ युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो गया।

साथ ही बोनापार्ट ने सोचा कि यदि मैं अपने आपको फ़्रांस का शाहनशाह घोषित कर दूँ, तो शायद राजतंत्र-वादियों

का उपद्रव कम हो जाय और मेरी जान भी ख़तरे से बच जाय। इसलिए बोनापार्ट प्रथम नेपोलियन के नाम से फ़्रांस का सम्राट् बना दिया गया। साधारणतः लोग कह सकते हैं कि राजतत्रवादियों के विद्रोह के कारण बोनापार्ट को सम्राट् का पद स्वीकार करना पड़ा और उसी के कारण फ़्रांस को पुनः युद्ध-क्षेत्र मे उतरना पड़ा। किन्तु ऐसा कहना भूल होगी, क्योंकि वास्तव मे फ़्रांस की तात्कालिक परिस्थिति और बोनापार्ट का स्वभाव ही भावी युद्ध के लिए उत्तराधिकारो ठहराये जा सकते हैं। राजतंत्रवादियो का विद्रोह केवल निमित्त-मात्र था।

५

प्रथम साम्राज्य

(१८ मई १८०४ से ६ अप्रेल १८१४)

बोनापार्ट ने बल-पूर्वक फ़्रांस के सम्राट् नेपोलियन (प्रथम) का पद ग्रहण कर लिया हो, सो बात नहीं थी। जिस उत्साहित जनता ने उसको फ़्रांस का प्रथम संरक्षक बनाया था, उसी ने उसको सम्राट् का भी पद दिया था। राजतंत्रवादी समझते थे कि वे बोनापार्ट का ख़ून करके लुई के प्राचीन घराने को पुनः फ़्रांस के सिंहासन पर बैठा सकेंगे, किन्तु फ़्रांस को प्राचीन राजवंश से कितनी चिढ़ हो गई थी, यह एक इसी बात से प्रकट होता है कि उसने बोनापार्ट को केवल संरक्षक नहीं वरन् सम्राट् तक का पद देना स्वीकार कर लिया। यह भी एक बड़ी विचित्र घटना हुई। सरकारी काग़ज़ातों और सिक्कों पर लिखा हुआ था—फ़्रेंच प्रजातंत्र, प्रथम नेपोलियन, सम्राट्। एक ओर प्रजातंत्र और दूसरी ओर राजतंत्र। कैसा विलक्षण विरोध था। किन्तु वास्तव में फ़्रांस का मस्तिष्क उस समय अस्थिर था, वह राजतंत्र का पक्षपाती न होते हुए भी राजतंत्र को स्वीकार कर रहा था। वास्तव में प्रजातंत्र की रक्षा के लिए उन्होंने बोनापार्ट को सम्राट् बनाया था। बोनापार्ट सच पूछा जाय तो पहले ही

से फ्रांस का सम्राट् था। तृतीय व्यवस्थापत्र केवल ढकोसला-मात्र था। इसलिए बोनापार्ट को सम्राट् बनाने से उसमे कोई विशेष परिवर्तन नहो हुआ, केवल नेपोलियन और भी स्वच्छन्द हो गया। १८ मई १८०४ को सीनेट की बैठक हुई। उसमे सीनेट के सदस्यों की संख्या अनियमित कर दी गई, सम्राट् जितने चाहे उतने सदस्य सीनेट के लिए निर्वाचित कर लें। व्यवस्थापक और जन समूह-समितियों के सभापति का निर्वाचन भी सम्राट् को सौंप दिया गया। इनका समय और इनके सदस्यों का वेतन बढ़ा दिया गया। सीनेट के ऊपर व्यवस्था की सुरक्षा का भार सौंपा गया, सम्राट् के अधिकारों मे हस्तक्षेप हो, अमीर-उमराओ के विशेषाधिकारों के पुनरुत्थान की चेष्टा हो, अथवा राष्ट्रीय-कोष की सम्पत्ति के स्वामियों के साथ कोई लड़ाई-झगड़ा हो, तो इनको निपटाना सीनेट का प्रथम कर्त्तव्य था। किन्तु इन बातों मे भी सम्राट् का निर्णय अन्तिम निर्णय था।

प्रजातत्र का जन्म सामाजिक समता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तशासन के लिए हुआ था। किन्तु इस समय केवल सामाजिक समता की ओर तो बेशक लोगों का थोड़ा-बहुत ध्यान रह गया था। राष्ट्र-प्रबन्ध के सम्बन्ध मे स्वयं नेपोलियन ने कहा था—राष्ट्र की अन्तरंग नीति मे अथवा पर-राष्ट्र नीति में व्यवस्थापक-सभाओं का हस्तक्षेप सर्वथा अनपेक्षित है। १७८९ मे लोगों का विचार था कि हमारी प्रतिनिधि-सभाओ

द्वारा राष्ट्र का संचालन हो। उस समय कार्य-समितियों का कोई मूल्य नहीं था किन्तु १८०४ मे वही सर्वप्रधान हो गई थी। १५ वर्ष पहले लोगो का ध्यान नागरिकों के अधिकारो का निर्णय करना था, किन्तु अब व्यवस्थापक-सभाओं का काम बादशाह और बादशाह के परिवार तथा अन्य अमीर-उमराओ और सैनिक अफ़सरों को जागीरें लगाना रह गया था। १८०८ मे तो अमीर-उमराओं के एक नवीन दल की सृष्टि हो गई थी।

एक बार लोगों ने राजतंत्र का नाम लेना स्वीकार कर लिया, फिर उसके साथ उसकी अनिवार्य बुराइयो का प्रकट होना अवश्यम्भावी हो गया था। अन्तर केवल इतना था कि सम्राट् की चमक-दमक मे उनको वे बुराइयाँ दिखाई न देती थी। उदाहरण के लिए १८०७ मे जन-समूह-समिति का अन्त हो गया और उसका काम सम्राट् द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापक-सभा के कुछ कमिश्नरों को सौंप दिया गया। १८०७ मे यह नियम भी बना दिया गया कि पाँच वर्ष काम करने के बाद जजों की नियुक्ति स्थायी कर दी जाय, उनके बार बार चुनाव की आवश्यकता नहीं। धीरे-धीरे व्यवस्था-पत्र के नियमों की अवहेलना होने लगी। सम्राट् का वचन ही फ्रांस का क़ानून बन गया। व्यवास्थापक-सभा के सदस्यों का नवीन निर्वाचन भी स्थगित कर दिया गया, यहाँ तक कि कभी-कभी व्यवस्थापक-सभा के अधिवेशन के बिना ही नवीन कर लगा

दिया जाता था, या अनिवार्य सैनिक भरती का नियम लागू कर दिया जाता था। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी काफ़ी ह्रास हो गया था। १८०७ मे सरकारी कैदख़ाने खोले गये। ये बेस्टाइल के संशोधित संस्करण-मात्र थे, इनमे राज-कर्मचारियों की आज्ञा से ही मनुष्य बिना किसी मुक़दमे के महीनों सड़ा करते थे।

संक्षेप मे, एक एक करके राज्य-क्रान्ति के सभी सिद्धान्तों का गला घोंट दिया गया। राज्य-क्रान्ति के नाम से फ़्रांस मे मूर्त्तिमान् नेपोलियन शेष रह गया। रोडीरर ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता से इस अवस्था का परिणाम बहुत दिन पहले बता दिया था। वर्तमान शासन-प्रबन्ध नेपोलियन के बिना एक घड़ी भी नही चल सकता। नेपोलियन ही क्यों, जब तक नेपोलियन मे शक्ति है तब तक एक स्वेच्छाचारी की भाँति इसको वह चाहे जिस तरह चला ले, किन्तु उसकी शक्ति का ह्रास होते ही वह एक-दम छिन्न-भिन्न हो जायगा। सीनेट अभी नेपोलियन के आगे सिर झुकाती है और उसकी चापलूसी करती है, उसके सहारे नेपोलियन ने समस्त शासन-व्यवस्था को निर्जीव कर दिया है, एक दिन आयगा जब यही सीनेट नेपोलियन से बदला लिये बिना न रहेगी।

दस वर्ष के बाद रोडीरर की भविष्यद् वाणी अक्षरशः ठीक उतरी। १८१३ मे जब नेपोलियन ने अपने पतन के समय सावेग व्यवस्थापक-सभा से कहा—वास्तव मे यह व्यवस्थापक-सभा

देश के भाग्य की विधाता है। तुम लोगों को, देश के निर्वाचित व्यवस्थापको को देश की दशा सुधारने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। तब व्यवस्थापकगण उसके मुँह की ओर ताकने लगे, उसने बहुत पहले उनके प्राण हर लिये थे और १८१४ मे उसकी लाड़िली और आज्ञाकारिणी सीनेट ने तुरन्त उसका साथ छोड़ दिया।

किन्तु नेपोलियन के पतन का क़िस्सा जानने के पहले उसके अभ्युदय का वृत्तान्त अधिक रोचक होगा। सम्राट् पद पाने पर दिसम्बर १८०४ को उसने बड़े ठाट बाट से अपना राज्यतिलकोत्सव मनाया। स्वयं सातवें पियस नामी पोप उसको ताज पहनाने के लिए पेरिस आये। किन्तु इस धूम-धाम मे नेपोलियन अपने उत्तरदायित्व को क्षण भर के लिए नहीं भूला। उसने अपनी देख-रेख मे १८०४ मे फ़्रांस के लिए एक सार्वदेशिक ग़ैर-सैनिक क़ानून-ग्रन्थ बनाया, १८०६ में माल-संबंधी, १८०७ मे दीवानी, १८०८ मे फ़ौजदारी और १८१० मे जुर्मसंबंधी एक-समान क़ानून समस्त फ़्रांस मे प्रचलित हो गये।

चारों ओर सड़कें और नहरें बनवाई गईं। चेरबोर्ग और एन्टवर्प बन्दरगाहो को सुधार दिया गया। पेरिस एवं अन्य प्रसिद्ध नगरो मे कई एक भव्य भवन बनवाये गये। लोगों को रेशम बनाने तथा सूत कातने और बुनने, बीटरूट से शकर निकालने तथा इस प्रकार की अन्य कलाओं के लिए प्रोत्सा-

हन दिया गया। फ़्रांस की विजयी सेनाओं के साथ साथ यूरोपीय बाजारों मे भो फ़्रांस के व्यापार की ख्याति फैल चली।

नेपोलियन ने इटली का राजा बनना भी स्वीकार कर लिया। इससे नेपोलियन ने सोचा था कि इटली मे एकता का सूत्रपात होगा, साथ ही यदि मौक़ा हुआ तो उसे आस्ट्रिया पर आक्रमण करने मे सहायता मिलेगी। किन्तु यह नेपोलियन की पहली भूल थी। एक तो इटलीवाले एक विदेशी को राजा बनाने से प्रसन्न नहीं हो सकते थे, दूसरे यूरोपीय बादशाह नेपोलियन की साम्राज्य-लिप्सा देखकर घबरा उठे। इधर नेपोलियन इँग्लैंड पर आक्रमण करने की तैयारी मे था, किन्तु एडमिरेल केलडर ने फ़्रांस के भूमध्यसागर के जहाज़ी बेड़े को इँग्लिश चेनेल (खाड़ी) मे पहुँचने से रोक दिया। उधर इँग्लैंड, रूस, स्वीडेन, आस्ट्रिया और नेपेल्स (इटली) ने फ़्रांस के विरुद्ध रण-घोषणा कर दी। तीन स्थानों से उन्होने फ़्रांस पर हमला करना चाहा—हनोवर, लोमबार्डी, और दक्षिणीय इटली। आस्ट्रियन-जनरल मेक ८०,००० हज़ार सेना लेकर आगे बढ़ा, इसके पीछे सहायतार्थ रूसी फ़ौज मौजूद थी। किन्तु नेपोलियन सैन्य-संचालन मे एक ही था। वह मेक को एक किनारे छोड़कर शत्रु और वियना के बीचों-बीच जा पहुँचा। उसने मेक को लगातार तीन स्थानों पर हराया, अन्त में मेक को उल्म के क़िले मे शरण लेनी पड़ी। १९ अक्टूबर १८०५ को मेक ने अपनी सेना-सहित समर्पण कर

दिया। नेपोलियन की यह असाधारण विजय थी, किन्तु दो दिन बाद उसको समाचार मिला कि नेल्सन ने ट्रैफेलगर पर फ़रासीसी जहाज़ी बेड़े को तहस-नहस कर दिया है। इससे नेपोलियन की विजय का मज़ा अवश्य किरकिरा हो गया, किन्तु वह हताश होनेवाला नहीं था। वह सीधा वियना पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि वह दोनों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ है। एक ओर आस्ट्रिया और रूस के बादशाह अपनी सेनाओ सहित मोरोविया पर डटे हुए थे, दूसरी ओर आर्च ड्यूक चार्ल्स इटली से बराबर आगे बढ़ता आ रहा था। पहले उसने बादशाहो पर धावा किया और २ दिसम्बर १८०५ को उनको ओस्टरलिज के प्रसिद्ध क्षेत्र पर हरा दिया। आस्ट्रिया ने डर के मारे संधि के लिए प्रार्थना की। संधि हुई किन्तु आस्ट्रिया को उसके लिए अत्यधिक मूल्य देना पड़ा। उसने वेनिस, इस्ट्रिया और डलमेटिया इटली की बादशाहत के लिए दे दिये। टीबोल और आस्ट्रियन सुआविया से भी उसको हाथ धोना पड़ा। होली रोमन-साम्राज्य का अन्त हो गया और उसके स्थान पर रीनिश-संघ की स्थापना हुई। आस्ट्रिया और प्रुशिया ने इस बात को स्वीकार कर लिया। किन्तु जब नेपोलियन ने अपनी शक्ति-प्रियता के कारण इस नवीन संघ का संरक्षक होना स्वीकार कर लिया, तब जर्मन अपने राष्ट्रीय भावों के इस भयंकर पतन को न सह सके, मन ही मन कुण्ठित हो गये। किन्तु वे इस समय फ़्रांस से

आस्टलिज के प्रसिद्ध युद्ध का एक दृश्य।—पृ० २१२

छेड़खानी नहीं करना चाहते थे। उन्होंने हेनोवर ले लिया और उसके बदले फ़्रांस को क्लीव्स, बेसल और न्यूचेटिल प्रान्त दे दिये। संधि सब प्रकार से नेपोलियन के पक्ष में हुई।

नेपोलियन की कल्पना पहले ही आकाश मे पुल बाँधा करती थी। इस विजय से उसे कोई नवीन उत्तेजना नहीं मिली। हाँ, इस बृहत् साम्राज्य के सँभालने के लिए उसने इसको अपने सगे-सम्बन्धियों और सहकारी सेनाध्यक्षों मे बाँट देना उचित समझा। जोज़ेफ बोनापार्ट नेपेल्स का बादशाह बनाया गया और लुई बोनापार्ट हालैण्ड का। इटली और जर्मनी मे सैकड़ों अमीर-उमराओं को जागीरें लगाई गई। नेपोलियन का यह नियम ही था कि वह विजय के बाद अपने सैनिकों मे यथेष्ट धन और मान का वितरण किया करता था। इस बार उसने चाहा कि अब तक लोगो को जो उपाधियाँ दी गई हैं वे पैतृक कर दो जायँ। अभी तक फ़्रांस के सैनिक फ़्रांस के गौरव के लिए सदैव जान लड़ाने के लिए प्रस्तुत रहते थे, किन्तु इस प्रकार की विषय-लिप्सा फैलाकर नेपोलियन ने उनको भीरु बना दिया, साथ ही यूरोपवासी अपनी मातृभूमि का ऐसा भीषण दुरुपयोग देखकर मन ही मन बड़े क्रोधित हुए।

इँग्लैंड और रूस ने अभी फ़्रांस के साथ संधि नहीं की थी। प्रुशिया का व्यवहार भो संशयात्मक था। नेपोलियन राजनैतिक परिस्थिति को भली भाँति समझता था। उसने प्रुशिया

की युद्ध-घोषणा की बाट न देखी, तुरन्त प्रुशियन फ़ौजों पर आक्रमण कर दिया। एक महीने के भीतर जर्मन-सेनाएँ परास्त हो गईं। प्रिंस होहनलोह और ब्लूचर ने प्रेजल्यू और लूबेक में आत्म-समर्पण कर दिया। नेपोलियन ने शान के साथ बर्लिन में प्रवेश किया।

इँग्लैंड नेपोलियन की आँखों में सबसे अधिक खटकता था। वह जानता था कि इँग्लैंड को समुद्रीय युद्ध मे हराना अत्यन्त कठिन है इसलिए उसने दूसरी युक्ति निकाली। इँग्लैंड के व्यापार को नष्ट कर देना ही इँग्लैंड को हराना है। बाल्टिक समुद्र से लेकर एडिरिएटिक समुद्र पर्यन्त सभी बन्दरगाह उसके हाथ मे आ गये थे। उसने २१ नवम्बर १८०६ को बर्लिन से यह आज्ञा निकाली कि किसी बन्दरगाह मे ब्रिटिश माल न उतारा जाय और जितने ब्रिटिश नागरिक मिलें, वे क़ैद कर लिये जायँ। इसके पहले इँग्लैंड ने भी अपने श्रेष्ट और हेमवर्ग बन्दरगाहों में विदेशी जहाजों का उतरना बन्द कर दिया था। किन्तु इस प्रकार किसी देश का व्यापार नष्ट करना हँसी-खेल नहीं है। जब तक यूरोप मे इँग्लैंड के लिए एक भी द्वार खुला हुआ था, तब तक यूरोप के बाज़ारों मे ब्रिटिश-माल की खपत हुआ करती थी। रूस के ज़ार अब भी नेपोलियन के विरोधी थे। उन्होंने नेपोलियन की आज्ञा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। नेपोलियन ने अबकी बार रूस पर धावा बोल दिया,

किन्तु वास्तव मे उसे जितनी इच्छा रूस को हराने की नहीं थी, उतनी रूस के रूप में इँग्लैंड को हराने की थी।

किन्तु नेपोलियन ज्यों-ज्यों फ़्रांस से दूर होता जाता था, त्यों-त्यों उसकी स्थिति डाँवाडोल होती जाती थी। नेपोलियन भी यह जानता था कि उसकी स्थिति अच्छी नही है। उसने अपने शत्रुओं को नीचा अवश्य दिखाया था, उन्होंने नेपोलियन से संधि भी कर ली थी। किन्तु किसी समय उसके विरुद्ध आग भड़क सकती थी। इसलिए इस आक्रमण मे वह उतना उत्साह और तत्परता न दिखा सका, जितना कि उसने अपने पहले आक्रमणों मे दिखाया था। उदाहरण के लिए १८०६ में जब वह वारसा मे ठहरा हुआ था, उसने आस्ट्रिया के साथ शान्तिभंग के डर से पोलों को आस्ट्रिया के विरुद्ध उभाड़ने से हाथ सिकोड़ा। रूसियों के साथ यों एक जगह मुठभेड़ हुई, किन्तु उसने जाड़े में आगे बढ़ना उचित न समझा, वह विसचुला मे ठहरा रहा। इधर रूसी लोग यह सोच रहे थे कि यदि वे नेपोलियन पर धोके मे हमला कर सकें, तो बड़ा अच्छा हो, किन्तु फरवरी १८०७ की यूलो के युद्ध मे उनको अपनी भूल मालूम हो गई। नेपोलियन ने उनको हरा दिया और डेन्टज़िग के क़िले को अपने अधिकार मे कर लिया। गर्मी मे नेपोलियन ने अपनी सेना को पुनः संगठित कर लिया और १४ जून १८०७ को फ्रीडलेंड मे रूसियों को हराकर उनको बड़ी दूर तक खदेड़

दिया, साथ ही कीजीगूसवर्ग भी जहाँ प्रुशियन अब भी डटे हुए थे, नेपोलियन के हाथ लग गया। ऐसा मालूम होता था कि नेपोलियन हारना जानता ही नहीं। जहाँ जाता है, वहीं विजय पाता है। चाहे उसके मित्र हों और चाहे शत्रु, सभी उसकी विलक्षण प्रतिभा पर मुग्ध हो जाते थे। ज़ार की भी यही दशा हुई। इसके अतिरिक्त वह इँग्लैंड की कूटनीतिज्ञता पर रुष्ट हो रहा था कि वह स्वयं तो युद्ध करता नहीं और दूसरों को लड़ाई के लिए उभाड़ता है। टिलसिट मे दोनों बादशाहो ने भेंट की। सुतरां ८ जुलाई १८०७ को दोनों मे सन्धि हो गई। किन्तु संधि तो हुई फ़्रांस और रूस मे और दुर्दशा हुई प्रुशिया की। अपने पूर्वीय प्रान्तों को छोड़ कर उसके पास कुछ भी नहीं बचा। एल्ब और राईन के बीच के प्रदेश में एक नया राज्य वेस्ट फेलिया के नाम से स्थापित किया गया और जेरोन बोनापार्ट उसका बादशाह बनाया गया। सेक्सोनी और वेस्टफेलिया दोनों रीनिश संघ के सदस्य हो गये। नेपोलियन ने ज़ार को फिनलेंड टापुओ पर अधिकार जमाने और अपनी इच्छानुसार ओटोमन साम्राज्य के प्रान्तों को छीन लेने की स्वतंत्रता दे दी। नेपोलियन ने फ़्रांस के लिए केवल आईनियन टापू और केटरो नदी का मुहाना लिया।

पहली दृष्टि से यही मालूम होता है कि १८०७ मे नेपो-लियन का प्रभुत्व अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। सारे यूरोप में उसकी धाक थी। इससे बढ़कर मनुष्य चाह ही क्या

सकता है? किन्तु वास्तव मे सहस्रो प्राणियों की आहुति देकर नेपोलियन ने जो विशाल भवन तैयार किया था, उसकी नीव बहुत कमज़ोर थी। फ्रेंच-साम्राज्य के अन्तर्गत जितने राज्य थे उनमे स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति नहीं थी। आँधी मे जिस तरह मामूली सूत से बँधी हुई पतंग नहीं ठहर सकती है, उसी प्रकार विदेशो मे नेपोलियन ने अपने जिन सम्बन्धियो को तख़्त पर बैठा दिया था, वे यदि नेपोलियन न होता, तो पद-दलित जातियों की क्रोधाग्नि मे भस्म हो जाते। प्रुशिया की तो नस नस मे फ्रांस का विद्वेष घर कर गया था, वहाँ से पुनः विद्रोह की ज्वाला भड़की।

इतना बढ़कर भी नेपोलियन का पतन क्यो हुआ, यदि यह पूछा जाय तो उत्तर मिलेगा कि इस समय नेपोलियन को अपनी बात का साधारण से साधारण खण्डन अथवा अपने विरुद्ध विद्रोह की ख़बर तक सह्य नहीं थी। इतना विशाल साम्राज्य और ऐसा विचित्र स्वभाव! अब केवल इंग्लैंड फ्रांस के विरुद्ध युद्ध-क्षेत्र मे रह गया था। उसने कोपेनहेगन पर समुद्र से गोलाबारी की। इससे डेनमार्क और आस्ट्रिया जल उठे। उन्होंने नेपोलियन की बन्दरगाहो को बन्द करने की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। किन्तु इसी बीच मे नेपोलियन के भाग्य ने पलटा खाया। स्पेन १७९५ से फ्रांस का मित्र रहा था, किन्तु वहाँ के बोरबों राजा नेपोलियन से अधिक सहानुभूति नहीं रखते थे। युद्ध के समय वे रूस से मिलने की

बात सोच रहे थे। नेपोलियन कूट-नीति मे भो दक्ष था। उसने स्पेन को यह प्रलोभन दिया कि मैं तुम्हें पुर्तगाल को जीतने मे सहायता दूँगा। पुर्तगाल मे इँग्लैंड का अब भी थोड़ा-बहुत प्रभाव बाक़ी था। इस प्रकार नेपोलियन एक ही पत्थर से दो चिड़ियाँ मारना चाहता था। बिना एक बूँद रक्त गिराये उसने पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन को भी जीत लिया। किन्तु ठीक इसी समय पोप अँगरेज़ों के माल के लिए अपनी रियासतों के बन्दरगाह बन्द करने को तैयार न हुए, साथही उन्होंने जोज़ेफ बोनापार्ट को नेपेल्स का बादशाह भो स्वीकार न किया। नेपोलियन ने तुरन्त २ अप्रेल १८०८ को रोम पर अधिकार जमा लिया और पोप की रियासतो को फ्रांस के साम्राज्य मे मिला लिया।

बस, यही नेपोलियन से बड़ी भारी भूल हुई। समस्त केथोलिक धर्म्मावलम्बी नेपोलियन से कुढ़ गये। स्पेन मे तो उस समय धार्मिक कट्टरता का बड़ा प्रभाव था, उसका फ्रांस से वैमनस्य हो गया। किन्तु इतने ही से नेपोलियन ने विश्राम नहीं लिया। स्पेन का बादशाह चतुर्थ चार्ल्स बहुत बुड्ढा और रोगी था। नेपोलियन ने सोचा कि बोरबो-वंश का नाम ही यूरोप से उठा देना सबसे अच्छा होगा। यद्यपि इसके पहले वह इसी वंश के फरडीनेंड को स्पेन की गद्दी पर बैठाने का वचन दे चुका था किन्तु अब स्थिति बदल गई। उसने अपने भाई जोज़ेफ बोनापार्ट की जगह पर मूरट को

नेपेल्स का बादशाह बनाया और जोज़ेफ बोनापार्ट को स्पेन के सिंहासन पर बैठाया। किन्तु इधर राज्य-तिलक का समारोह हो रहा था, उधर केथेलिक पादरी विद्रोह की तैयारी कर रहे थे। थोड़े ही दिनों मे विद्रोह की आग देश भर मे फैल गई। कई जगह फ्रेंच सेनाओं को पराजित होना पड़ा और अन्त मे २१ जुलाई को बेलिन पर उन्होने आत्म-समर्पण कर दिया।

नेपोलियन ने तुरन्त जर्मनी से कुछ सेना मँगाकर स्पेन पर धावा किया और नवम्बर १८०८ मे विद्रोहियों के बरगस, इसपिनोसा और टूडेला मे हराकर पुनः अपने भाई को स्पेन की राजधानी मेडरिड मे प्रतिष्ठित कर दिया। किन्तु नेपोलियन को शत्रुओं से दम मारने की फ़ुरसत नहीं मिलती थी। स्पेन की विजय स्थिर नहीं हुई थी कि नेपोलियन को व्यग्र देखकर आस्ट्रिया ने पुनः युद्ध की घोषणा कर दी। अँगरेज़ों ने उसको बहुत सा सोना दिला दिया था, उसको यह भी विश्वास था कि मेरे साथ ही साथ जर्मनी और इटली मे विद्रोह फैलेगा। नेपोलियन तुरन्त उधर दौड़ा गया। अपने दोनों सुयोग्य जनरलों मेसीना और डेवोस्ट की सेनाओ को मिलाकर उसने आर्च ड्यूक चार्ल्स को एवेन्सवर्ग और एकमुल के मैदान मे २०,२२ अप्रेल सन् १८०९ को बुरी तरह से हराया और फ़्रांस की विजय-पताका फहराता हुआ वियना मे जा डटा। नेपोलियन ने डेन्यूब पार कर इस्लिङ्ग पर पुनः

आस्ट्रेलियनों को हराने की चेष्टा की। उसने इटली से भी अपनी सेना बुलवाई और ६ जुलाई को वेगरम का युद्ध जीता। तीसरी बार आस्ट्रिया का पूर्णरूप से पराजय हुआ। अन्त मे १४ अक्टूबर को वियना की संधि हो गई। इलीरिया फ़्रेंच-साम्राज्य मे मिला लिया गया और बेवेरिया, सेक्सोनी और रूस को भी आस्ट्रियन-साम्राज्य के कुछ अंश मिले।

यद्यपि विजय-श्री बराबर नेपोलियन का साथ दे रही थी, तथापि यूरोपीय जनता नेपोलियन से सन्तुष्ट न थी। ज्योंही उसने स्पेन छोड़ा, त्योंही विद्रोहियों ने फिर सिर उठाया। फ़्रेंच-जनरल सोल्ट स्पेन मे शान्ति-स्थापना मे असमर्थ रहे, वे तो गेलीसिया मे हार ही गये, बादशाह जोज़ेफ भी २७ जुलाई १८०९ को टेलावेरा मे हारते-हारते बचे। इन लोगों को ही नही, स्वयं नेपोलियन को शत्रुओं को दबाने मे कठिनाई हो रही थी। असली बात यह थी कि इस समय अधिकतर या तो उसकी सेना मे अनुभव-शून्य बच्चे थे अथवा ऊपर से मित्र और भीतर से शत्रु राजाओं की पल्टनें थीं। १५ वर्ष पहले नेपोलियन की अध्यक्षता मे जो फ़रासीसी सिपाही हँसते हँसते प्राण गँवा देते थे, उसका कारण ही कुछ और था। वास्तव मे ज्यों-ज्यों फ़्रेंच-सेना मे उदासीनता और फूट फैलती जा रही थी, त्यों-त्यों उसके विपक्षियो का उत्साह बढ़ता जाता था। नेपोलियन को पूर्वीय रण-क्षेत्र से छुट्टी नहीं मिली थी कि अँगरेज़ों ने उत्तरी

सीमा पर हमला किया और १५ अप्रैल को फ्लशंग पर आधिपत्य कर लिया। किन्तु नेपोलियन अपशकुनों से घबरानेवाला नहीं था। उसने अपनी कल्पना का एक अद्भुत परिचय दिया। अपने भाइयों को तो वह यूरोपीय सिंहासनों पर बैठा ही चुका था, इस बार उसने आस्ट्रिया की राजकुमारी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। १ जनवरी १८१० को उसने आर्च डचेज़ मेरी लांजी का पाणिग्रहण किया और २० मार्च १८११ को उसके इस संबंध से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्ति के अतिरिक्त नेपोलियन को इस विवाह से और कोई लाभ हुआ या नहीं, इसका उत्तर अधिकतर नकारात्मक ही निकलता है क्योंकि आस्ट्रियनों ने कभी नेपोलियन के प्रति सदिच्छा नहीं प्रकट की, वे हमेशा उस पर आक्रमण करने की ही सोचते रहे।

बार बार नेपोलियन का ध्यान इँग्लैंड की ओर जाता था। जल-मार्ग से वह इँग्लैंड पर हमला नहीं कर सकता था। इसलिए वह ब्रिटिश-माल के विरुद्ध यूरोपीय बन्दरगाहों को बन्द करने पर अधिक ज़ोर देता था। किन्तु इस उद्योग में नेपोलियन कभी सफल नहीं हुआ और यही उसके पतन का हेतु हुआ। १८१० मे लुई बोनापर्ट ने स्वेच्छा से हालेंड की गद्दी छोड़ दी। नेपोलियन ने बन्दरगाहों पर कड़ा पहरा बैठाने के उद्देश से एक एक करके हालैंड, ब्रेमेन, हेमबर्ग और ल्यूबेक फ्रांस-साम्राज्य में मिला लिये। किन्तु ऐलेक-

जेंडर ज़ार अब भी बालटिक समुद्र के बन्दरगाहो की देख-रेख मे शिथिलता दिखलाता था, क्योंकि वह नेपोलियन के साम्राज्य-विस्तार से घबरा रहा था। उसने नेपोलियन की घोषणा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। १८१२ मे उसने तुर्कों के साथ संधि कर ली। स्वीडेन का बादशाह भी यद्यपि उसका आदि-वंश भी फ्रासीसी था, नेपोलियन से मोर्चा लेने के लिए उतावला हो रहा था, वह भी ज़ार से जा मिला। रूस ने पुनः युद्ध-घोषणा कर दी। नेपोलियन तुरन्त ६,००,००० सेना लेकर रूस की ओर चल पड़ा। इस समय उसकी सेना के तिहाई सैनिक परदेशी थे। २५ जून १२ को नीमेन पार करके नेपोलियन ज़ार के राज्य मे घुसा किन्तु ज़ार की सेना ने उससे मोर्चा नहीं लिया, वह अधिकाधिक ठंडे और बर्फ़ीले मैदानों की ओर भाग रही थी। अन्त मे उसने ७ सितम्बर को बोरोडिनो के मैदान मे पकड़ पाया। रूसियों की हार तो अवश्य हुई, किन्तु फ्रेंच-सेना को भी बड़ी हानि उठानी पड़ी। इसलिए उतनी थोड़ी सेना से उसने रूसी सेना का पीछा करना उचित न समझा। वह लौट पड़ा। १५ सितम्बर को वह मोस्को पहुँचा, किन्तु वहाँ के जनरल ने पहले ही से शहर मे आग लगा दी थी। तो भी नेपोलियन इस आशा से कि शायद रूसी लोग संधि कर लें, एक मास तक वहीं पड़ा रहा। किन्तु इतने ही मे कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगा, १८ अक्टूबर को हताश होकर उसने लौटना शुरू किया। इस समय उसकी

सेना में केवल ८०,००० आदमी रह गये थे। किन्तु मार्ग में इनको पाला और बरफ़, रोग और दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा। जब वे पुनः नीमेन के पास दिसम्बर में पहुँचे तो केवल २०,००० आदमी रह गये। ऐसे संकट के समय रूसियों ने कई बार छेड़खानी की। किन्तु क्रासनो, बेरेसिना, विल्ना आदि स्थानों से उनको मुँह की खाकर लौटना पड़ा। नेपोलियन का साहस और युद्ध-कौशल अद्वितीय था, इसमें संदेह नहीं, किन्तु इस बार वह रूसी सैनिकों की दृढ़ता और रूसी जल-वायु की प्रबलता से तंग आ गया।

जब नेपोलियन पेरिस में लौटा, तो वहाँ भी उसको अमंगल की सूचनायें मिलीं। वेलिंगडन ने फ्रेंच-सेनाओं को प्रेनीज़ पहाड़ों तक खदेड़ दिया था। जोज़ेफ बादशाह भी विटोरिया में हार चुका था, यहाँ तक कि फ्रेंच सीमा पर हमला होने ही वाला था। किन्तु नेपोलियन ने इस ओर आँख उठा कर भी न देखा। उसका सारा ध्यान रूस की ओर लगा हुआ था और वास्तव में लगना भी चाहिए था। क्योंकि जब युरोप में नेपोलियन के रूसी आक्रमण की दुर्दशा का हाल फैला, तो यूरोपीय सम्राटों तथा जनता में दूसरों के राष्ट्रीय भावों को पददलित करनेवाले नेपोलियन के प्रति गत बारह वर्षों से जो विद्वेषाग्नि भीतर ही भीतर प्रज्वलित हो रही थी, वह एक-दम भड़क उठी। प्रुशिया रूस से जा मिला। समस्त जर्मनी ने फ्रांस के विरुद्ध रण-घोषणा कर दी,

यहाँ तक कि आस्ट्रिया ने भी बेचारी मेरी लुई की कुछ भी परवाह न करके फ़्रांस के विरुद्ध फिर संग्राम छेड़ दिया।

नेपोलियन ने जल्दी जल्दी थोड़ी सी सेना एकत्रित की और विपक्षियों की सम्मिलित सेना को २ मई १८१३ को लूजेन के मैदान मे हराया। उसने शत्रुओं को हराया तो, किन्तु परिस्थिति दिन प्रति दिन उसके विपरीत होती जाती थी। नेपोलियन इस बात को अच्छी तरह जानता था। वह जानता था कि सारा संसार उसके हड़पने को मुँह बाये खड़ा हुआ है, उसके पीछे फ़्रांस मे हाहाकार मचा हुआ है, किन्तु उसको अपने भाग्य पर अटल विश्वास था। उसने इलीरिया और अपने जर्मन-प्रान्तों के लौटाने की शर्त पर संधि करना अस्वीकार कर दिया। २६, २७ अगस्त को ड्रेस्डेन के क्षेत्र मे उसने फिर विजय प्राप्त की, किन्तु यह उसकी अन्तिम विजय थी। उसके सिपहसालार यत्र-तत्र कई जगह हार चुके थे। अन्त मे १६ १-६ अक्टूबर को लीपज़िग के क्षेत्र से उन्हें पीछे हटना पड़ा।

इधर वेलिंगटन बराबर दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ता आता था। पूर्व मे ब्लूचर फ़्रांस पर हमला कर रहा था। नेपोलियन ने फिर एक बार फ़्रांस को उत्तेजित करना चाहा, बच्चे बच्चे से राष्ट्र की रक्षा का संदेश भेजा। किन्तु सब व्यर्थ। १७९२ का जीवन पुनः लौटकर नही आया। फ़्रांस पूर्ण रूप से थक चुका था, उसमे अपनी दुर्घटनाओं पर रोने की भी शक्ति नहीं रह गई थी। राज्य-कर्मचारियों का विचित्र हाल था। १८१२ मे

रूसी आक्रमण के समय किसी ने यह ख़बर फैला दी थी कि नेपोलियन का देहान्त हो गया। फिर क्या था, नेपोलियन की विशाल व्यवस्था और संगठन ताशों के घर की तरह गिरने की दशा को प्राप्त हो गया। बड़े बड़े जेनरलों और अफ़सरो को अपने जान और माल के बचाने की चिन्ता होने लगी। मतलब यह कि फ्रांस की शिथिलता अन्तिम सीमा पर पहुँच गई थी।

ज्यों-त्यो करके नेपोलियन फिर ६०,००० मनुष्य एकत्रित करके पूर्वीय युद्ध-क्षेत्र की ओर लपका। यहाँ पुनः उसने अपने शौर्य की पराकाष्ठा दिखाई। उसने २७,२८ जनवरी १८१४ को ब्लूचर को सेंट डेज़ियर और ब्रिन्नी के मैदानो मे हराया। लारोथेरी के मैदान से पीछे हटकर उसने १०,११,१३,१४ फ़रवरी को प्रुशियन सेनाओं को लगातार चार जगह हराया। चम्पोवर्ट, मोन्टमिरेल, चेटो-थेरी और वोचम्पूस। उसने फिर आस्ट्रि-यनो को मोरमन्ट, ननगिस और डोनेमिटी के मैदानो मे परास्त किया और एक बार पुनः ब्लूचर को सोसन और क्रोन पर हराया। किन्तु १० मार्च को लोन के मैदान मे उसको पीछे हटना पड़ा और २०,२१ मार्च को एरिस-सर-अबे मे वह हारते-हारते बचा। इधर उसको ३१ मार्च को यह ख़बर मिली कि उसके जनरल पेरिस की लड़ाई मे हार गये हैं और शत्रुओं ने पेरिस पर अधिकार कर लिया है। वह फोन्टेन ब्लो मे जा डटा। किन्तु चारों ओर से असंख्य शत्रु-सेना से घिरे

होने पर जब उसने सुना कि उसके सबसे प्राचीन उपनायकों ने उसे छोड़ दिया है तो ५ अप्रैल को उसने सम्राट्पद छोड़ दिया।

बस, नेपोलियन का काम समाप्त हो चुका था। यद्यपि यवनिका-पतन होने मे अभी एक वर्ष बाक़ी था, किन्तु वह अन्तिम उपसंहार उसके गौरव की स्मृति और भी कटु बनाता है। इसके अतिरिक्त उसका और कोई प्रयोजन नहीं मालूम होता है। जिसका जन्म युद्ध मे हुआ था, उसका अन्त भी युद्ध मे हुआ। चाहे हम उसकी सैनिक प्रतिभा देखें और चाहे राज्यकीय, हमें उसकी प्रतिभा मे दो विलक्षण बातों का मिश्रण मालूम होता है। १ व्यावहारिक सदिच्छा, २ तर्कहीन-कल्पना। जिस प्रकार उसने शासन-संबन्धी-सुधारों के द्वारा फ्रेंच लोगो को शान्ति और अभ्युदय का मार्ग दिखाया था, वह उसकी हार्दिक सदिच्छा का फल था और जिस प्रकार उसने देश की समस्त शक्ति को थोड़े से हाथों मे संकुचित कर रखी थी, वह उसकी कल्पना का फल कहा जा सकता है। इस प्रकार फ्रांस को शत्रुओं से बचाने के लिए जो युद्ध उसने छेड़े, वे उसकी सदिच्छा के फल कहे जा सकते हैं और समस्त यूरोप को नीचा दिखाने के लिए उसने जो लड़ाइयाँ लड़ीं, वे उसकी कल्पना के फल कहे जा सकते हैं। आप इस कल्पना को नाम-लिप्सा अथवा शक्ति-लिप्सा का भी नाम दे सकते हैं। यदि वह वास्तव मे शक्ति-लिप्सा थी, तो उसका यथार्थ पुर-

स्कार उसको अपने ही जीवन मे मिल गया। किन्तु उसके जो अन्य भीषण परिणाम हुए, वे किसी प्रकार नहीं मेटे जा सकते। सारा फ्रास जर्जर और शक्तिहीन हो गया और सारे यूरोप मे उसके विरुद्ध विद्वेषाग्नि फैल गई। घर मे अव्यवस्था और बाहर शत्रु, ऐसी अवस्था मे वास्तव मे फ्रांस पहले की अपेक्षा बहुत कमज़ोर मालूम होने लगा। किन्तु इन सब बातों को देखते हुए नेपालियन की विजय-लिप्सा का प्रभाव यूरोप पर अश्रेयस्कर नही कहा जा सकता। क्योकि सारे यूरोप मे नेपोलियन ने दौरा किया और जहाँ-जहाँ उसने दौरा किया, वहाँ वहाँ शक्ति-हीन राजतंत्रों को चकना-चूर कर दिया। इस प्रकार वर्तमान समय के प्रौढ़ राष्ट्रो की नींव डाली। उसकी सेनाओ के साथ-साथ सारे यूरोप मे स्वातन्त्र्य-प्रेम, अमीर-उमराओं का मूलोच्छेदन एवं सामाजिक समता की लहर फैल गई।

कुछ भी हो, हम यह नहीं कह सकते कि फ्रांस अपने विजेता को धन्यवाद दे कि उसने अपनी असीम शक्ति के द्वारा सारे यूरोप मे कुछ समय के लिए फ्रांस का मुख उज्ज्वल कर दिया या अभिशाप दे कि उसने फ्रांस को आन्तरिक और बाह्य दुर्दशा के और भी गहरे गढ़े मे ढकेल दिया।

---

(७)

राजवंश का प्रथम पुनरुद्धार

(७ अप्रेल १८१४–२६ मार्च १८१५)

नेपोलियन के—सौ दिन (२७ मार्च १८१५ से २३ जून १८१५)

नेपोलियन के आत्म-समर्पण करने के पहले ही लोग बोरबो-वंश को पुनः फ्रास के राज्य-सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने की चर्चा करने लगे थे। नेपोलियन ने ५ अप्रेल १८१५ को सम्राट्पद छोड़ा था। किन्तु बोर्डो मे सोलहवे लुई के भाई प्रोवेंश के काऊंट ने अठारहवें लुई के नाम से अपने आपको फ्रांस का बादशाह घोषित कर दिया। पेरिस मे स्वयं सीनेट ने ३ अप्रेल को नेपोलियन को सिंहासन से उतारने का प्रस्ताव पास कर दिया और अठारहवे लुई से कुछ शर्तें कराने के लिए एक नवीन व्यवस्था-पत्र मिला, साथ ही उसने शत्रुओ से सन्धि कर ली। इस सन्धि से फ्रांस की सीमाएँ पुनः १७९२ के फ्रांस की सीमाओ के बराबर रह गईं।

लुई को सिंहासन पर आरूढ़ होने के पहले कुछ शर्तों के पालन का वचन देना अनिवार्य था। अन्यथा प्रजातंत्र और राजतंत्र में सन्धि नहीं हो सकती थी। प्रजातंत्र मे कुछ त्रुटियाँ थीं, जिनके लिए राजतंत्र से सहायता लेनी पड़ रही थी। इसलिए राजतन्त्र ने पुनः फ्रांस के राज्य-सिंहासन पर

प्रतिष्ठित होने पर यदि अधिक बुद्धिमानी से काम लिया होता—उसी व्यवस्था के अनुसार कार्य किया होता, जिसको उसने १८३० मे जाकर स्वीकार किया था—जिसको इँगलैंड १६८८ मे अंगीकृत कर चुका था, तो शायद बहुत से अनर्थ संघटित न होते। किन्तु राजतंत्रवाले प्रजातंत्र के सिद्धान्तो की जड़ ही उखाड़ फेंकना चाहते थे।

लुई यद्यपि बादशाहों के स्वर्गीय शासनाधिकार का माननेवाला था, तथापि उसको स्थिति का ज्ञान था। उसके १ जनवरी १८१४ के घोषणापत्र से यह बात मालूम हो जाती है। उसमे बतलाया गया था कि प्रबन्ध एवं न्याय-सम्बन्धी व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही किया जायगा। न तो कोई राज्य-कर्मचारी निकाला जायगा और न किसी अफ़सर का पद घटाया-बढ़ाया जायगा। माल-फ़ौजदारी-दीवानी क़ानून भी ज्यों के त्यो रखे गये थे, केवल धर्म-सम्बन्धी दो एक नियमों मे थोड़ा परिवर्तन किया था। अकारण किसी की सम्पत्ति का अपहरण नहीं किया जायगा। इस प्रकार लुई के घोषणा-पत्र मे कोई अरुचिकर बात नही थी। किन्तु राजतंत्र के भाव कैसे कूट-कूट कर भरे हुए थे, यह इसी से मालूम पड़ता था कि उसमे जनता के राजनैतिक अधिकारो का कोई उल्लेख नहीं था। लोग नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता से घबराये हुए थे, इसलिए उस समय फ्रांस के राजनैतिक जीवन मे उदार-दलवालों का प्राधान्य हो रहा था। ये

युक्तिसङ्गत सुधारों के पक्ष मे थे। लुई के मित्रो ने उसको इसी उदारदल का नेतृत्व ग्रहण करने की सलाह दी। किन्तु लुई ने इस उपदेश को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। वह कहता था कि मुझे सुधारो से प्रीति है, जनता को सुधारो के लिए मेरी हृद्-गत प्रसन्नता मे विश्वास करना चाहिए।

सीनेट मे इतनी शक्ति थी कि यदि वह चाहती तो अन्य राष्ट्रों की सहायता से लुई से उचित शर्तें करवा लेती। किन्तु वास्तव में उसको जनता की भलाई का उतना ध्यान नहीं था जितना स्वयं अपने अभ्युदय का ध्यान था। जो लोग नेपो-लियन के प्रति भीषण अकृतज्ञता प्रकट कर चुके थे, उनसे देश के हित की अधिक आशा नहीं थी। उन्होने जो व्यवस्था-पत्र तैयार किया था, वह राजनैतिक दृष्टि से बहुमूल्य अवश्य है, किन्तु वह स्वार्थ से ख़ाली नहीं था। सीनेट का निर्वाचन बादशाह-द्वारा किया जाय और व्यवस्थापक-परिषद् का चुनाव वोटों से किया जाय। वह आवश्यकता के अनुसार किया जा सके। उत्तरदायित्व-पूर्ण मत्री भी पार्लियामेट के सदस्य होगे। बादशाह का शरीर अबाध्य माना जायगा। दोनों हाउस क़ानूनों के लिए प्रस्ताव कर सकेगे किन्तु आय-व्यय-संबंधी प्रस्ताव केवल व्यवस्थापक-परिषद् ही कर सकेगी। वास्तव मे यह व्यवस्था १७८६ के व्यवस्थापत्र की प्रतिलिपि मात्र थी और नेपोलियन की व्यवस्था से कई बातों मे अच्छी थी। किन्तु जनता ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा,

क्योंकि उसमे एक धारा यह भी जोड़ी गई थी कि वर्तमान सीनेट के सभी सदस्य नई सीनेट के सदस्य बना लिये जायँ और उनकी नौकरियों मे कोई हस्तक्षेप न किया जाय। बस, इसी एक धारा ने सारा काम मिट्टी मे मिला दिया। इस पर एक समालोचक ने व्यंग से कहा था कि यह राजनैतिक व्यवस्था-पत्र नही है, आत्म-रक्षा का विधान है। लुई कट्टर राजतंत्र-वादियों से घिरा हुआ था। वह अपने स्वर्गीय शासनाधिकारों मे इस प्रकार सीनेट का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकता था। उसने उसे अस्वीकार कर दिया किन्तु उदारता-पूर्वक अपनी ओर से २ मई १८१४ को लुई ने फ्रांस और नेवारी के बादशाह के नाम से घोषणापत्र प्रकाशित किया। उसमे दिखलाया गया था कि मैं ईश्वर की कृपा से इस सिंहासन पर बैठा हूँ, न कि जनता की मर्ज़ी से। वास्तव मे राज्याधिकार भगवद्दत्त है। हॉ, राजा स्वयं अपनी इच्छा से प्रजा की भलाई के लिए कुछ सुधार कर सकता है और मैं भी सीनेट और व्यवस्थापक-परिषद् की सलाह से एक निश्चित व्यवस्था बनाने को तैयार हूँ।

अन्त मे सीनेट और व्यवस्थापक-परिषद् के कुछ सभ्यों ने एक व्यवस्था-पत्र तैयार किया, किन्तु यह कभी उक्त सभाओं मे नही उपस्थित किया गया। उसमे राष्ट्रीय कोष के स्वामियों को उनकी सम्पत्ति-रक्षा के लिए आश्वासन दिया गया था। धार्मिक स्वतंत्रता और समता की भी घोषणा की गई, किन्तु राज-धर्म रोमन-कैथोलिक बतलाया गया था। समाचार-पत्रो

को स्वतंत्रता दी गई थी किन्तु वे सुधारो के लिए आन्दोलन नहीं कर सकते थे। अनिवार्य सैनिक भरती बन्द कर दी गई थी। यदि प्राचीन अमीर-उमरा अपने पदो का उपभोग करेगे, तो नवीन अमीरो को भी वही अधिकार प्राप्त होंगे। बादशाह को आजीवन अमीर-उमराओ के बनाने का अधिकार दिया गया था। ये अमीर सीनेट के सदस्य हो सकेंगे, किन्तु कोई वेतन नहीं दिया जायगा। क़ानून और देश की रक्षा के लिए बादशाह सभी आवश्यक उपायों को काम मे ला सकेगा। व्यवस्थापक-परिषद् जनता की परिषद् होगी, किन्तु ३०० फ़्रैंक कर देनेवाले ही उसके लिए सदस्य चुन सकेंगे और १,००० फ़्रैंक कर देनेवाले उसके सदस्य हो सकेंगे। व्यवस्थापक-परिषद् के पंचमांश सदस्य प्रतिवर्ष बदल दिये जाया करेगे। राष्ट्रमंत्री व्यवस्थापक-परिषद् के प्रति उत्तरदायी रहेगे और दोनों हाउस मिलकर मंत्रियों पर अभियोग चला सकेगे।

लुई की व्यवस्था मे कई एक स्पष्ट दोष थे—इसमे संदेह नहीं—जैसे ३०० फ़्रैंक कर देनेवाले फ़्रांस में उस समय १,००,००० मनुष्यों से अधिक न होंगे, क्या इतने वोटों द्वारा निर्वाचित सभा प्रतिनिधि-सभा कहला सकती थी ! किन्तु लोग राज्य-क्रान्ति की पैशाचिकता और सम्राट् की स्वेच्छाचारिता से तंग आ गये थे। इसलिए उन्होने एक बार लुई की उदार और सरल व्यवस्था का प्रयोग करना चाहा। सुविधा के लिए लुई ने वर्तमान सीनेट के सभी सदस्यों को अपनी सीनेट

में सम्मिलित कर लिया। इसी प्रकार उसने प्राचीन व्यवस्थापक-सभा का नाम बदल कर व्यवस्थापक-परिषद् कर दिया, क्योंकि इसमें भी सदस्यों का बहुत थोड़ा परिवर्तन हुआ था। केवल थोड़े से प्रसिद्ध उदार-दलवादी जैसे वेनजेमिन कौन्स-टेन्ट, ले फेटो, कजिन आदि उसमे सम्मिलित कर लिये गये।

इस प्रकार लोग राज्य-क्रान्ति के राजनैतिक अधिकारो से हाथ धो बैठे। उनके पास केवल सामाजिक-समता-रूपी धन शेप रह गया। फ्रांस मे राज्य-क्रान्ति के कारण उच्च, नीच का भेद-भाव नही रह गया था। उच्च वर्ग के विशेषाधिकारों का लोप हो गया था। कुछ अमीर-उमरा तो लुई के साथ अथवा लुई के पतन के बाद फ्रांस छोड़ कर भाग गये थे। वे प्रजातंत्र को अपना घोर शत्रु समझते थे और कुछ अमीर-उमराओं ने चाहे जिस भाव से हो, अपने विशेषाधिकारो को तिलाञ्जलि दे दी थी। समय के प्रभाव के कारण धीरे-धीरे उनको प्रजातंत्र के सिद्धान्त रुचिकर भी मालूम होने लगे थे। नक़द रुपया देकर उन्होने पुनः छोटी-छोटी जागीरे ख़रीद ली थी। किन्तु लुई के राज्य-तिलक के साथ-साथ भागे हुए अमीरो और नवाबो ने पुनः लौटना प्रारम्भ किया। जिनको जनता २५ वर्ष से अपना शत्रु समझ रही थी, उनके साथ एक ही समाज मे रहना बहुत कठिन था, क्योंकि उनके हृदय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वे लुई से अप्रसन्न थे। वे चाहते थे कि पुनः सोलहवें लुई का ज़माना फ्रांस मे लाया

जाय। उनको जागीरे, उच्च पद, और विशेषाधिकार मिलें, पाद-रियों को पुनः जनता का गुरु माना जाय, केवल बड़े पुत्र को पिता की जागीर मिला करे और पादरियों की सहायता के बिना शादी न हुआ करे, यहाँ तक कि वे फ्रांस का वही पुरा-तन बँटवारा चाहते थे।

बस, लोगो को संदेह हो गया। लोगों की पहले ही धारणा थी कि लुई ने उदार दलवादी बनने का व्यर्थ ढोंग रचा है। उसके मंत्री ही उसकी व्यवस्था के विरोधी हो गये। फ्रांस में एक नई हलचल का जन्म हुआ। लुई के नवीन कृत्यों से विरोधी आन्दोलन और भी बढ़ने लगा। उसने जेनरल ड्यूपोन्ट को युद्ध-मंत्री बना दिया और वेलन से अधिकार उठा लिया। इतना ही नहीं, उसने कडोडल सरीखे बहुत से जेनरलों को जिन्होने राष्ट्र के साथ विश्वासघात किया था, आदर-सूचक उपाधियाँ प्रदान की। सेना और जहाज़ी बेड़े के बहुत से अफ़सरों को आधा आधा वेतन देकर नौकरी से निकाल दिया और उनके स्थान पर वे लोग नियुक्त किये गये जिन्होने युद्ध के समय कई बार फ्रांस के विरुद्ध हथियार उठाये थे। ये अत्या-चार लोगों को किस प्रकार सह्य हो सकते थे। लुई ने धार्मिक असहिष्णुता का भी यथेष्ट परिचय दिया। इसलिए फिर राजतंत्र की नौका डगमगाने लगी।

नेपोलियन इल्बा नामक टापू मे बन्दी था। किन्तु अब भी फ्रांस मे उसके थोड़े बहुत श्रद्धालु मौजूद थे। वे उसको

फ्रांस की स्थिति का पता दिया करते थे। ज्योंही नेपोलियन ने देखा कि जनता मे लुई की प्रतिष्ठा का काफी ह्रास हो गया है, त्यो ही वह अपने बचे-खुचे बन्दी सिपाहियों के साथ निकल पड़ा। १ मार्च १८१५ को वह जुअन की खाड़ी मे उतरा और बिना किसी विघ्न-बाधा के होनोबिल पहुँच गया। वहाँ उसने जनता को उभाड़ना शुरू किया। नेपोलियन तो जन्म-सिद्ध नेता था। ज्यों उसने लोगो से कहा—तुम्हारे राजनैतिक अधिकार बुरी तरह पददलित किये जा रहे हैं और तुम बैठे सो रहे हो। उठो, कुछ प्रतिकार करो, त्यों ही तुरन्त लोग उसके साथ हो गये। जेनरल लेबी डोयरी और मार्सलने उसके विरुद्ध भेजे गये किन्तु नेपोलियन से लडना तो दूर रहा, वे उल्टे उसी से जा मिले। अठारहवे लुई को मालूम हो गया कि इस समय खैर नहीं है। वह १९ मार्च को पेरिस से भाग गया और २० मार्च को नेपोलियन पेरिस मे आ डटा।

एक वर्ष बाद नेपोलियन ने देखा कि स्थिति बिलकुल बदल गई है। बन्दीगृह ही मे उसको अपने पतन के कारणो का अनुभव हो गया था। वह जानता था कि जनता के समस्त राजनैतिक अधिकार उसने हड़प लिये थे, इसी लिए उसका पतन हुआ था। इसलिए प्रारम्भ मे उसने अपने व्याख्यानो मे बड़ी ही उदार नीति का प्रतिपादन किया। किन्तु जब वह पेरिस मे आगया और जनता ने उसका बड़े आव-भगत से स्वागत किया, तो घड़ी भर के लिए उसको फिर शाही उन्माद

छा गया। जिन लोगो पहले उसने नागरिक करके सम्बोधित किया था, उन्ही को वह अब प्रजा कहकर पुकारने लगा। किन्तु राज्य-कर्मचारियो ने उसे समझा दिया कि इस तरह काम नही चलने का। जनता किसी एक के हाथ मे शक्ति देने के लिए तैयार नही है। लोग १८ वें लुई से इसलिए असन्तुष्ट नही थे कि वह प्राचीन राज-वंश का था, वरन् इसलिए कि वह काफ़ी उदार नहीं था। नेपोलियन तुरन्त सारी स्थिति समझ गया। उसने बिनजेमिन कोन्सटेन्ट को बुलाया और कहा—मैं तुम्हारा परामर्श मानने को तैयार हूँ। मैं जनता को वाद-विवाद का यथेष्ट अवसर दूँगा। उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्रियों का चुनाव भी जनता-द्वारा ही किया जायगा। समाचार-पत्रों को भी पूर्ण स्वतंत्रता दूँगा।

किन्तु शासन-व्यवस्था मे संशोधन करने के लिए उसने जो कमेटी बनाई थी, वह तुरन्त उसी के निर्णयों मे हस्तक्षेप करने लगी। कमेटी का कहना था कि राष्ट्र मे अमीरों का पद पैत्रिक हो। किन्तु नेपोलियन कहता था और ठीक कहता था कि वास्तव मे फ़्रांस मे अमीर-उमराओं का कोई ऐसा दल नहीं है जिसके सदस्य युद्ध-गौरव के लिए अथवा स्वदेश-प्रेम के लिए विख्यात हुए हो। तीस वर्ष मे जिनको आप इस प्रकार उच्च उपाधियों से विभूषित करेंगे, वे या तो मेरे सिपाही होंगे या मेरे महल के निरीक्षक। किन्तु नेपोलियन ने अन्त मे कमेटी की यह बात मान ली।

उसने दो बातों पर अधिक ज़ोर दिया। एक तो व्यवस्थापत्र मे यह धारा रखी गई थी कि किसी की जायदाद ज़ब्त न की जा सके। नेपोलियन ने इस धारा को निकलवा दिया। इससे लोगो के दिल मे कुछ संदेह अवश्य फैला। दूसरी बात यह थी कि नेपोलियन चाहता था कि इस नवीन व्यवस्था का नाम साम्राज्य-व्यवस्था का एक नवीन ऐक्ट रखा जाय। इससे भी लोगो को यह सदेह हुआ कि कही फिर साम्राज्यकालीन प्रथाओ की पुनरावृत्ति न होने लगे।

२२ अप्रेल को यह नवीन ऐक्ट तैयार हो गया और १ जून को प्रथा को चालू रखने के उद्देश्य से जन-समूह के सामने उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ। यह व्यवस्था सन् १८१४ की व्यवस्था से कई बातों मे उन्नत थी। एक तो उच्च वर्ग का पैत्रिक विधान होने से कुछ दिनों मे एक स्वतंत्र हाउस आव लार्ड्स के बनने की आशा थी, दूसरे पार्लियामेंट का सदस्य बनने के लिए अब ४५ वर्ष की आयु के स्थान मे केवल २५ वर्ष की आयु का नियम बना दिया गया। इस नियम से नवयुवकों को राजनीति के क्षेत्र मे भाग लेने के मन-माने अवसर मिलने लगे, क्योकि अब पार्लियामेन्ट के अधि-वेशन बन्द कोठरियों मे नही हुआ करते थे, जनता की राय का प्रभाव पार्लियामेन्ट के वाद-विवादों पर पड़ने लगा था। इसी प्रकार मंत्रित्व का कार्य भी कई बंधनों से जकड़ दिया गया था। व्यवस्थापक-सभा अथवा हाउस आव्

कामन्स का प्रति पाँचवे वर्ष नवीन निर्वाचन का नियम कर दिया गया था। तृतीय व्यवस्था-पत्र के अनुसार प्रतिनिधि-सभाओं के निर्वाचन के लिए विश्वविद्यालयों का निर्माण किया गया था, वही प्रथा फिर से जीवित की गई। किन्तु उसमे दो भारी परिवर्तन किये गये थे, एक तो यह कि अब साधारण वोटर इन विश्वविद्यालयों के रिक्त स्थानो का चुनाव करते थे। इसमे सदेह नही कि अब भी विश्वविद्यालयो मे वही लोग चुने जाते थे जो सबसे अधिक कर देने थे। किन्तु अब विश्व-विद्यालयवाले हाउस आव कामन्स के उपयुक्त केवल कुछ सदस्यों के नाम प्रस्ताव रूप मे नही भेजते थे, किन्तु निश्चित रूप से उनका निर्वाचन कर देते थे, जिससे सरकार मनमानी नही कर सकती थी।

यह सब तो जैसे-तैसे निपट गया। किन्तु राज्य-क्रान्ति के भयंकर युद्धों के बाद यूरोपीय सम्राटो के जो भिन्न भिन्न प्रतिनिधि वियना मे बैठे हुए युद्ध के निपटारे मे लगे हुए थे, उनमें नेपोलियन के लौटने से पुनः खलबली मच गई। वे समझते थे कि नेपोलियन शान्त हुआ, अब हमको पुनः यूरोप का एक नया नक़्शा तैयार कर लेना चाहिए। इसलिए उन्होंने तुरन्त नेपोलियन को बाग़ी घोषित कर दिया और फिर से परस्पर संधि करने लगे।

इधर वेण्डी ने पुनः राजतंत्रवादियों के भडकाने से बलवा मचा दिया। फिर से १७९२ की परिस्थिति उत्पन्न हो गई।

घर मे शत्रु और बाहर शत्रु। किन्तु जनता भी कुछ उत्तेजित हो गई थी। नेपोलियन ने फिर स्वदेश-भक्ति की लहर बहा दी थी। किन्तु इस बार यूरोप अधिक तैयार था, या यो कहिए कि उसने फ्रास की उद्दण्ड और लड़ाकू प्रवृत्ति को कुचल डालने के लिए प्रण ही कर लिया था। नेपोलियन कभी अपनी दॉव से नहीं चूकनेवाला था। वह एक-दम १,३०,००० आदमी लेकर १५ जून को बेलजियम मे घुस पड़ा और १६ को अपने जेनरल वरमोन्ट के धोखा देने पर भी उसने ब्लूचर के अधीन प्रुशियनों को लिंगी के मैदान मे हरा दिया। इस समय सभी सेनाएँ जर्मनी की ओर बढ़ रही थीं। ब्लूचर और सुप्रसिद्ध वेलिंगटन भी वहीं जा पहुँचे और इन्होने मिल कर नेपोलियन को वाटरलू के क्षेत्र मे पूरी तरह से हराया। यही नेपोलियन की प्रथम और अन्तिम हार थी।

नेपोलियन हार खाकर पेरिस लौटा और शत्रुओ ने भी उसका पीछा किया। इधर पेरिस का दृश्य बदला हुआ था। पेरिसवासी नेपोलियन की प्रभुता के लिए अपनी जान खतरे मे नहीं डालनेवाले थे। ३ जून को हाउस आव् कामन्स की एक बैठक हुई। उसमे उन्होंने एक सच्चे उदारदलवादी लेनजूनेस को अपना सभापति चुना था। नवीन निर्वाचन मे, यद्यपि नेपोलियन सरकार ने अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध समाचार-पत्रो के स्वतंत्र संचालन मे बहुत रोक डाली थी, नेपोलियन के दल के केवल ६० सदस्य सभा में पहुँचे थे।

उदारदलवालों की इसमे प्रधानता थी। ये लोग नेपोलियन से विशेष प्रेम नहीं करते थे। नेपोलियन जीते तो वाह वाह और न जीते तो वाह वाह। वे अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए आतुर थे। दोनो हालतों मे उसकी रक्षा के लिए वे चेष्टा कर रहे थे। वाटरलू का समाचार पाते ही सभा ने अपनी बैठक बढ़ा दी और शासन की बाग-डोर अपने हाथ मे लेने की चेष्टा की। उन्होंने मंत्रियों को सभा के आदेश के अनुसार काम करने को कहा।

नेपोलियन इस विचित्र दशा से बहुत चकराया। उसने मंत्रियों को सभा की आज्ञा न मानने के लिए कहा। किन्तु उन्होने अस्वीकार किया। एक एक करके उसके सभी साथी उसको छोड़ने लगे। यहाँ तक कि उसका सबसे घनिष्ठ अनुयायी जेनरल फ़ोश भी उसके विरुद्ध उसके शत्रुओं से गुप्त-मन्त्रणाये करने लगा। इससे नेपोलियन एक-दम हताश हो गया। उसने २३ जून को अपने लड़के के लिए जिसको रोम के बादशाह की उपाधि मिली हुई थी, फ्रांस का राज्य-सिंहासन ख़ाली कर दिया। पहले वह रोचफोर्ट गया, वहाँ उसने स्वेच्छा से अँगरेज़ों के हाथ आत्म-समर्पण कर दिया और उन्होंने उसे सेंटहेलना मे भेज दिया।

व्यवस्थापक-सभा ने नेपोलियन का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उनको बोरबो वंश के लुई का अनुभव हो चुका

था। उन्होने सोचा कि नेपोलियन का लड़का जो कि संरक्षक-सिमिति के परामर्शानुसार कार्य करने को तैयार है, क्या बुरा है। व्यवस्था के दो एक नियम बदल कर वे उसको फ्रांस का बादशाह मानने के लिए सहर्ष तैयार होगये। सुतरां नेपोलियन द्वितीय को फ्रांस का बादशाह घोषित कर दिया गया। किन्तु हाउस आव् कामन्स ने नेपोलियन के संशोधित व्यवस्थापत्र को एक बार पुनः इस प्रकार सुधार दिया कि चाहे फ्रांस की गद्दी पर नेपोलियन द्वितीय रहे चाहे लुई अट्ठारहवाँ या और कोई रहे, जब तक वह उनके व्यवस्थापत्र के अनुसार कार्य करने को तत्पर रहे, तब तक उन्हे उसको गद्दी पर बैठाने मे कोई आपत्ति न होगी। इस व्यवस्था-पत्र का साराश यह था कि प्रथम व्यवस्थापक एवं कार्यकारिणी समितियों को क़ानून बनाने का सम्मिलित अधिकार होगा। दूसरे समस्त फ्रेंच लोगो के राजनैतिक एवं सामाजिक रूप से सामान्य अधिकार होंगे। तीसरे फ्रांस मे अब अमीर-उमराओ का नवीन या प्राचीन कोई भी सत्व न स्वीकार किया जायगा। चौथे प्रथम वोट देने एवं सदस्य बननेवालो के लिए किसी प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी होने का नियम अनिवार्य न रखा जायगा।

किन्तु यह लम्बा-चौड़ा विधान भो काग़ज़ मे ही लिखा रह गया। लुई ने पेरिस से भागकर केमब्रे मे शरण ली थी। अब उसने २७ जून को अपने इष्टमित्रों की सहायता से जनता

को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए एक घोषणापत्र निकाला। उसके साथियों मे लेली टोलिनडल और टेलीरेण्ड अधिक योग्य थे। उसने घोषणा की कि वह व्यवस्थापक-सभाओ का नया चुनाव करायेगा। उसने अपनी पिछली भूलें स्वीकार को और अपने अनुभव से लाभ उठाने की भी बात कही। इतना ही नहीं, उसने एक ऐसा संयुक्त मन्त्रि-मण्डल बनाने की चर्चा की जो सब प्रकार से व्यवस्थापत्र के अनुसार कार्य करेगा। अन्त मे उसने यह भी कहा कि अमीर-उमराओ के विशेषाधिकारो की प्रथा को पुनः चलाने का उसे रत्ती भर भो ध्यान नहीं है।

जनता को इस घोषणा-पत्र से विशेष शान्ति मिलो। इसके अतिरिक्त फोश से लेकर जो बड़े-बड़े पदाधिकारी थे, वे सभी इसका समर्थन कर रहे थे, क्योकि उन्हे पुनः उच्च पदो को अपने हाथ मे करने की लालच हो रहा थी। ७ जुलाई को लुई बिना किसी शर्त के पेरिस आ पहुँचा। लाचार होकर दूसरे ही दिन व्यवस्थापक-सभायें भंग हो गईं। इस प्रकार दूसरी बार बोरबो-वंश राज्य-क्रान्ति के बाद फ़्रांस के राज्य-सिहासन पर प्रतिष्ठित हुआ। वह तिरंगा झण्डा जिसके लिए सन् १७९२ से ख़ून की नदियाँ बह रही थीं उतार दिया गया और उसके स्थान पर फिर शाही सफ़ेद झण्डा फ़्रांस के महलों पर फहराने लगा।

किन्तु इस समय फ़्रांस की स्थिति १८१४ से भी ख़राब

थी। प्रथम बार जो बोरबो-वंश का पुनरुद्धार हुआ था उस समय फ्रांस के शत्रु फ्रांस के साथ कठोरता का व्यवहार नहीं करना चाहते थे। किन्तु इन सौ दिनों मे उनका रुख़ बिलकुल बदल गया। वे हर्जाने मे असंख्यो रुपया माँगने लगे, साथ ही कुछ फ्रेंच सीमाओ को भी दबाने की चर्चा होने लगी; जिससे फ्रांस फिर कभी सिर न उठा पावे। अन्त मे हुआ भी यही। अन्तिम संधि की शर्तों के अनुसार फ्रांस को भिन्न भिन्न हर्जानों के रूप मे एक अरब फ्रेंक्स विजेताओं को देने पड़े। अपने ख़र्च से १,५०,००० विदेशी सैनिक अपनी भूमि पर रखने पड़े एवं फ्रांस की सीमाओं के बाहर नेपोलियन ने जितने देश अधिकृत किये थे, उन सब को लौटाना पड़ा। संक्षेप मे चौदहवे लुई के समय मे फ्रांस की जैसी स्थिति थी इस समय उससे भी ख़राब हो गई।

इधर फ्रांस की अन्तरङ्ग स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं थी। उदारदल पहले नेपोलियन के विरोधियों मे था, किन्तु जब उन्होने नेपोलियन को सुधार और संशोधन के लिए तैयार देखा, तब वे उसके पक्ष मे हो गये। इस प्रकार धीरे-धीरे नेपोलियन के अनुयायियों और उदारवालों का राज-बंश के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इधर उदारदल-वाले लुई के लौटने पर विरोध कर रहे थे, उधर लुई ने दो एक उच्च कर्म्मचारियों को जिन्होंने पहली बार उसको त्याग दिया था, दण्ड देना आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, आग

भड़क उठी। यहाँ तक कि षड्यंत्रो और सैनिक-विप्लवो तक की नौबत आगई।

दूसरी ओर राजतंत्रवादी जब दूसरी बार देश-निकाले से वापस लौटे, तो वे और भी क्रुद्ध हो गये। उन्होंने बदला लेने की ठान ली। वे पुनः फ्रांस मे प्राचीन युग लाना चाहते थे। इस हेतु उन्होने पार्लियामेंट और समाचार-पत्रो का मनमाना उपयोग किया, साथ ही गुप्त-मंत्रणायें भी करने लगे। एक प्रकार से उन्होंने लुई के घोषणा-पत्र को बिलकुल उलट दिया। बेचारा लुई बड़ी आफत मे पड़ गया। एक ओर प्रजातंत्र की पुकार थी तो दूसरी ओर राजतंत्र की जय जयकार थी।

गत बार नेपोलियन के विरुद्ध जो यूरोपीय राज्यो का संघ स्थापित हुआ था, वास्तव मे लुई ने उसके निर्माण मे कोई भाग नहीं लिया था, यहाँ तक कि वह स्वयं वाटरलू के क्षेत्र मे नही गया था। हाँ, जब संधि होनेवाली थी, तो वह शत्रुओं की भयंकर माँगों को कम कराने के उद्देश्य से अवश्य उनके पास गया था, किन्तु इसमे संदेह नही कि दूसरी बार फ्रांस ने उसे अपने सिंहासन पर बैठने के लिए, नही बुलाया था; वरन् विदेशी राज्यों की ही सहायता से बैठा था। पेरिस मे न तो पेरिसवालो ने और न उसकी व्यवस्थापक-सभाओं ने दिल खोलकर उसका स्वागत किया था। किन्तु लुई की हार्दिक इच्छा थी कि मध्यम-श्रेणी, तथा साधारण जनता

अमीर-उमराओं तथा राज-तंत्रवादियों मे किसी प्रकार का संघर्ष न हो। इसलिए उसने अपने नये मंत्रिमण्डल में ऐसे दो व्यक्तियो को सम्मिलित किया था जिनका जन्म और गौरव राज्यक्रान्ति मे हुआ था। वे थे टेलीरेण्ड और फौश। तीन वर्ष बाद उसने भाई को एक पत्र लिखा था, उसमे भी उसके हृदय के भाव व्यक्त हो रहे हैं। वह लिखता है—मैंने अपने सामने एक उद्देश्य रखा है, वह यह कि कोई बादशाह दो परस्पर विरोधी जन-समूहों पर बादशाहत नहीं कर सकता, इसलिए मेरा सारा ध्यान फ्रांस की जनता को एकता के सूत्र मे बाँधने पर है जो दुर्भाग्यवश इस समय आपस मे लड़ रही है।

किन्तु लुई के ये दिव्य विचार केवल मन ही में रह गये, क्योकि लुई के चारों ओर जिन लोगो का जमाव हो रहा था वे लोभ और राग-द्वेष की भीषण ज्वाला से जल रहे थे। वास्तव मे उस समय एक ऐसे हाथ की आवश्यकता थी जो कठोरता से इन दोनो विरोधी दलों को दबाता। १८१६ से १८२१ तक लुई ने जैसे-तैसे अपने उदार एवं न्याय-शील विचारों से दोनों दलों को थोड़ा-बहुत सँभाला; किन्तु बुढ़ापे के कारण पहले ही से उसकी शक्तियाँ क्षीण हो रही थीं। न तो कोई उसकी सुनता था और न उसे किसी प्रकार की सहायता देता था। १८२१ से शिथिलता के कारण फ्रांस में पुनः राजतंत्रदल ज़ोर पकड़ता गया और अन्त मे १८३० में पुनः एक भीषण राज्य-क्रान्ति हुई।

---

(८)

राजवंश की द्वितीय स्थापना

(२४ जून १८१५ से २६ जुलाई १८३०)

अठारहवे लुई ने पुनः पेरिस आते ही आते अपने मंत्रि-मण्डल का संगठन कर लिया था। उसने तीन-चार ऐसे मनुष्य सम्मिलित किये थे जिन्होंने राज्यक्रान्ति में यथेष्ट नाम कमाया था। इस प्रकार लुई जनता का विश्वासपात्र बनना चाहता था। १३ जुलाई को उसने एक और राजाज्ञा निकाली। उसके द्वारा पार्लियामेट के सदस्यों की संख्या ४०२ कर दी गई। यह पहली संख्या से लगभग दूनी थी। वोटरों की आयु ३० वर्ष से घटा करके २१ वर्ष कर दी गई, साथ ही सदस्य बनने के लिए चालीस वर्ष के स्थान मे अब केवल २५ की ही आयु आवश्यक रह गई।

३०० फ्रेंक कर देनेवाले वोट दे सकते थे। वे सदस्यों की निर्वाचित संख्या के दूने उम्मेदवार चुनते थे। इनमें से भी फिर दूसरे वोटर १,००० फ्रेंक कर देनेवालों को सदस्य चुन लेते थे। इस प्रकार वोट देनेवालों की संख्या बहुत कम हो गई थी। किन्तु यह राजाज्ञा बिलकुल अस्थायी थी। नई पार्लियामेंट के चुनाव पर, इस विधान पर, एवं आवश्यकताओं पर जैसे क़ानून बनाना अथवा पार्लियामेट का भङ्ग

करना आदि बातों पर स्वयं पार्लियामेंट अन्तिम निर्णय देगी, बस बात को लुई ने अपनी राजाज्ञा मे ही स्पष्ट कर दो थी।

किन्तु इस विधान से पार्लियामेंट का राष्ट्रीय रूप कुछ दिनों के लिए लुप्त हो गया। वास्तव मे लुई चाहता था कि इस प्रकार उसे उन लोगों की सहानुभूति मिल जाय जो राज्य-क्रान्ति के युग मे बड़े बन गये हैं। किन्तु वह अपने उद्देश्य मे सफल न हुआ। जैसे नेपोलियन के राज्य-सिंहासन पर बैठने के समय सैकड़ों जेकोबिन, जो पहले उसके विरोधियों में थे, उसके चारों ओर जमा हो गये थे, उसी प्रकार नवीन राष्ट्रीय सम्मति के अधिकारी डर के मारे उसके दरबार मे हाज़िर होने लगे। इस प्रकार लुई के पास अमीरों का जमाव देखकर लोगों के दिल मे स्वभावतः अशान्ति होने लगी। लुई ने १३ जुलाई की घोषणा के द्वारा पार्लियामेंट भंग करके बुद्धिमानी का काम नहीं किया था, क्योंकि इससे नवीन निर्वाचन के समय उसके विपक्षियों को आन्दोलन करने का यथेष्ट समय मिल गया। किन्तु इसके अतिरिक्त सरकार ने स्वयं अपने निरंकुश कार्यों से लोगों मे महान् उत्तेजना फैला दो। नेपोलियन के सौ दिन मे जो कर्मचारी निकाल दिये गये थे, वे फिर बुला लिये गये। जिन अमीरों ने नेपोलियन के संशोधित ऐक्ट को स्वीकार कर लिया था, वे पदच्युत कर दिये गये। जिन सैनिक अफ़सरों ने नेपोलियन का साथ दिया था, उन्हें गोली मार दी गई। राजद्रोहियों

को पकड़ने और उन पर अभियोग चलाने के लिए पृथक् अदालतें बनाई गई। संक्षेप मे, सन् १७९३ की पैशाचिकता के ताण्डव-नृत्य की पुनरावृत्ति होने लगी। सरकार की देखा-देखी लोगो ने भी वही चाल चलना शुरू कर दिया। दक्षिण मे विशेषकर दिन दहाड़े लूट-मार और मार-काट होने लगी।

ऐसी विचित्र परिस्थिति मे १४ अगस्त के निर्वाचन का क्या फल हो सकता था। प्रजातंत्र का तख़्ता बिलकुल उलट गया। उदारदलवाले या तो खड़े ही नहीं हुए या राजतंत्र की बाढ़ मे बह गये। पार्लियामेट मे केवल वही सदस्य पहुँचे जो पक्के राजतंत्रवादी थे, जिन्हें प्रजातंत्र से पूरी घृणा थी। एक शब्द मे वे राजा से भी अधिक राजतंत्रप्रिय थे। फिर क्या था, राजतंत्र की तूती बोलने लगी। लुई के भाई काउन्ट अरटस ने इन्हीं अनुयायियों के भरोसे लुई से ७ जुलाई के मंत्रिमण्डल को तोड़ने के लिए कहा। यह मंत्रिमण्डल सुयोग्य था, इसमे बहुत कम सन्देह है। टेलीरेण्ड की अध्यक्षता मे उसने विदेशी राज्यों से २ अक्टूबर को संधि की प्रारम्भिक शर्तें तय करा ली थीं। लुई असमञ्जस में पड़ गया। उसने अब की बार मंत्रि-मण्डल मे ऐसे आदमी चुने जिनमे राजतत्रवादियों को अवि-श्वास न हो। इनमे रिचलू सबसे प्रसिद्ध था, इसको पहले फ्रास मे देश-निकाले का हुक्म मिल चुका था। इन लोगों की और कुछ अमीरों की सहायता से जिनको कुछ अनुभव

हो गया था, लुई को विश्वास था कि वह पार्लियामेंट को उग्रनीति धारण करने से बचा सकेगा।

२४ सितम्बर को नई केबीनेट का संगठन पूरा हो गया। किन्तु वह तत्कालीन बहाव मे से अपने आपको बचा न सका। ६ नवम्बर को एक नियम बनाया गया कि यदि किसी नागरिक के मुँह से अचानक ही राजतंत्र के विरुद्ध कोई बात निकले, तो अदालत मे उसके ऊपर अभियोग चलाया जा सकता है। दो और नियम बने, जिनके द्वारा वह सब लोग जिन पर राजद्रोह का संदेह किया जाता था, सरकार के पूर्ण अधिकार मे सौंप दिये गये। १२ जनवरी १८१६ को राष्ट्रीय पंचायत के उन सब सदस्यों को आजन्म देशनिकाला दे दिया गया जिन्होंने १६ वें लुई की फाँसी के लिए वोट दिया था। इसी के साथ उन्होंने बोनापार्ट-राजकुमारों को फ्रांस से निकाल बाहर किया।

इन बातों और लुई की प्रतिज्ञाओ से आकाश-पाताल का अन्तर था। व्यवस्थापक को भी पार्लियामेंट ने एक प्रकार से ताक़ पर रख दिया था। किन्तु चूँकि पार्लियामेंट का निर्वाचन व्यवस्थापत्र के विधान के अनुसार ही हुआ था, इसलिए लोग सहसा उससे नहीं लड़ना चाहते थे। बजट में पार्लियामेंट ने और भी असावधानी दिखाई। देशी और विदेशी ख़र्च बेहद बढ़ा हुआ था। पार्लियामेंट ने पुनः पादरियों को विवाहों की रजिस्ट्री का अधिकार देने का प्रस्ताव किया। इतना ही नहीं,

उसने कहा कि पादरियों की जो सम्पत्ति अभी तक बेची नहीं गई है, वह उन्हें लौटा दी जाय और उनकी सम्पत्ति छीनने के कारण उनको ४१० लाख फ्रैंक दिये जायँ। किन्तु राजतंत्रवादी इन प्रस्तावो में सफल न हुए। २९ फ़रवरी के प्रस्ताव से पादरियों को सरकारी स्कूलों में पढ़ाने भर का अधिकार मिला। परन्तु इस बात मे रत्ती भर भी सन्देह न रह गया कि राजतंत्रवादी राज्यक्रान्ति की जड़ को खोद कर फेक देना चाहते हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि वे अपने को इतना लोकप्रिय समझते थे कि १०० फ्रैंक कर देनेवाले के बजाय ५० फ्रैंक कर देनेवाले को वोट देने का अधिकार देना चाहते थे।

लुई पार्लियामेन्ट की उद्दण्डता से घबरा गया। उसको मालूम हो गया कि ऐसी अवस्था मे हमारी सरकार दो एक दिन से अधिक नहीं टिक सकती। उसने डेकेज के परामर्श से ५ सितम्बर १८१६ को घोषणा-पत्र निकाला, जिसके द्वारा उसने वर्तमान पार्लियामेट भंग कर दी, सदस्यों की २५९ कर दी और फिर सदस्यों की ४० वर्ष की आयु का होना फिर अनिवार्य कर दिया। यद्यपि यह घोपणा-पत्र नियम-विरुद्ध था, क्योंकि निर्वाचन-संबन्धी नियमों में परिवर्तन का अधिकार केवल पार्लियामेंट को हो सकता था किन्तु परिस्थिति की गंभीरता देखते हुए यह घोषणा-पत्र अनुचित नहीं कहा जा सकता।

राजतंत्र एवं अनुदारदलवालों ने इस घोषणा से अपना

अपमान समझा। उदारदलवाले भी इससे उदासीन रहे, क्योंकि उनको अपने सिद्धान्तों की रक्षा की इससे कोई आशा नहीं थी। ४ अक्टूबरवाले चुनाव में राजतंत्रवादी बहुत कम पहुँच सके और मंत्रि-मण्डल को पार्लियामेंट मे अपनी इच्छा के अनुसार बहुत से उदारदलवादी सदस्य मिल गये। वास्तव मे, इसी समय से फ़्रांस मे पार्लियामेन्टरी गवर्नमेंट का श्रीगणेश हुआ। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि इँग्लिश-पार्लियामेंट की प्रथा और फ़्रेंच-पार्लियामेंट की प्रथा मे कोई सादृश्य नहीं है। इँग्लिश-पार्लियामेंट मे सदैव दो सुयोग्य दल रहते हैं जो बारी-बारी देश का शासन करते हैं। किन्तु फ़्रेंच-पार्लियामेंट के दोनो दलों के सिद्धान्तों मे घोर मतभेद हुआ करता है। वे मंत्रि-मण्डल को अकेले हराने मे कभी समर्थ नहीं होते। उनमे एकता तो कभी होती नहीं और अगर कभी होती भी है तो नाम-मात्र की। इसलिए सारा करना-धरना उन उदासीन सदस्यो का होता है जो समयानुसार कभी इस दल से मिल जाते हैं और कभी उस दल से। इसलिए मंत्रि-मण्डल हमेशा डाँवाडोल अवस्था मे रहता है और देश दोनों ओर के गरम सिद्धान्तों से बच जाता है। इसके विरुद्ध इँग्लैंड मे एक दल के पतन के बाद दूसरा दल आता है, जिससे सारा तख़्ता उलट जाता है और नागरिको को बड़ी असुविधा होती है।

फ़्रांस मे उस समय से लेकर आज तक यही प्रथा भिन्न

भिन्न रूपों मे प्रचलित रही है। किन्तु प्रारम्भ मे इस प्रथा से जैसी सफलता हुई थी, वैसी अब नही दिखाई देती। १८१६ से १८२० तक इस नवीन पार्लियामेट ने जो काम किये, वे सर्वथा सराहनीय थे। उसने फ्रांस की आर्थिक अवस्था को सुधार दिया और फ्रांस की भूमि पर से विदेशी सैनिक हटा दिये गये। १८१५ मे अनुदार दलवालों ने जो अद्भुत नियम बना डाले थे, वे सब रद्द कर दिये गये। फ़रवरी १८१७ को निर्वाचन का दूसरा नियम बना दिया गया। अभी तक निर्वाचन की दो सीढ़ियाँ थीं, पहले मामूली लोग एक प्रस्तावित सूची तैयार करते थे, उसमे फिर धनी-मानी और अमीर-उमरा लोग पार्लियामेट के लिए सदस्य चुनते थे। इस प्रथा को उठाकर यह नियम कर दिया गया कि जो ३०० फ्रैंक कर दे, वही सीधा पार्लियामेट के लिए सदस्य चुन सकता है। इसी प्रकार मार्च १८१८ मे फ़ौज का नवीन संगठन किया गया था। १८१९ मे समाचार-पत्रों के संबंध मे यह नियम तय पाया कि समाचार-पत्र-संचालकों को पत्र निकालने के लिए सरकार से आज्ञा लेने की आवश्यकता न रह गई, केवल थोड़ी सी ज़मानत जमा करनी पड़ती थी। यदि पत्र मे ऐसी कोई बात लिखी जाती थी जिसे अदालत अनुचित ठहरा दे, तो यह ज़मानत ज़ब्त कर ली जाती थी।

मंत्रिमण्डल को इन सुधारों के लिए अधिक झंझट नहीं करना पड़ा। हाउस आव् कामन्स का प्रति पाँचवाँ भाग नया

कर लिया जाता था। इसलिए जनता का भाव पार्लियामेंट मे ठीक ठीक व्यक्त हो सकता था। किन्तु उदारदलवाले इस मंत्रिमण्डल से इसलिए प्रसन्न नही थे कि उनकी सम्मति मे मंत्रिमण्डल ने स्वतंत्रता का पूरा महत्त्व नही समझा है। दूसरे १८१५ के निर्वासितो को कठोरता के साथ दण्ड दिया गया था, तीसरे रोमन-कैथोलिक धर्मवालो के साथ अनुचित रियाअत की जाती है। इधर राजतंत्रवादियों को निर्वाचन का नियम और समाचार-पत्रों का विधान कुछ न पसन्द आया। इसलिए मंत्रिमण्डल के प्रमुख नेता ड्यूक रिचलू को १८१८ मे त्याग-पत्र देना पड़ा। इसके बाद डेकज और जेनरल डेसोल ने नया मंत्रि-मण्डल बनाया, किन्तु इसका झुकाव उदारदल की ओर था। किन्तु १८१९ के चुनाव मे उदारदलवालो का बहुमत हो गया। नेपोलियन-कालीन बहुत से जेनरल चुनाव में आगये। इससे केन्द्रिक तटस्थ दलवालों मे खलबली मच गई। पार्लियामेंट का झुकाव राजतंत्रवाद की ओर हो चला। इतने मे १३ फ़रवरी १८२० को ड्यूक डेबेरी की हत्या हो गई। डेकज को त्याग-पत्र देना पड़ा और रिचलू फिर मंत्रिमण्डल मे आ गया। किन्तु इस बार वह अनुदार-दल की सहायता से शक्ति मे आया था, इसलिए उसने अपने ही हाथो से उस इमारत को ढा दिया, जिसको उसने एक वर्ष पहले उठाया था। राजविद्रोहियों के लिए कड़े नियम बनाये गये और समाचार-पत्रों पर फिर कड़ी दृष्टि रखी जाने लगी।

इसके अतिरिक्त चुनाव-संबंधी नियम मे भी परिवर्तन कर दिया गया कि केवल १७२ सदस्य जनता के द्वारा और शेष २५८ सदस्य मध्यमश्रेणी एवं अमीर-उमराओं द्वारा चुने जॉय।

वोटों के इस प्रकार विभक्त हो जाने से उदार दलवालों मे बड़ी सनसनी फैली। उधर अनुदारदल मे भी एकता के लक्षण नहीं दिखाई देते थे। रिचलू विली आदि राजतंत्रवादियों पर निर्भर था, किन्तु ऊपर से तो ये उस पर शिथिलता का दोष लगाते थे, किन्तु वास्तव मे काउन्ट आरटस के साथ राज-विप्लव की गुप्त-मंत्रणा में मिले हुए थे। लुई तो बुड्ढा ही था। काउन्ट आरटस चाहते थे कि जितनी जल्दी मैं बादशाह हो जाऊँ, उतना ही अच्छा है। इसलिए १२ दिसम्बर १८२१ मे रिचलू को पुनः त्याग-पत्र देना पड़ा। तीन बार विली ने कई कट्टर राजतंत्रवादियो के साथ एक नया मंत्रिमण्डल बनाया।

विली स्वयं एक कुशल व्यावहारिक आदमी था किन्तु उसमे अपने साथियों की ज़्यादतियों के रोकने का सामर्थ्य न था। यह १८२१ से १८२७ तक प्रधानमंत्री रहा। इस बीच मे लुई तो चल बसा और उसके स्थान पर काउन्ट आरटस दसवें चार्ल्स के नाम से बादशाह हुआ। संक्षेप मे इस मंत्रिमण्डल ने उदार-दल की नीति और राज्यक्रान्ति के सिद्धान्तों को मटियामेट करने की ही कोशिश की। समाचार-पत्रों के प्रकाशन के लिए सरकार की आज्ञा लेना अनिवार्य होगया। उनके आपत्ति-जनक लेखों का विचार अदालतों में न

किया जाकर सीधा शासकों के हाथ में सौंप दिया गया। हाई नारमल स्कूल भी बन्द कर दिया गया, और प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिकों एवं दार्शनिकों को भी वहाँ से हटा दिया गया। इससे विद्वान्-मण्डली भी कुण्ठित हो गई। यह प्रत्यक्ष हो गया कि शिक्षा-प्रचार फिर पादरियों के अधिकार में चला जायगा।

१८२३ में स्पेन के सप्तम फ़रडीनेण्ड की रक्षा के लिए स्पेन से युद्ध छेड़ा गया। स्पेन के लिए राजनैतिक सुधार और व्यवस्था की आवश्यकता थी। उनके विरुद्ध फ़्रांस ने फ़रडीनेण्ड को सहायता देना चाहा, इससे उदारदलवाले बड़े क्रुद्ध हुए। एक दिन था जब फ़्रांस की सेनायें यूरोप भर में स्वतंत्रता का संदेश लिये फिरती थीं और आज वह दिन आगया जब वही फ़ौजे निरकुश बादशाहों को अपनी पुरानी गद्दियों पर बैठाने की चेष्टा करने लगी। पार्लियामेंट में उदारदलवालों की न्यूनता होने के कारण उनका ध्यान स्वभावतः षड्यन्त्रों की ओर झुक गया। १८२१ से १८२४ के बीच में कम से कम ८ षड्यंत्रों का पता लगाया गया। १९ पुरुषों पर अभियोग चलाया गया और ११ मनुष्यों को मृत्यु का दण्ड दिया गया। किन्तु ऐसी विकट स्थिति में विली ने दृढ़ता से काम किया। एक ओर षड्यन्त्र-कारियों को दबाया और दूसरी ओर स्पेन के युद्ध को सफल बनाने के लिए उद्योग किया। किन्तु उसके आत्म-विश्वास ने उसको धोखा दिया। उसने नवीन निर्वाचन के

लिए हाउस आव् कामन्स को भंग कर दिया। बस, इसी एक बात से राजतंत्र का पतन अनिवार्य हो गया।

२५ फ़रवरी १८२४ को जो निर्वाचन हुआ, उसमे उदारदलवालो की संख्या केवल २० रह गई। बस फिर क्या था, हाउस आव् कामन्स की वही दशा हुई जो १८१५ मे थी। बहुमत फ्रांस से राज्य-क्रान्ति का नाम-निशान मिटाने पर तुला हुआ था। दुर्भाग्यवश ९ जून १८२४ को हाउस आव् कामन्स का यह नियम भी तोड़ दिया गया कि अब प्रतिवर्ष उसके निश्चित अंश का नया निर्वाचन न हुआ करेगा। सात वर्ष के लिए यही हाउस आव् कामन्स स्थायी घोषित कर दिया गया। सन् १८२५ मे उसी हाउस ने ५ फ्रैंक सूदवाले नोटों को ३ वाले घोषित कर दिये गये। इस प्रकार सरकारी कोष मे ३०० लाख फ्रैंको की बचत हुई, वह सब राज्यक्रान्ति के द्वारा सताये हुए मनुष्यो के सहायतार्थ दे दिये गये। इससे देश भर मे आग लग गई। जिनके पास पहले ही ५फ़ीसदी वाले नोट थे, उनके क्रोध की सीमा न रही। उसी वर्ष २४ मई को स्त्री पादरियो की संस्थायें क़ानून के अनुसार मान ली गईं। एक महीने पहले यह नियम भी बन गया कि गिरजाघरो मे चोरी करने के अपराध मे फाँसी का दण्ड दिया जायगा। १८२६ मे कुछ विशेषणों के साथ प्रथम सन्तान को उत्तराधिकार मिलने का नियम फिर से स्वीकृत होगया।

किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि इस समय हाउस आव् पीयर्स अथवा उच्च हाउस ने बड़ी समझ से काम लिया। उसने हाउस आव् कामन्स की उद्दण्डता का विरोध किया। १८२७ मे पुस्तक और समाचार-पत्रो के प्रकाशकों पर और भी अत्याचार किया गया। यह नियम बना दिया गया कि सरकारी निरीक्षक को दिखाये बिना पुस्तको अथवा समाचार-पत्रो की कोई प्रति नही प्रकाशित की जा सकती। किन्तु उच्च हाउस ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। दिन प्रति दिन असंतोष बढ़ने लगा। शिक्षा के प्रतिबन्धों से विद्यार्थीसमाज मे असंतोष था, इधर मध्यमश्रेणी के लोग अपनी स्वार्थ-हानि से बिगड़ रहे थे। जनता मे तो अमीर-उमराओं और पादरियो के पुनरुत्थान से भोपण आतंक छा रहा था।

यदि इस काल मे देश की कोई भलाई हुई, तो बस यही कि आर्थिक स्थिति कुछ सँभल गई। पेरिस मे उपद्रव होने लगे, जगह जगह झगड़े-फिसाद खड़े हो गये। विली पर उदारदल-वालों ने तो हमला किया ही, कुछ कट्टर राजतंत्रवादी भी इस बात पर विली से बिगड़े कि उसने हाउस आव् पीयर्स पर हाउस आव् कामन्स के प्रस्तावो को पास करने के लिए यथेष्ट ज़ोर नही डाला। विली ने इसी हेतु कई नये पीयर भी बनाये थे, इससे अधिक वह कर ही क्या सकता था। उसको प्रधान मन्त्री हुए बहुत दिन हो गये थे, इसलिए भी उससे बहुत

से लोग चिढ़ गये थे। किन्तु विली अभी निराश न हुआ था। ६ नवम्बर १८२७ को उसने हाउस आव् कामन्स को भंग करने के लिए चार्ल्स को राज़ी कर लिया। १८० उसके अनुयायी, १८० उदारदलवाले और ६० राजतंत्रवादी इस बार के चुनाव मे आये। इस पर विली ने प्रधान मंत्रित्व छोड़ दिया। चलते समय एक मंत्री ने बादशाह से कहा था—महाराज हम लोगों से बढ़ कर और कोई राजभक्त मंत्रिमण्डल नहीं हो सकता था, सो आप इस बात का ध्यान रखिए। किन्तु चार्ल्स कब यह बात सुननेवाला था।

इस बार का मत्रिमण्डल अधिकतर अनुदार-दलवालों मे से बना था, किन्तु ये सर्वथा उदार-नीति के विरोधी नहीं थे। मारटीनक इनका नेता था। उसने १८ जुलाई १८१८ में प्रेस का निरीक्षण उठा दिया और ज्यूसिट पादरियों को स्कूलों मे पढ़ाना बन्द करा दिया। किन्तु इससे क्या होता था? वे नरम नीति से काम लेते थे। किन्तु न तो बादशाह उनसे इस नरम नीति के कारण प्रसन्न था और न राजतन्त्रवादी। उधर उदार दलवाले, जिनकी शक्ति बढ़ती जाती थी, अनुदार-दल के मन्त्रिमण्डल को कैसे पसन्द कर सकते थे।

राजनीति की यह विलक्षणता देखिये। अप्रेल १८२९ में उदार और अनुदार-दल किसी मामूली बात पर एक होगये और दोनों ने मिलकर सरकार को हरा दिया। थोड़े दिनों में मारटीनक ने अपना पद छोड़ दिया। चार्ल्स बादशाहों के

दैवी अधिकार को माननेवाला था, वह समझता था कि ईश्वर ने उसे धर्म और बादशाहत की रक्षा के लिए भेजा है। इसलिए अब की बार उसने अपने दिल के मन्त्री चुने। पोलीनक जिसने वाटरलू मे नेपोलियन का साथ छोड़ दिया था और ला बोरडेनी जिसने १८१४-१५ मे प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों को मिटाने के लिए जी-जान से उद्योग किया था, उसके मन्त्रिमण्डल के प्रमुख सदस्य थे। चार्ल्स समझता था कि यह मंत्रिमण्डल उदारदल की नीति को दबा सकेगा, किन्तु वास्तव मे न तो इसके सदस्यों मे एकता थी और न उनमे शक्ति ही थी। राजतंत्रवादी तो खुल्लमखुल्ला कहने लगे कि पार्लियामेट को भंग कर दो और शासन-व्यवस्था-पत्र को रद्दी के टोकरे मे फेंक दो। इधर उदारदलवालों ने भी कोई बात उठा न रखी। सभी पत्र बादशाह को चेतावनी देने लगे कि इस प्रकार की अनुदार-नीति का बड़ा भयंकर परिणाम होगा। किन्तु बादशाह ने इनकी ओर कोई ध्यान न दिया। २ मार्च १८३० को उसने पार्लियामेट मे अपना अनर्थकारी भयंकर भाषण दिया जिस पर हाउस आव् पीयर्स ने बादशाह को जनता की सहानुभूति प्राप्त करने की सलाह दी और हाउस आव् कामन्स ने कहा कि ऐसे सुधार-विरोधी मंत्रिमण्डल से शासन-कार्य नहीं चल सकता।

किन्तु चार्ल्स ने अपनी टेक न छोड़ी। १६ मई को पार्लियामेट भंग कर दी गई और २३ जून नवीन निर्वाचन

के लिए नियत की गई। चार्ल्स ने निर्वाचक-वर्गों के लिए यह संदेश भी निकाला कि इस समय उसके अधिकारों मे विशेष हस्तक्षेप किया जा रहा है, इसलिए लोगों को सोच समझकर वोट देना चाहिए। ४२८ सदस्यों में से २७४ सदस्य उदारदल मे से थे। इतने पर भी उदारदलवाले समझौता करने को तैयार थे। यदि मंत्रि-मण्डल बदल दिया जाता, तो कोई झगड़ा न उठता, क्योंकि उदारदलवाले राज्यक्रान्ति की भयंकरताओं को अभी भूले नहीं थे। किन्तु चार्ल्स अपनी बात से एक इंच भी इधर-उधर न हुआ। इतने ही मे पेरिस मे अलजीयर्स के जीते जाने की ख़बर आई। फ़्रेंच सेनाओं ने फ़्रेंच कन्सलडे के अपमान का बदला चुकाने के लिए इसका घेरा डाला था। थोड़े ही दिनों बाद फ़्रांस, इंग्लैंड और रूस की सम्मिलित सेनाओं ने यूनान को स्वतंत्रता दिला दी। फ़्रेंच-सेना की इस विजय से चार्ल्स का दिल बहुत बढ़ गया। उसने समझा कि अब फ़्रांस मे मुझे रोकनेवाला कोई नहीं है। २५ जुलाई को उसने अपने मन-माने अधिकारों से कई नियम बना डाले। १८२६ के समस्त नियम स्थगित कर दिये, समाचार-पत्रों पर निरीक्षण बैठा दिया। हाउस आव् कामन्स को तोड़ दिया और प्रीफेक्ट लोगों को एक ऐसी सूची बनाने की आज्ञा दी जो अपनी असली सम्पत्ति पर कम से कम ३०० फ़्रेंक कर देते थे। इस प्रस्ताव के प्राक्कथन मे यह बात स्पष्ट कही गई थी कि यह ऐक्ट

प्रजातंत्र को फ्रांस से उखाड़ फेंकने के लिए बनाया जाता है।

वास्तव में जब से राज-वंश का पुनरागमन हुआ था, तब से प्रजातंत्र तो फ्रांस मे नाममात्र के लिए रह गया था, क्योकि वोटाधिकार बहुत थोड़े लोगों को दिया गया था। २५ जुलाई को चार्ल्स ने जो घोषणायें कीं, उनसे बढ़कर स्वेच्छाचारिता और हो ही क्या सकती थी? ज्यों ही पेरिस-वालों की समझ मे यह बात आगई, त्यों ही जगह-जगह उपद्रव और बलवे खड़े हुए। तीन दिन तक समाचार-पत्रो मे घमा-सान युद्ध होता रहा और अन्त मे सड़कों पर मार-काट शुरू हुई। फिर चार्ल्स ने मंत्रि-मण्डल भी बदलना चाहा और अपनी आज्ञायें वापस लेने को तैयार हो गया, किन्तु वह समय निकल चुका था। चार्ल्स को रोनबोलेट मे शरण लेनी पडी और वहाँ से वह इँग्लैंड मे चला गया। इस प्रकार फ्रांस को बोरबों राज-वंश से सदा के लिए छुटकारा मिला।

---

(६)

जुलाई की राजगद्दी

(३० जुलाई १८३० से २३ फ़रवरी १८४८)

जो काम पार्लियामेंट महीनों और वर्षों मे भी न कर सकी, उसको उत्तेजित जनता ने तीन दिन में करके दिखा दिया। ये तीनों दिवस राज्य-क्रान्ति के इतिहास मे सदैव उल्लेखनीय रहेंगे। किन्तु इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है, वह यह कि अभी तक प्रजातंत्र के सिद्धान्तों का प्रचार जनता मे यथेष्ट रूप से नहीं हुआ था। अधिकतर राजधानी पेरिस के लोगो मे ही राजनैतिक जागृति उग्ररूप धारण कर रही थी, क्योंकि लोगों को फिर एक नये बादशाह की खोज हुई। पहले दसवें चार्ल्स के ही नाती का नाम लिया गया, किन्तु वह उस समय नाबालिग़ था। नाबालिग़ को एक संरक्षक-समिति के अधीन करके वे एक बार बादशाहत का मज़ा चख चुके थे। इसलिए इस बार ड्यूक डो ओरलियन लुई फ़िलिप फ्रांस की राजगद्दी पर बैठाया गया। यह लुई-वंश की द्वितीय शाखा मे से था। राज-घराने के राजा के अतिरिक्त अन्य सदस्य प्रायः उदार विचारवाले हुआ करते हैं। सुतरां यह भी ऐसा ही था। इसलिए लोग इसको गद्दी सौंपने के लिए तैयार हो

गये। किन्तु इस बात का ध्यान रखा गया कि अब की बार पुराने झगड़े न खड़े हो।

९ अगस्त १८३० को पार्लियामेंट की एक सबकमेटी ने एक नया व्यवस्था-पत्र तैयार किया, लुई फ़िलिप ने उसको पालन करने की क़सम खाई। दोनो हाउसों ने जल्दी से उसे पास कर दिया। नया व्यवस्था-पत्र १८१४ की व्यवस्था का रूपान्तर-मात्र था। उसका प्राक्कथन जिसमे राजा के ईश्वर-प्रदत्त अधिकारों की चर्चा थी, उड़ा दिया गया और उसके स्थान पर इँगलैण्ड की १६८८ के व्यवस्था-पत्र के अनुसार यह लिखा गया कि फ़्रांस की राजगद्दी ख़ाली थी इसलिए फ़िलिप ने अपनी इच्छा के अनुसार लुई फ़िलिप को गद्दी पर बैठाया है। प्रजातंत्र का तिरङ्गा झण्डा फिर फ़्रांस मे फहराने लगा। कैथोलिक मत से राज-धर्म की उपाधि छीन ली गई। हाँ, उसकी जगह यह अवश्य घोषित किया गया कि फ़्रांस की अधिकांश जनता का धर्म रोमन कैथोलिक है। प्रेसों और प्रकाशकों का निरीक्षण हटा लिया गया। सार्वजनिक शिक्षा-प्रचार के लिए भी स्कीम बनने लगी।

किन्तु राज्य-प्रबंध के संगठन मे बहुत कम परिवर्तन हुआ। दोनों हाउस कार्यकारिणी अथवा मंत्रि-मण्डल के परामर्श से क़ानून बनाते थे। कम से कम ३० साल के मनुष्य व्यवस्थापक-सभाओं के सदस्य और कम से कम २५ वर्ष के मनुष्य इन सदस्यों के लिए वोट दे सकते थे। १९ अप्रैल १८३०

के निर्वाचन एक्ट के अनुसार लोगों को दुहरा वोट देने का अधिकार मिट गया और ऐसा विधान किया कि प्रत्येक वोटर-समुदाय प्रत्येक शासन-विभाग के लिए केवल एक सदस्य चुन सके। सदस्य बनने की योग्यता अब ५०० फ्रेंक कर देने ही से मापी जाने लगी, जिससे सदस्यों की संख्या तिगुनी होगई और ३०० से २०० फ्रेंक कर देने से वोटर लोगो की संख्या दूनी होगई। पेन्शिनवाले अफ़सर केवल १०० फ्रेंक कर देने ही से वोट दे सकते थे।

२६ दिसम्बर १८३१ को हाउस आव् लार्ड्स के सगठन के लिए जो क़ानून बने, उनके लिए हाउस आव् कामन्स मे ख़ूब वादविवाद चला। रोयर कोलर्ड, ग्युजोट, और पायर्स एवं स्वयं बादशाह यह चाहता था कि अमीर-उमराओं की उपाधि आजन्म और वंश-गत हो। जो एक बार हाउस आव् पीयर्स का सदस्य हो गया, वह आजन्म सदस्य रहे। अन्त में यह तय हुआ कि बादशाह अपने फ़ौजी और ग़ैर-फ़ौजी उच्च कर्मचारियों मे से उन्हें चुना करें अथवा जिन सौदागरों और ज़मींदारों ने तीन-चार वर्ष तक ३००० फ्रेंकों के हिसाब से कर दिया हो, उनमें से ही, हाउस आव् पीयर्स के सदस्य चुने जायँ। यह नियम भी बना दिया गया कि हाउस आव् कामन्स और हाउस आव् पीयर्स का कोई सदस्य वेतन नहीं ले सकता था। इससे धनहीन लोगों का उत्साह पार्लियामेंट की ओर से कम हो गया।

सरसरी तौर पर देखने से १८३० के व्यवस्था-पत्र मे कोई महत्त्व-पूर्ण बात नही मालूम होती है। किन्तु इस व्यवस्था-पत्र ने रहे-सहे राजतंत्रवाद को भी नष्ट कर दिया। क्योंकि इसके बाद किसी बादशाह ने यह दावा नही किया कि ईश्वर ने उसे शासन करने के ही लिए बनाया है। फ्रास की जनता ने जिसे मन चाहा अपना बादशाह बनाया। वास्तव मे इसी स्थान से सच्चे प्रजातंत्र का जन्म होता है, क्योंकि प्रजातंत्र की मुख्य कसौटी यही है कि जनता के द्वारा उनका मुखिया चुना जाय और मुखिया प्रजा के बनाये हुए नियमो का पालन करे। यद्यपि लुई फ़िलिप अब भी फ्रांस का बादशाह कहलाता था, तथापि न उसमे शक्ति रह गई थी और न प्रभाव। जनता के कुछ प्रतिनिधियों ने राजा के अधिकार अपने हाथ मे कर लिये थे, किन्तु प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्तो के अनुसार ये अधिकार उन्हीं कुछ प्रतिनिधियों के हाथ मे सीमाबद्ध न होकर समस्त जनता मे समान रूप से फैल जाने चाहिए थे। यदि तात्कालिक राजनीतिज्ञो मे यथेष्ट दूरदर्शिता होती, यदि उन्होने उदारनीति से काम लिया होता, तो वे जनता को राजनैतिक शासन-प्रणाली की शिक्षा देने के लिए और फ्रांस में वास्तविक प्रजातंत्र को प्रतिष्ठित करने के लिए धीरे धीरे जनता मे वोटाधिकार बढ़ाते जाते। किन्तु दुर्भाग्य-वश ऐसा न हुआ। लुई फ़िलिप और उसके साथियों ने अभी प्राचीन राज्य सत्ता को पुनर्जीवित करने की आशा नहीं छोड़ी थी।

इसलिए प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्त कार्यरूप मे तिल भर भी आगे नहीं बढ़े। लुई फ़िलिप का शासन-काल १८३७ से १८४८ तक रहा। किन्तु वोटरो की संख्या ज्यों की त्यों बनी हुई थी। सच पूछा जाय तो राजवंश के पुनरुत्थान के समय सन् १८१४ मे जितने वोटर थे, इस समय उनकी संख्या मे कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई थी। १८३१ मे १६६००० वोटर थे और १८४८ मे २,४०,०००। इसके अतिरिक्त एक और गड़-बड़ी थी। कोई कोई मदस्य तो केवल १५० वोटरों-द्वारा २५,००० निवासियों का प्रतिनिधि चुना जाता था और कोई कोई सदस्य ३,००० वोटरों-द्वारा २,२६,००० निवासियों का प्रतिनिधि निर्वाचित किया जाता था।

इन संख्याओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय वोटाधिकार का कितना कम विकास हुआ था और इनमे भी कितनी विषमता थी। इस पर भी एक बुराई और थी। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सदस्यों को कोई भत्ता नहीं मिलता था। इसलिए ये सभायें जनता की प्रतिनिधि नहो थीं, वरन् सरकारी कर्मचारियों की प्रतिनिधि थी। पार्लियामेट मे कुल ४५९ सदस्य थे। प्रारम्भ मे इनमे १३९ सरकारी कर्मचारी थे। होते-होते इनकी संख्या २०० तक पहुँच गई। मतलब यह कि धीरे-धीरे यह सभा मंत्रिमण्डल के हाथ की कठपुतली बन गई। हाउस आव् पीयर्स की और भी दुर्दशा थी। इसमें राज्य-कर्मचारियों को छोड़कर और कोई दिखाई नहीं देता

था। न तो प्राचीन अमीर-उमराओ की तरह उसकी कोई प्राचीन परम्परा थी और न उन्हे अपने प्राचीन गौरव का अभिमान था। इसके अतिरिक्त उनका पद भी अस्थायी था, इसलिए उन्हे उसमे कोई विशेष उत्साह नहीं होता था। शाहन्शाह नेपोलियन ने जिस प्रकार अपनी सीनेट मे काम चलाने के लिए कुछ सुन्दर पुतलों को बैठा रखा था, ठीक उसी प्रकार के ये पीयर्स थे। एक ओर कमज़ोर बादशाह, दूसरी ओर इने-गिने प्रतिनिधियों का हाउस आव् कामन्स और वह भी राग-द्वेष से परिपूर्ण। ऐसी अवस्था मे एक शक्तिसम्पन्न एवं उदार-हृदय हाउस आव् लार्ड्स बहुत कुछ काम कर सकता था। किन्तु इस समय सब ओर अंधकार ही अंधकार था। लुई फ़िलिप और उसके साथियों का विश्वास था कि १८३० का व्यवस्थापत्र प्रजातंत्र की चरम सीमा का परिचायक है। प्रजातंत्रवाद की उग्र बाढ़ रुक गई है। इस समय हमारा कर्त्तव्य उसको उपयोगी बनाना है, जिससे यह सर्वथा व्यर्थ न जाय। इस भ्रम को बढ़ाने मे यूरोप की तात्कालिक परिस्थिति भी सहायता दे रही थी। जुलाई की क्रान्ति से यूरोप के राजाओ मे फिर एक बार खलबली मच गई थी। फ्रांस की नक़ल करके बेलजियम भी हालेंड के हाथ से निकल गया था।

फ्रांस के राजनीतिज्ञो मे इस समय घोर मतभेद था। कोई कुछ कहता था और कोई कुछ। यदि केवल दो पार्टियाँ—एक उदारदल और एक अनुदारदल, एक राज-

तंत्रवादी और दूसरी प्रजातंत्रवादो होतीं तो पार्लियामेंट के काम मे बड़ो सुविधा होती। किन्तु उदारदलवादियों मे स्वयं कई भेद थे। इसी प्रकार अनुदारदल भी कई दलों मे बँटा हुआ था। संक्षेप मे जितने प्रमुख राजनीतिज्ञ थे, उनकी एक अलग पार्टी थी। इस गड़बड़झाले मे कई एक मंत्रिमण्डलों का जन्म हुआ, किन्तु किसी ने पार्लियामेट के बहुमत को अपनी ओर नहीं कर पाया। क्योंकि मंत्रिमण्डल मे स्वयं एकता नहीं होती थी। अन्त मे सन् १८४० में उन्नति और अवनति के बोच मे गिरते-पड़ते ग्यूजोट ने सबको नीचा दिखा दिया। उसके मत्रिमण्डल ने लगातार सात वर्ष तक शासन किया। शाम्रन क्या किया, जुलाई के राजनंत्र को अपनी मरण-शय्या पर पहुँचा दिया।

११ अगस्त १८३० को लुई फ़िलिप का पहला मंत्रिमण्डल बना। ड्यूपोट उसके प्रधान मंत्री थे। उसमे उदार और अनुदार दोनों दल के सदस्य सम्मिलित थे। उसने गिरजा-घरों की चोरी के विशेष क़ानून को बन्द कर दिया, १८१६ मे लुई १६ वें के मारनेवाले जो निर्वासित कर दिये गये थे, फिर बुला लिये गये, प्रेस-सम्बन्धी अभियोग फिर जूरी के द्वारा निपटाये जाने लगे। इसके बाद २ नवम्बर को लेफिटी मंत्रिमण्डल बना। इसमें अधिकांश सदस्य उदारदलवादी थे, किन्तु इनकी उदारता का नमूना देखिए। इन्होंने १० दिसम्बर को राजनैतिक लेखों का विज्ञापन छपाना क़ानून-

विरुद्ध घोषित कर दिया। कुछ दिनों के बाद दसवें चार्ल्स के अन्तिम मंत्रिमण्डल के सदस्यों पर अभियोग चलाया गया। पार्लियामेट के दोनों हाउसों ने उन्हे आजन्म क़ैद की सजा दी। किन्तु इससे भी जनता के हृदय को शान्ति न हुई। बोरबों के राज्य-वंश और पादरियों के विरुद्ध यत्र-तत्र विद्रोह होने लगे। इसलिए हुल्लड़शाही के प्रबल आवेग के कारण लेफिटी ने त्यागपत्र दे दिया और कैसीमीर पेरियर ने प्रधानमन्त्रित्व का कार्य सँभाला। पेरियर मे काम करने की शक्ति थी, किन्तु उसका स्वभाव बड़ा विचित्र था, उद्दण्डता और उदारता दोनो का अनोखा सम्मिश्रण हुआ था। १३ मार्च १८३१ को वह प्रधान मन्त्री हुआ था और २१ मार्च को उसने म्युनिसिपल-संगठन के सम्बन्ध मे एक नया क़ानून बनाया जिससे सरकार को केवल नगर के मेयर नियुक्त करने का अधिकार रह गया, म्युनिसिपलटी के शेष सभी सदस्य जतना के द्वारा चुने जाने का नियम बना दिया गया। इससे जनता मे उसके प्रति कुछ विश्वास उत्पन्न हुआ, किन्तु १० अप्रेल को उसने एक यह क़ानून बनाया कि यदि तीन बार रोकने पर भी कोई सार्वजनिक सभा भङ्ग न की जाय तो सरकार बलपूर्वक उसे तोड़ सकती है। उक्त दोनों विरोधी सुधार हमें उसके विलक्षण स्वभाव का यथेष्ट परिचय देते हैं।

उसने बेलजियम लोगों को सहायता दी जो डच लोगों के विरुद्ध लड़ रहे थे, एनकोना पर अधिकार जमा कर उसने

आस्ट्रियावालों से लेगेशन छुड़ा लिया। इतना ही नहीं, लियन और ग्रोनोविल के विद्रोहों का भी उसने बड़ा तीव्रता से दमन किया। सबसे बड़ा काम जो उसने किया वह फ्रांस की आर्थिक दशा का सुधार था। १० अप्रेल १८३२ को उसने एक घोषणापत्र के द्वारा बोरबों-वंश के लोगों को फ्रांस की भूमि पर पैर रखने से मना कर दिया। वास्तव मे वह जुलाई-राजतन्त्र का पक्षपाती था। उसने अपने सिद्धान्तानुसार निष्पक्षपात होकर राजतन्त्र के विद्रोहियों को, चाहे वे बोरबों-दल के हो चाहे उग्र प्रजातन्त्रवादी हो, कठोरता के साथ नीचा दिखाया।

दुर्भाग्यवश १६ मई १८३० को वह हैज़ा से मर गया। मन्त्रिमण्डल बिलकुल कमज़ोर पड़ा गया। वेण्डो मे उपद्रव खड़ा हुआ। स्वयं पेरिस प्रजातन्त्र ने झगड़ा फैलाया। इधर बेलजियम और हालैण्ड की लड़ाई उग्र रूप धारण करने लगी। अन्त मे ११ अक्टूबर को सोल्ट की अध्यक्षता मे एक नया मन्त्रिमण्डल बना। इसमे थियर्स, ग्यूजोट और ब्रोगली आदि प्रमुख नेता सम्मिलित थे। इन्होंने अधिकतर पेरियर की नीति का ही अनुसरण किया। २२ जून १८३३ को म्युनिसिपलटो की निर्वाचन-प्रणालो के अनुसार राज्य-शासन के विभागों की कौन्सिल जनलर मे निर्वाचन-प्रथा प्रचलित कर दो गई। २८ जून को प्रत्येक कोम्यून के लिए कम से कम एक स्कूल खोलना अनिवार्य कर दिया। इनमें बालका को प्रारम्भिक-

शिक्षा दी जाती थी। सभी प्रकार के पादरियों को सरकार ने स्वीकार कर लिया और उन्हें स्कूलों के निरीक्षण एवं संचालन का अधिकार दे दिया।

यहाँ तक जितने सुधार किये गये, वे सब उचित थे। किन्तु १६ फ़रवरी १८३४ मे यह क़ानून बनाया गया कि यदि कोई प्रजातंत्रवाद के प्रचार करने के लिए छोटे छोटे पेम्फेलट बेचें, तो उसे सरकार से लाइसेन्स लेना चाहिये। इसी प्रकार १० अप्रेल को गुप्त सभाओं के विरुद्ध कड़े क़ानून बनाये गये। २० सदस्यों से अधिक सदस्य किसी संस्था मे नहीं रह सकते थे। इस नियम का पार्लियामेंट मे घोर विरोध हुआ। किन्तु जब ग्यूजोट ने कहा कि अकेले पेरिस मे १६२ क्रान्ति-वादी सभायें हैं और ३०० से ऊपर ऐसी संस्थाओं का पता अन्य प्रान्तों मे चला है, तब यह नियम भी पास होगया। किन्तु इतना करने पर भी गुप्त सभाओं की बाढ़ न रुकी। इनको दबाने के लिए कई जगह सख्ती से काम लेना पड़ा। इस पर खुल्लमखुल्ला उपद्रव होने लगे। अन्त में मन्त्रिमण्डल ने हाउस आव् कामन्स के नवीन निर्वाचन की घोषणा निकाली। किन्तु इस बार जो सदस्य आये उनमे एकता का नाम भी न था। स्वयं मंत्रिमण्डल मे फूट पैदा हो गई। मार्च से नवम्बर तक कोई चार मंत्रिमण्डल बने किन्तु किसी से काम न चला।

अन्त मे पाँचवीं बार ड्यूक डी ब्रोगली की अध्यक्षता

मे नया मंत्रिमण्डल बना। उपद्रवों की सीमा यहाँ तक बढ़ गई थी कि फिसचो ने बादशाह के मारने के लिए एक मशीन बनाई थी। भाग्यवश बादशाह तो बच गया, किन्तु उसके शरीर-रक्षकों मे से कई एक मारे गये। फिर क्या था, सरकार को दमनकारी क़ानूनो का आश्रय लेना पड़ा। ये नियम सितम्बर के क़ानून के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके विषय मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये सख़्ती में नेपोलियन और बोरबों के नियमो से किसी प्रकार कम नहीं थे।

इस समय हाउस आव् लार्ड्स ने तो न्यायालय का रूप ग्रहण कर लिया था। राज्य के विद्रोहियों के अपराधों का निर्णय तो उसको सौंपा ही गया था, किन्तु उसने छोटे-छोटे सभी अभियोगों के निर्णय का भार अपने ऊपर ले लिया। प्रेसों के अभियोग जूरी के द्वारा निपटाये जाते थे, किन्तु वहाँ भी दुर्दशा थी। जिस ओर बहुमत होगया, उसी की जीत होगई। नियमानुसार अभियोग नहीं लगाया जाता था। इन बातों से लोगों की घृणा बढ़ने लगी। समाचारपत्र कौशल-पूर्ण शब्दों में राजतंत्र की निन्दा करने लगे। सन् १८३६ में फिर दो बार लुई फ़िलिप के शरीर पर हमला हुआ। गुप्त सभा-समितियों की अंधाधुन्ध बढ़ने लगी। इसलिए १८३६ मे पीयर्स ने एक नये मंत्रिमण्डल का संगठन किया, इसमे अनुदारदलवालों के स्थान मे उदारदलवालों का बहुमत था। ओगली और ग्यूजोट मंत्रिमण्डल से निकाल दिये गये। किन्तु

यह मंत्रिमण्डल एकदम अशक्त था, इसे स्वयं अपने प्रोग्राम का पता न था। लगान-सुधार का एक प्रस्ताव आया। वास्तव मे राज्य-कोष की दृष्टि से यह प्रस्ताव बहुत सुन्दर था। किन्तु वोटरो को अप्रसन्न करने के डर से मंत्रिमण्डल और बादशाह को इसको स्वीकार करने का साहस न हुआ। थोड़े दिनो मे थियर्स और लुई फ़िलिप मे ही बजने लगी। स्पेन मे कारलिस्ट लोग अपनी इस्बेला रानी के विरुद्ध खड़े हो गये। थियर्स ने इस्बेला का पक्ष लिया और लुई ने इसका विरोध किया। थियर्स का सिद्धान्त एकदम प्रजातंत्रवाद के विरुद्ध था। थियर्स ने त्यागपत्र दे दिया और लुई ने पार्लियामेट की अनुमति लिये बिना उसे स्वीकार कर लिया। पार्लियामेट की इस उपेक्षा से लोगों ने राजतंत्र पर घोर आक्षेप किया। ६ सितम्बर को मोल ने ग्यूजोट आदि की सहायता से नवीन मंत्रिमण्डल बनाया, किन्तु १५ अप्रेल को ग्यूजोट उससे निकाल दिये गये। मोल ने शासन का चार्ज लिया ही था कि नेपोलियन का भाँजा कई एक साथियो के साथ स्टेटवर्ग मे प्रकट हुआ किन्तु इसके दबाने मे सरकार को कुछ भी देर न लगी। प्रिंस यूनाइटेड स्टेट्स भेज दिया गया और उसके साथियों पर अभियोग चलाया गया। किन्तु जूरी ने उन्हे छोड़ दिया। मंत्रिमण्डल मे व्यवस्थापक-सभा की सहायता से उन्हे दण्डित करना चाहा, किन्तु वह सहमत न हुई। इससे मंत्रिमण्डल का व्यवस्थापक-सभा पर क्या प्रभाव था, यह स्पष्ट हो जाता है। किन्तु मोल

ने १८३६ तक किसी तरह प्रधान मंत्री का काम चलाया। इसका कारण बादशाह की सहायता था। उसने दो बार मोल को हाउस आव् कामन्स को भंग करने की आज्ञा दे दी। किन्तु अभी तक जनता का पार्लियामेंट-शासन से यथेष्ट परिचय नहीं हुआ था, क्योंकि दोनों बार जो सदस्य पार्लियामेंट में भेजे गये उनके सामने देश ने कोई प्रोग्राम न रखा। मोल ने अन्तरंग-शासन मे कुछ महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन किये। किन्तु हाउस आव् कामन्स ने उत्साह के साथ कभी उसका समर्थन नहीं किया। एक बात तो यह थी कि वह किसी स्थिर नीति के अनुसार काम नहीं करता था और दूसरे यह कि थियर्स और ग्यूजोट उसके विरोधी थे। यद्यपि उनमे स्वयं एकता नहीं थी तथापि मोल को हराने के लिए वे दोनो मिल गये और ८ मार्च १८३६ को मोल का पतन हो गया।

१२ मई को सोल्ट की अध्यक्षता मे अनुदार और उदार दलवालों का एक संयुक्त मन्त्रिमण्डल बना था। इस समय फ्रांस के लिए एक प्रबल मंत्रिमण्डल की आवश्यकता थी, क्योकि फ्रांस की क्या अन्तरग और क्या बाह्य कोई दशा सन्तोषजनक न थी। इँग्लैण्ड और फ्रांस मे मिस्र के संबंध मे झगड़ा चल रहा था। फ्रांस मुहम्मदअली को मिस्र का बादशाह बनाना चाहता था, किन्तु इँग्लैण्ड इससे सहमत न था। घर मे प्रजातंत्रवादी उभड़ रहे थे। वे केवल राजनैतिक अधिकार नहीं चाहते थे, वरन् उन्होंने फ्रांस की भूमि के न्यायो-

चित बँटवारे का प्रश्न उठाया था। पार्लियामेंट हैरान थी कि इस उलझन को मिटाने के लिए क्या किया जाय। लुई फ़िलिप दिन पर दिन बदनाम होता जाता था। उस पर यह दोष लगाया जाता था कि वह जान बूझकर इसलिए कमज़ोर मंत्री चुनता है जिससे वह उन पर अपना प्रभुत्व जमा सके। सोल्ट का पतन होगया। बादशाह ने झिझकते हुए १ मार्च १८४० को थियर्स को फिर प्रधान मंत्री बनाया। उसने अपने मंत्रिमण्डल के सभी सदस्य प्रजातंत्रवादी चुने। थियर्स की बुद्धि स्वयं बड़ी काल्पनिक थी। वह तो नेपालियन के गौरवान्वित युद्धों को दुहराना चाहता था। किन्तु यह मंत्रिमण्डल केवल दो तीन महीने चला। इस समय उल्लेखनीय बात केवल यह हुई कि नेपोलियन की शव-भस्म आदरसहित फ़्रांस मे लाकर रखी गई। उसके पतन का कारण यह था कि उसने यूरोपीय-राष्ट्रसंघ को इसलिए लड़ने के लिए ललकारा कि वे मिस्र मे फ़्रांस का प्रभाव घटाना चाहते थे। किन्तु बादशाह को यह बात पसन्द न आई। थियर्स ने त्यागपत्र दे दिया। लुई-फ़िलिप ने फिर बिना पार्लियामेंट की अनुमति के उसे स्वीकार कर लिया। किन्तु १८४० मे फिर देश भर मे एक बार सनसनी फैल गई, क्योंकि यूरोप अब भी फ़्रांस को नीचा दिखाने के लिए तुला बैठा था।

इधर बादशाह की दुर्दशा थी। ग्यूज़ोट ने पुनः शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। यद्यपि उसने २९ अक्टूबर को

सोल्ट के लिए प्रधानमंत्रित्व छोड़ दिया था, तथापि वास्तव मे वही इस समय राज्य का प्रधान संचालक था। ग्यूजोट मे व्याख्यान देने की अद्भुत शक्ति थी, इसलिए लोग समझते थे कि उसमे कार्य करने की अपूर्व क्षमता है। किन्तु वास्तव मे वह सबसे बढ़कर ढुलमुल यकीन था। उसने एक बार कहा था—मध्यम श्रेणी के लोगो मे अपने दैनिक कार्यों के अतिरिक्त असाधारण कार्य करने का कभी प्रलोभन नही होता। यदि उनको ऐसा अवसर दिया भी जाता है, तो वे घबरा जाते हैं। किस काम के लिए उत्तरदायित्व उठाना उन्हे दुःखदायी मालूम होता है। उन्हे ऐसा मालूम होता है जैसे मछली पानी से निकाल कर धरती पर चलाई जाती हो। वे पुनः अपनी पुरानी दिनचर्या मे लौट जाना चाहते हैं। यह कथन मध्यम-श्रेणी के लिए तो ठीक है ही, स्वयं ग्यूजोट के लिए उपयुक्त है। ऐसा मनुष्य प्रधानमंत्री हो और फिर उसका यह विश्वास हो कि सिवाय ऐसे मनुष्यों के देश मे और कोई है ही नहीं, क्योंकि उस समय जनता का अर्थ ही मध्यमश्रेणी हो जाता था; इसलिए जब कभी उसके सामने जनता मे अधिकाधिक परिमाण मे वोटाधिकार विस्तृत करने का प्रश्न आता था तब इसकी उपयोगिता उसकी समझ मे कुछ भी नही आती थी। बात यह थी कि मध्यमश्रेणी के नीचे भी एक निम्नश्रेणी थी जिसका उसे कुछ पता न था। आजकल उसमे भी राजनैतिक जागृति फैल रही थी। इसलिए उसके

बादशाह को और स्वयं उसकी स्थिति दिन-प्रति-दिन डॉवाडोल होती जाती थी। किन्तु इसको हम अनुदारदलवादी मंत्री नही कह सकते, क्योंकि जहॉ तक आवश्यक समझता था वहॉ तक वह सुधार का पक्षपाती था।

पहले-पहल १८४० मे वोटाधिकार को अधिक विस्तृत करने की चर्चा उठी और १८४८ तक यह आन्दोलन जारी रहा। कुछ लोग तो चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य को वोटाधिकार दिया जाय और कुछ नरमदलवालो की राय थी कि जज, वकील आदि लोगों को, जिनका समाज मे उचित मान है, अवश्य वोटाधिकार दिया जाय और दूसरी मॉग यह थी कि राज्यकर्मचारी अधिक संख्या मे हाउस आव् कामन्स मे बैठ सकें और यदि बैठें, तो जब तक वे सदस्य रहे, तब तक उनको तरक्की न हो। वास्तव मे ये दोनो सुधार उस समय आवश्यक हो रहे थे। पहले सुधार से जनता को विश्वास हो जाता कि अभी तक उनकी सामाजिक समता की आशा दुराशा-मात्र नहीं है और दूसरे का फल यह होता कि हाउस आव् कामन्स मे रिश्वत अथवा आर्थिक लोलुपता का बाज़ार कम हो जाता। किन्तु ग्यूजोट ने दोनो सुधारो को अस्वीकृत कर दिया। इस पर १८४२ मे लेमरटाइन ने प्रधान-मंत्री पर एक अच्छा कटाक्ष किया था—तुम पाषाण-हृदय होकर हमारे सभी सुधारों का विरोध करते हो। क्या राज्य के संचालक के लिए जनता के प्रति ऐसा कठोर भाव धारण करना

उचित है ? यदि ऐसी ही बात है, तो राजनीतिज्ञो की क्या आवश्यकता ? यह काम तो जज और वकील बड़ी आसानी से कर सकते हैं।

किन्तु ग्यूजोट की इस अस्वीकृति मे भी एक रहस्य था। बादशाह सुधारो का प्रबल विरोधी था। १८४२ ई० मे बादशाह का सबसे बड़ा लड़का, जिसको युवराज का पद मिल गया था और राजवंश मे केवल एक ऐसा आदमी था जिसे भविष्य के अवश्यम्भावी सुधारों का पूरा ख़्याल था, मारा गया। इस कारण बादशाह ग्यूजोट के प्रति कठोर हो गया और ग्यूजोट ने सुधारों के नाम अपने कान बन्द कर लिये। इसलिए उसके सात साल के प्रधानमन्त्रित्व की घटनाये थीं, राज-विद्रोह, दमनकारी प्रेस-ऐक्ट, आर्थिक एवं प्रबन्ध-सबन्धी शोचनीय दशा। इससे यह तो मालूम हो गया कि यह सरकार बहुत दिन नहीं टिक सकती, साथ ही लोग इसको अनादर की दृष्टि से देखने लगे। किन्तु ग्यूजोट ने जैसे-तैसे अपना काम चलाया, उसने साम, दाम, दण्ड, भेद से काम लिया। १८४२ एवं १८४६ मे पार्लियामेंट का नवीन निर्वाचन भी हुआ। उसने छोटे-मोटे दो एक सुविधाजनक क़ानून भी पास कराये। किन्तु जिस समय अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न सामने आये, उस समय ग्यूजोट की एक न चली। १८४२ मे बेलजियम के साथ व्यापारिक संधि करनी चाही, किन्तु अर्थशास्त्रियों ने इसे स्वीकार न किया। इसी प्रकार वह इंग्लैंड के साथ संधि करने मे असमर्थ रहा।

ग्यूज़ोट की लोक-प्रियता घटने लगी, वह इंग्लैंड का पक्षपाती प्रसिद्ध किया जाने लगा। इसलिए उसने स्पेन की दो राजकुमारियो से एक तो लुई-फ़िलिप के भाई से और दूसरे बोरबो-वंश के राजकुमार से विवाह कराया। किन्तु इसके लिए उसको आस्ट्रिया की स्वीटजरलैण्ड एवं इटली सम्बन्धी नीति का समर्थन करना पड़ा। इससे बड़ा अनर्थ हुआ; क्योंकि आस्ट्रिया का स्वीटज़रलैण्ड और इटली मे हस्तक्षेप करने देना फ्रांस की परम्परागत नीति के विरुद्ध था। अब घर की हालत सुनिए। यहाँ पर धार्मिक प्रश्न बड़े ज़ोरो से छिड़ा हुआ था। चार्ल्स (दसवें) के समय मे पादरियो का प्रभुत्व बढ़ा था और इसलिए चार्ल्स की लोक-प्रियता घटने लगी। किन्तु जुलाई के राजतंत्र को पादरियो से कोई सहानुभूति नहीं थी। इसलिए वे बिगड़ रहे थे। हाँ, १८३० की व्यवस्थापक-सभा मे सार्वजनिक शिक्षा मे सबको एक समान भाग लेने का अधिकार दे दिया गया था। मोटलेम्बर्ट और लेकोरडेयर सरीखे पादरियो को भी यह अनुभव होने लगा था कि अब उच्च श्रेणी की सहायता से काम नहीं चलने का, इसलिए वे जनता की सहानुभूति अपनी ओर करना चाहते थे। वे चाहते थे कि पादरियों को शिक्षा-प्रचार की पूर्ण स्वतंत्रता दी जाय।

१८३३ मे एक क़ानून बना था। उसके द्वारा धार्मिक संघों को राष्ट्रीय पाठशालाओ के लिए शिक्षक तैयार करने का

अधिकार दे दिया गया था। किन्तु सेकेन्डरी शिक्षा एकदम विश्वविद्यालय के हाथ मे थी। उसमे उच्च शिक्षा की डिगरियाँ प्राप्त करने के लिए जनता के स्कूलों से विद्यार्थी भेजे जाते थे। १८३३ मे ग्यूजोट ने चाहा कि ज्यूसेट पादरियो को भी सेकेन्डरी स्कूल खोलने का अधिकार दे दिया जाय, किन्तु वह हाउस आव् कामन्स के विरोध से सफल न हुआ। १८४४ मे विलीमेन ने जो उस समय का शिक्षा-सचिव था इस प्रकार का एक और प्रस्ताव किया। किन्तु उसकी अकस्मात् मृत्यु हो गई। उसके बाद सेलवेण्डी शिक्षा-सचिव हुए। वे ऐसा विवादास्पद प्रश्न उठाने से डरते थे। इसलिए उन्होंने सार्वजनिक-शिक्षा-कौन्सिल मे थोड़े से पादरियो को ले लिया। इस प्रकार रोमन-केथोलिक लोगो को थोड़ा-बहुत शान्त किया। किन्तु प्रश्न तय न हुआ।

यद्यपि इस समय देशी और विदेशी दोनो स्थिति अनुकूल न थी, तथापि सरकार ने अलजीरिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यह सरकार के लिए कम गौरव की बात न थी। १८३० मे इस आक्रमण का प्रारम्भ हुआ था और १८४७ मे समाप्त हुआ। इस बीच मे फ्रांस मे दर्जनों मंत्रि-मण्डल बने और बिगड़े। हज़ारों सैनिक एवं पार्लियामेंट-संबन्धी रुकावटें उपस्थित हुईं किन्तु राजनीतिज्ञो ने जिस काम को उठाया, उसको पूरा करके दिखा दिया। जिस समय दसवें चार्ल्स ने अलजीरिया को घेरने की आज्ञा दी थी उस समय कोई नहीं

कह सकता था कि इसमे इतनी देर लगेगी और इसका परिणाम इतना व्यापक होगा, इसका एक कारण और था। वास्तव मे फ्रेञ्च लोगो ने पहले समूचे प्रान्त पर आधिपत्य प्राप्त करने की बात नहीं सोची थी। किन्तु ज्यों-ज्यों वहाँ के निवासियों का विरोध बढ़ता गया, त्यो त्यो फ्रेञ्चो की उसे जीतने की दृढ़ता बढ़ती गई। अन्त मे फ्रेंच ४० लाख मनुष्यो के भाग्य-विधाता बन बैठे। अन्य अन्य स्थानो मे यूरोप के साम्राज्य का एक हेतु यह भी रहा है।

इस बृहत आक्रमण मे एक आदमी ने ख़ूब नाम कमाया। यह मार्शल ब्यूगोड था। इसने युद्ध और शासन दोनो कार्यों मे यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर ली थी। किन्तु उसे भी विवश होकर अपने गवर्नर-जनरल पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। उसके स्थान पर बादशाह के सबसे छोटे लड़के ड्यूक डी ओमेल को नियुक्त करने का निश्चय हुआ। इस पर तात्कालिक प्रधान मन्त्री मार्शल सौल्ट ने आपत्ति की। उसे भी १९ सितम्बर १८४७ को त्याग-पत्र देना पड़ा और ग्यूज़ोट ने प्रकाश्य रूप से प्रधान मन्त्रित्व ग्रहण कर लिया।

किन्तु इस समय की स्थिति आशाजनक नहीं थी। १८४२ से फ्रांस मे रेलवे का बनाना शुरू हो गया था। इसका सारा भार सरकार पर ही था। इसलिए बजट मे बड़ी कमी पड़ गई थी, सरकार पर अत्यधिक क़र्ज़ हो गया था। इधर लगातार दो वर्ष के अकाल पड़ने से बाज़ार भी मन्दा

हो गया था। चारों ओर हाहाकार मच गया था। इसी एक बात से स्थिति की भयङ्करता मालूम हो सकती है कि ग्यूजोट को अपने मन्त्रिमण्डल के लिए सदस्य नहीं मिलते थे। लोगों पर भावी क्रान्ति का आतङ्क छाया हुआ था। १८४८ मे जो पार्लियामेन्टरी वाद-विवाद हुए थे, उनमे यह बात स्पष्ट झलक रही थी, किन्तु ग्यूजोट को न तो इनसे कोई उत्तेजना हुई और न कोई घबराहट।

इस प्रकार उपेक्षा दिखा कर ग्यूजोट ने कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया। देश मे वोटाधिकार के लिए भीषण आन्दोलन मचा हुआ था। नरम से नरम दल के लोग भी वोटाधिकार बढ़ाने के पक्ष मे थे। इसी दल के कुछ नेताओ ने दावत देने का एक ढंग निकाला था। उसमे दावत के बाद व्याख्यान हुआ करते थे। इन व्याख्यानो मे वोटाधिकार बढ़ाने के प्रबल प्रमाण दिये जाते थे। २२ फ़रवरी को ऐसी ही एक दावत की घोषणा निकाली गई थी। सरकार ने उसको बन्द कर दिया। किन्तु आस पास के लोग जमा हो गये। यद्यपि उस समय समाचार-पत्र धैर्य रखने की सलाह दे रहे थे, गुप्त सभा-समितियाँ भी इस अवसर को उभाड़ने के लिए उपयुक्त न समझती थीं किन्तु लोगों ने न माना। २२ और २३ फ़रवरी को लड़ाई शुरू हो गई। दुकानदारों ने भी विद्रोहियों के साथ राष्ट्रीय-गार्ड बनाये और राष्ट्रीय-गीत गाने लगे।

लुई-फ़िलिप को विश्वास हो गया कि उसकी प्रजा ने उसे

छोड़ दिया है। जिन लोगों ने उसे सिंहासन पर बैठाया था, वे ही अब उसे उतारने को तत्पर हो गये। २३ फ़रवरी की रात्रि को उसने फिर ब्यूगोड को पेरिस का संरक्षक बनाया। फिर उदारदलवालों को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। किन्तु समय निकल गया था। विद्रोहियों ने पेरिस पर अधिकार कर लिया था। २४ के दोपहर को उसने अपने नाती के लिए फ्रांस का राज्यसिंहासन रिक्त करना चाहा। किन्तु अब कोई उसकी बात सुनने के लिए तैयार नही था। पार्लियामेट पर हुल्लड़शाही ने अधिकार कर लिया और अस्थायी रूप से एक मन्त्रिमण्डल निर्वाचित करके और फ्रेंच-सरकार को पूर्ण प्रजातांत्रिक बना डाला।

---

(१०)

१८४८ की क्रान्ति

(२४ फ़रवरी १८४८— १ दिसम्बर १८५१)

१७८९ का वर्ष फ़्रांस के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि उसमे फ़्रांस मे राजनैतिक एवं सामाजिक समता का सूत्रपात हुआ था। किन्तु १८१५ के दमन के बाद १८४८ की क्रान्ति फ़्रांस के लिए १७८९ की क्रान्ति से कुछ कम महत्त्व-पूर्ण नही है। अन्तर केवल इतना ही है कि उसमे अधिक रक्तपात हुआ था और इसमे कम। उससे यूरोप भर मे खल-बाली मच गई थी, इसका प्रभाव भी यूरोप पर कुछ कम न पड़ा था। इसकी विशेषता यह थी कि इसका रूप राष्ट्रीय एवं प्रजातांत्रिक था।

जिस परिस्थिति मे इस क्रान्ति का जन्म हुआ था, यहाँ पर उसका सूक्ष्मावलोकन करना असंगत न होगा। फ़्रांस के प्राचीन अमीर-उमराओं का पूर्णरूपेण मूलोच्छेदन हो गया था। नेपोलियन ने अमीर-उमराओं का जो एक नया वर्ग खोला था, उसकी फ़्रांस मे अच्छी प्रतिष्ठा न हो पाई थी। नेपोलियन के पतन के बाद उत्तराधिकार के कठोर नियमो से उनके पैर और भी उखड़ गये। अधिकांश उपाधिधारी सज्जन बोरबो-वंश के पतन के बाद लुई-फ़िलिप के साथी बन गये,

बहुत थोड़े से अमीरों ने घमंड के मारे लुई-फ़िलिप का साथ देना उचित न समझा। किन्तु ये दोनों पक्ष इतने दुर्बल हो गये थे कि कोई भी राजवंश इन पर भरोसा नहीं कर सकता था।

पादरियों की अवस्था अमीर-उमराओं से कुछ अच्छी नहीं थी। दसवे चार्ल्स के समय मे उन्होने फिर अपने गौरव का स्वांग रचना चाहा था। इसलिए उदारदलवादी उनसे एक-दम रुष्ट हो गये थे। अब तो वे भी समझ गये कि धीरे धीरे समस्त शक्ति जनता के हाथ मे जा रही है, इसलिए वे जनता की सहानुभूति पाने के लिए सुधारों का समर्थन करने लगे थे। किन्तु वास्तव मे रोमन-कैथोलिक मत का सिद्धान्त ही था कि शासन मे धर्म्माधिकारियों का सर्वोपरि हाथ होना चाहिए, इसलिए वे स्वतंत्रता का समर्थन नहीं कर सकते थे। जब कभी उन्होने राजतंत्र को प्रबल देखा और उसके द्वारा अपने अधिकारों के उद्धार की सम्भावना देखी तो तुरन्त उनमे वे जा मिले। मध्यम श्रेणी के लोगों को भी यह विश्वास हो गया था कि अब वे क्रान्तिकारी फ़्रांस की गद्दी पर कोई बादशाह नहीं बैठा सकता, बादशाह चाहे जितना ही प्रजासत्तात्मक क्यों न हो। इसी प्रकार उदारदलवाले भी लुई-फ़िलिप के शासन से हताश हो गये थे। वोटरलोगो का ध्यान केवल अपने अभ्युदय की ओर था। किन्तु रात-दिन की लड़ाई-झगड़े के कारण वे भी लुई-फ़िलिप से निराश होगये थे।

इसलिए २३ फ़रवरी की क्रान्ति में लोगो का सबसे पहला ध्यान वोटाधिकार को विस्तृत करने की ओर था। यद्यपि किसानों को अपने राजनैतिक अधिकारों मे विश्वास नहीं था, तथापि वे इस विषय मे समानता की इच्छा रखते थे। इस निराशा-जनक वायुमण्डल मे यदि किसी को कुछ आशा थी, तो वह शिल्पीसमाज था। उद्योग-धधों की उन्नति होने से उनका उत्साह बढ़ रहा था। वे फ्रांस मे वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना करना चाहते थे, जिससे प्रत्येक मनुष्य को वास्तविक नागरिक के अधिकार प्राप्त हों। मध्यम श्रेणी के लोग अभी तक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए राजतंत्र का समर्थन कर देते थे, किन्तु अब उनको मालूम हो गया था कि यह बालू की दीवार है। किसानो को राजनैतिक अधिकारो की उतनी ख़ुशी नही थी जितनी कि यह आशा थी कि वे शान्ति-पूर्वक कृषि कर सकेगे और उसकी पैदावार को बेच सकेंगे।

सुतरां २६ फ़रवरी को सबने एक स्वर से अस्थायी सरकार को प्रजातंत्र घोषित कर दिया। किन्तु इस प्रजातंत्र का क्या रूप होना चाहिए, इसका स्थिर करना कठिन हो रहा था। क्योंकि १७८९ से न जाने कितने तरह के प्रजातांत्रिक व्यवस्था-पत्र फ्रांस में बनाये गये थे किन्तु यथेष्ट सफलता किसी को नहीं हुई थी। इस संदिग्धावस्था मे लोग बड़े हैरान थे। २४ फ़रवरी को लेमरटाइन ने एक व्याख्यान दिया। उसमे उसने अस्थायी सरकार से प्रस्ताव किया कि

देश मे नवीन निर्वाचन की धूम मच गई। चारो ओर उत्साह उमड़ने लगा। नवीन वोटरो की सूची तैयार की गई। एप्रिल मे निर्वाचन की तिथि निश्चित हुई। प्रजातंत्रवादी सबसे अधिक उत्साही थे, क्योकि उनका नाम ही लोगो के लिए काफी आकर्षण था। कैथोलिक और बोरबों-वंश के अनुयायी भी उत्साह-हीन नहीं थे; वे समझे बैठे थे कि देश उनके साथ है। यहाँ तक कि बोनापार्ट के प्रेमी भी उत्साह से भरे हुए थे। दो एक प्रान्तो मे नेपोलियन के क़िस्से अब भी बड़े प्रेम से कहे सुने जाते थे। इस समय केवल लुई-फ़िलिप के भक्तो का मस्तक झुका हुआ था, क्योंकि उनकी हार अभी ताजी थी। निर्वाचन का कार्य निर्विघ्न शान्ति-पूर्वक निष्पन्न हो गया। ९०० सदस्यों मे १०० सदस्य तो उदारदल-वादी और ८०० प्रजातंत्रवादी थे। किन्तु प्रजातंत्रवादियों के विचारो मे भी आकाश-पाताल का अन्तर था।

४ मई को बृहत् सभा का प्रथम अधिवेशन हुआ। किन्तु लुई-फ़िलिप के पतन और आज की स्थिति मे बड़ा परिवर्तन हो गया था। क्योंकि अस्थायी सरकार ने बहुत से ऐसे सुधार कर दिये थे जिनके लिए वह सचमुच धन्यवाद की पात्र कही जा सकती है। राजनैतिक क़ैदियों को भी मृत्यु की सज़ा देना बन्द कर दिया गया था। राजनैतिक क़ैदियों को कठोर और बीभत्स दण्ड देना बन्द कर दिया गया था। समाचार-पत्रों पर से भी भारी टेक्स उठा लिया गया था। १८३५

का प्रेस ऐक्ट-सम्बन्धी क़ानून तोड़ दिया गया था, उपनिवेशों मे कुली-प्रथा बन्द कर दी गई थी और फ़्रांस मे विदेशियों के आने की सुविधा कर दी गई थी। इन सुधारों के द्वारा हम आसानी से जान सकते हैं कि इन लोगो मे हृदय था। ये न केवल देश का हित चाहते थे, वरन मनुष्यमात्र के सुख के पक्षपाती थे।

अस्थायी सरकार के हृदय था, यह स्पष्ट हो चुका। किन्तु वह कितनी अनुभवहीन थी, उसके भी दो एक उदाहरण सुन लीजिए। अभी तक राष्ट्रीय फ़ौज का संगठन बड़े सोच-विचार से होता था, किन्तु ८ मार्च को उसने यह नियम बना दिया जिसके अनुसार २१ वर्ष से लेकर ५५ वर्ष तक के सभी फ़्रेंच इसमे सम्मिलित हो सकते थे। परिणाम इसका यही हो सकता था कि जिन्हें किसी बात का ज्ञान नहीं था, वे भी सैनिक हो गये। ८ मार्च को प्रजातन्त्र की ओर से यूरोप के राष्ट्रों के नाम एक पत्र प्रकाशित किया गया। उसमें लेमरटाइन ने कहा—१८१५ मे फ़्रांस ने यूरोप के राष्ट्रों के साथ जो संधियाँ की थीं, फ़्रेंच-प्रजातंत्र नियमानुसार उनसे बाध्य नहीं है। किन्तु यूरोपीय राष्ट्रो को काग़ज़ी शर्तों की अपेक्षा, जो बात बात पर तोडी जा सकती हैं और तोड़ी जाती हैं, फ़्रेंच-प्रजातंत्र की सदिच्छा पर अधिक विश्वास करना चाहिए। उनकी कठिनाई का उदाहरण सुनिए। कुछ दिनों में सरकार को रुपयों की बड़ी ज़रूरत हुई। बजट की कमी को पूरा करने के लिए जो बाण्ड निकाले गये थे, उन्हे चुकाना

था, इधर सरकार के बदल जाने के कारण लोग धड़ाधड़ बैंकों मे से रुपया निकलवा रहे थे। इसलिए सरकार ने साधारण टैक्स डेवढ़ा कर दिया, चुंगी पहले ली जाने लगी, रहननामो पर एक और टैक्स लगा दिया गया। यद्यपि कार्याधिकारियों के हृदय मे कोई पाप नही था, साथ ही वे बड़ी चतुरता से जनता को यह कड़वी गोली खिलाना चाहते थे, किन्तु जनता ने सरकार के इन नियमो का स्वागत न किया।

किन्तु इनके सामने आर्थिक समस्या से भी एक और गुरुतर समस्या उपस्थित हो गई थी। प्रेस ऐक्ट के टूट जाने से कई एक ऐसे समाचार-पत्रों का जन्म हुआ था जो बड़े भयंकर थे। इनमे साम्यवाद की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त प्रथम क्रान्ति के समय की बहुत सी सभा-समितियाँ फिर प्रकट हो गई थीं। अबकी बार वे एक प्रबल संगठन बनाना चाहती थीं। राष्ट्रीय फ़ौज से भी उनको सहायता मिलने की आशा थी। फिर क्या था, पेरिस मे उपद्रव शुरू हो गये। १६ मार्च को राष्ट्रीय फ़ौज के कुछ सदस्य निकाले गये। थोड़ा सा झगड़ा उस समय हो गया। १७ मार्च को कुछ लोगों ने कहा कि बृहत् सभा का निर्वाचन स्थगित किया जाय, क्योंकि उन्हें सभा मे राजतंत्रवादियों के पहुँचने की आशंका थी। १७ अप्रेल को वे कहने लगे कि यदि ऐसा हुआ तो हमको तलवार उठानी पड़ेगी। अस्थायी सरकार ने भी इन लोगों को समझाना-बुझाना चाहा। इससे उनका घमंड और भी बढ़ गया।

इतने ही मे दुर्भाग्यवश साम्यवाद का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। बस, विद्रोह की पूरी तैयारी होगई। साम्यवादी लोग बहुत दिनो से यह प्रचार कर रहे थे कि राष्ट्र का सबसे पहला काम बेकार लोगो को मज़दूरी दिलाना और मज़दूरों का इस प्रकार सगठन करना है जिसमे प्रत्येक मजदूर को अपने काम के पश्चात् शिक्षा और विश्राम के लिए यथेष्ट समय मिले। १८३९ मे लुई-ब्लेंक ने अपनी पुस्तक 'श्रमजीवियो का संगठन' के द्वारा जनता मे यह बात फैला दी थी कि मामूली क़ानूनो के द्वारा श्रमजीवियों का बडा सुन्दर संगठन बन सकता है।

अस्थायी सरकार स्वयं इस साम्यवाद की विरोधी नही थी। इसलिए उसने दो बडे जटिल कामो मे हाथ डाला। २७ फ़रवरी को राष्ट्रीय कारख़ानों की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। उसके द्वारा जिन लोगो को आर्थिक कठिनाई के कारण कही काम नहीं मिलता था, उनके लिए मिट्टी के काम खोले गये। वेतन तो थोड़ा मिलता था किन्तु सबको एक समान दिया जाता था। २८ फ़रवरी को लुई-ब्लेंक की अध्यक्षता मे मज़दूरो का एक कमीशन बैठाया गया, जिसमे भिन्न भिन्न उद्योग-धंधो के २०० सदस्य सम्मिलित थे। इनको पार्लियामेट के सामने मज़दूरों की समस्या के हल करने का भार सौंपा गया।

लेक्ज़मवर्ग-पैलेस मे इस कमीशन की बैठक होने लगी। उसने बहुत से प्रस्ताव स्वीकृत किये। किन्तु उनमे बहुत से

प्रस्ताव ही रहे, कभी कार्यरूप मे परिणत नहीं हुए। सहयोग-सिद्धान्त के अनुसार बहुत से कारख़ाने खोले गये, कारख़ानों मे काम करनेवालों के घंटे निश्चित कर दिये गये। किन्तु साम्यवादियों ने जो सबसे अधिक आकर्षक प्रस्ताव स्वीकृत किया था, वह यह है कि उत्पादक और उपभोक्ता के बीच में जो बहुत से मध्यस्थ होते हैं, किसी प्रकार उनकी आवश्यकता दूर कर दी जाय। जैसे रेल, नहर, खान इत्यादि सभी चीज़ें सरकार अपने अधिकार मे कर ले और स्वयं अपनी देख-रेख मे इन उद्योग-धंधों को चलावे, इससे जमींदारों और कम्पनी के डाइरेक्टरो की आवश्यकता न रह जाय। इसी प्रकार बैंक आदि व्यापारी कारख़ानों को भी सरकार अपने हाथ मे ले ले और स्वयं लोगों को रुपया उधार दे। यहाँ तक कि बाज़ार में दूकानदारों का काम अनावश्यक बतलाया गया और सरकार-द्वारा पहले ही प्रत्येक चीज़ का निर्ख़ तै कर देने का निश्चय हुआ।

यद्यपि ये विचार कभी कार्यरूप में परिणत नहीं हुए, तथापि इस दृष्टि से कि आज भी साम्यवादी इन्हीं सिद्धान्तों के पीछे पड़े हुए हैं, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उपर्युक्त कमीशन की एक और विशेषता थी। वह इन सिद्धातों के लिए बल-प्रयोग नहीं करना चाहता था, किन्तु तो भी सम्पत्तिमान् पुरुषों में इससे हलचल मच गई। राष्ट्रीय कारख़ानों का काम भी कोई नया काम नहीं था। एलीज़बेथ के पूअरला और राष्ट्रीय-

पञ्चायत के घोषणापत्र में भी सभी योग्य व्यक्तियों को काम जुटाने एवं असहायों की सहायता करने की इच्छा प्रकट की गई थी। किन्तु इसको व्यावहारिक रूप देना लोहे के चने चबाना था। दो ही तीन सप्ताहों मे १,००,००० आदमियों ने इन कारखानों मे काम करने क लिए प्रार्थना-पत्र भेजे। किन्तु इन सभों को काम आवे तो कहाँ से। अयोग्य व्यक्तियों को भी योग्य व्यक्तियों की तरह वेतन मिलने लगा। उन लोगो की बन पड़ी। जब सरकार का इस अंधाधुन्ध व्यय से दिवाला निकलने का समय आया और इन कारखानो के बन्द होने की नौबत आई, तो इन आराम-तलब लोगो ने हुल्लड़ मचाना शुरू किया।

अस्थायी सरकार ने प्रायः सभी काम देश के हित की दृष्टि से किये और सच पूछा जाय तो उसे अच्छी सफलता मिली। क्योंकि उस समय शासन के सभी विभाग अस्त-व्यस्त दशा में थे, किन्तु बिना एक बूँद लोहू बहाये उसने देश को अपने कार्यों से सन्तुष्ट रखा। अन्त मे ८ मई को उसने साफ़ कह दिया कि अब देश को स्थायीरूप से कार्यकारिणी-समिति के संगठन की आवश्यकता है। सुतरां पार्लियामेंट ने नवीन निर्वाचन की बाट देखे बिना ही १० मई को ५ आदमियों की कार्यकारिणी-समिति बना दी। इसमे एक भी साम्यवादी नहीं था, इसलिए साम्यवादी बहुत असन्तुष्ट हुए। १५ मई को कुछ लोगों ने पार्लियामेंट पर ही धावा कर दिया।

राष्ट्रीय फौज ने इस उपद्रव को शान्त किया। फिर लोगों का ख़ून उबल पड़ा। इस उपद्रव के लिए पार्लियामेंट ने कार्य-समिति को उत्तरदायी ठहराया, यदि वह इतनी कमज़ोर न होती तो यह दुर्घटना कैसे हो सकती। इतने ही मे पार्लियामेंट ने कुछ ऐसे प्रस्ताव पास किये जिनसे यूरोप मे सनसनी फैल गई। उनका उद्देश्य यह था कि जर्मनी मिलकर एक हो जाय। इटली और पोलेण्ड स्वतंत्र कर दिये जायँ। इधर राष्ट्र राष्ट्रीय कारख़ानों का बोझ नहीं सँभाल सकते थे। पार्लियामेंट की स्वयं यह राय थी कि ये धीरे-धीरे बन्द कर दिये जायँ। किन्तु उसने कार्य-समिति से इनको बन्द करने का बड़ा आग्रह किया। वह लाचार हो गई। २१ जून को उसने यह नियम बना दिया कि १८ वर्ष से २५ वर्ष तक की आयुवाले आदमी या तो कारख़ाने ख़ाली कर दें या सैनिक हो जायँ। इससे ऊपर की आयुवाले अभी कुछ दिनो तक रखे जायँगे।

इस निमय के अनुसार कार्यवाही शुरू हुई। लोगों मे गड़-बड़ो फैलनी शुरू हुई। मालदार प्रान्तों मे तो राष्ट्रीय फ़ौजों ने धनी-मानी लोगों का साथ दिया, किन्तु कंगाल प्रान्तों मे फ़ौजें भी विद्रोहियों से जा मिलीं। पेरिस चारों ओर से घेर लिया गया। कार्य-समिति के पाँचो सदस्यों ने त्याग-पत्र दे दिया। एक-मात्र युद्ध-सचिव जनरल कवेनक राष्ट्र के संचालक रह गये।

चार दिन तक पेरिस की गलियों मे घमासान युद्ध और रक्तपात होता रहा, अन्त मे कवेनक ने साम्यवादी

क्रान्तिकारियों को दबा दिया। किन्तु लोगों का हृदय शान्त न हुआ। इस समय पार्लियामेंट ने एक और बड़ी मूर्खता की। कई हज़ार विद्रोहियो को देश-निकाला देकर घोर अपयश अपने सिर पर लिया। यद्यपि कवेनक ने लोगों की उभड़ी हुई उमंग को दबा दिया था तथापि वह स्वयं एक पक्का प्रजातंत्रवादी था, इससे मध्यम श्रेणी एवं सुदूर प्रान्तवासी उसको विश्वास की दृष्टि से नहीं देखते थे। कवेनक ने उदार-दलवादियो की सहायता से एक नरम मंत्रिमण्डल बनाया। उसने फिर समाचार-पत्रों से ज़मानत मॉगी, सभा-समितियों को, यदि उनके सञ्चालकों ने सरकार का विरोध न करने का बचन न दिया तो, बन्द कर दिया। इसी प्रकार पार्लियामेंट के उन सदस्यो पर जिन्होने पिछले विद्रोह के साथ थोड़ी भो सहानुभूति दिखाई थी, अभियोग चलाया गया।

कवेनक मे एक और विशेषता थी। वह जिस प्रकार साम्यवादियो को दबाना चाहता था, उसी प्रकार राजतत्र-वादियों एवं बोनापार्ट के साथियों को दबाने की उसकी इच्छा थी। किन्तु उसके उपर्युक्त प्रगति-विरुद्ध नियमों का किसी ने समर्थन न किया। किसी एक इलाके से राजकुमार लुई-नेपोलियन पार्लियामेंट का सदस्य चुना गया। तत्काल पार्लियामेंट ने कवेनक का साथ छोड़ दिया और लुई-नेपोलियन को अपना अगुआ मान लिया। इस प्रकार १८४८ के नवम्बर मे फ्रांस का जो नया संगठन हुआ, उसमे उसके निर्माताओं की कोई दूर-

दर्शिता प्रदर्शित नहीं होती। उनके पक्ष मे केवल एक बात कही जा सकती है, वह यह कि इस समय परिस्थिति बड़ी जटिल थी।

व्यवस्था-पत्र के उपोद्घात मे मनुष्य के अधिकारो एवं कर्त्तव्यो की पुरानी चर्चा थी। व्यवस्थापक-सभा मे ७०० सदस्य थे। प्रत्येक मनुष्य को वोट देने का अधिकार दिया गया था। यह सभा स्वयं अपने अधिवेशनों की तिथि इत्यादि निश्चित करती थी और तीन वर्ष के पहले इसको कोई भंग नहीं कर सकता था। व्यवस्थापक-सभा एक राज्य-परिषद् का निर्वाचन करती थी, जो छ: वर्ष तक काम करता था। इसका काम क़ानूनो का मसविदा बनाना था। यह नियम बनाया गया कि व्यवस्थापक-सभा का सभापति चार वर्ष के लिए चुना जाय। उसको अपने मंत्री चुनने एवं अलग करने का पूर्ण अधिकार था। चार वर्ष के बाद फिर कभी सभापति नही चुना जा सकता था। पहली बात तो यह थी कि केवल एक हाउस रखा गया था और वह भी एक निश्चित समय के भीतर भंग नहीं किया जा सकता था। सभापति के चुनाव का क्षेत्र अत्यन्त विस्तीर्ण कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त उसके दुबारा चुने जाने की व्यवस्था न करके उसको अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने का लालच दिया गया था। चौथी बात यह थी कि वही व्यस्थापक-सभा का सभापति था और वही मंत्रिमण्डल का अधिष्ठाता भी था। सबसे बढ़कर बुराई यह थी कि तीन चौथाई सदस्यों की तीन बार

अनुमति लिये बिना इस व्यवस्था-पत्र मे कोई संशोधन नही किया जा सकता था ।

नवीन संगठन के प्रारम्भ मे ही कठिनाइयों का सूत्र-पात हुआ । जनता ने अभी अपने वोटाधिकार का सदुपयोग करना नही सीख पाया था । इतना बडा देश और उसमे सभी को सभापति चुनने का अधिकार । जो इतने विस्तीर्ण वोटों के आधार पर सभापति चुना जायगा, वह भला फिर एसेम्बली की बात क्यों मानने लगा । देश अभी तक स्वेच्छाचारिता के बन्धन से अलग न हुआ था और विशेषकर जब देश मे राजनैतिक एवं सामाजिक संकट उपस्थित हो उस समय किसी एक मनुष्य को एकाधिकार देना किसी प्रकार असंगत नही जँचता । फ्रांस मे प्राचीन राज-घरानो के ऐसे सदस्य मौजूद थे जिनके पूर्वजो ने संकट के समय देश की रक्षा की थी । यदि इसके साथ ही उन्होंने कुछ अन्याय एवं अत्याचार भी किया था, तो समय के प्रभाव से वह कालिमा धुल गई थी । लोगों को केवल उनके गुण ही याद रह गये थे । नेपोलियन ऐसे पुरुषों मे सर्वश्रेष्ठ था । सब लोगो की दृष्टि उसके भतीजे लुई-नेपोलियन के ऊपर पड़ी । उसने भी अपने लेखों मे एक रहस्यमय प्रजातंत्र का स्वागत किया । इतना ही नहीं, ऐसे विषयों को जिनसे जनता मे घृणा, अविश्वास एवं डर फैलने की आशा थी उसने बड़े चातुर्य के साथ सँभाल लिया । बस १० दिसम्बर १८४८ को ५५ लाख वोटो के द्वारा वही फ्रांस

का सभापति चुना गया। उसके विपक्षी कवेनक के केवल १५ लाख वोट आये थे।

नेपोलियन-बोनापार्ट देश की सामाजिक समता की रक्षा के लिए फ्रांस का शाहन्शाह बनाया गया था। आज उसका भतीजा लुई-नेपोलियन देश की राजनैतिक समता के लिए एसेम्बली का सभापति बनाया गया। इस पर भो यदि कोई राजनैतिक समता का विनाश करने की चेष्टा करता तो लुई-नेपोलियन सभापति का आसन छोड़ कर सम्राट् पद ग्रहण कर लेता और फिर इसका दमन करता। लुई-नेपोलियन यह सब दॉव-पेंच समझता था। उसको दूसरो की भूलों से अपना काम बनाना खूब आता था। जब आपस की फूट और जनता के नैराश्य के कारण दिन-प्रति-दिन देश मे विकट स्थिति उत्पन्न होती गई, तब लुई-नेपोलियन तुरन्त सम्राट् बन बैठा।

इस एसेम्बली का जीवन छोटा हुआ। इसने कौन्सिल आव् स्टेट के संगठन एवं निर्वाचन-विधान के संबंध मे दो-एक नियम बनायें। देश मे भयंकर परिवर्तन हो रहा था। पहले लुई-नेपोलियन ने ओडीलन बेरट को मंत्रिमण्डल के बनाने का भार सौंपा। लुई-फ़िलिप ने भी अन्त मे इसी को प्रधान बनाना चाहा। यह प्राचीन उदार-दलवालों मे से था। उसके मंत्रिमण्डल ने गुप्त-सभाओ एवं क्लबों के विरुद्ध नियम स्वीकृत कराने की चेष्टा की, किन्तु सफलता न हुई। १८४६ के निर्वा-

चन से एसेम्बली की दशा बिलकुल बदल गई। उदारदलवालों मे दो मुख्य दल हो गये। एक को हम उग्र प्रजातांत्रिक और दूसरे को नम्र प्रजातांत्रिक कह सकते हैं। पहले दल के ८० और दूसरे दल के १८० सदस्य नवीन एसेम्बली मे पहुँचे। देश मे इन्ही उग्र प्रजातान्त्रिकों का प्रभाव बढ़ रहा था। यद्यपि राज-तंत्रवादियो की संख्या इस समय भी एसेम्बली मे पर्याप्त थी तथापि उनमे घोर मत-भेद था। ४५० राजतंत्रवादियो मे कोई नेपोलियन-वंश के पक्षपाती थे, कोई लुई-वंश के और कोई ओरलियन-वंश के।

साधारणतः, एसेम्बली मे जिस दल का प्राधान्य होता है, उसी दल का मंत्रिमण्डल चुना जाता है। किन्तु लुई-नेपोलियन ने कभी इस पार्लियामेन्टरी नियम की ओर ध्यान नहीं दिया। उसने फिर नरम-उदारवादियों मे से अपना मंत्रिमण्डल बनाया। किन्तु थोड़े दिनों मे लुई नेपोलियन की क़लई खुलने लगी। एक विदेशी समस्या उपस्थित हुई। १८४८ मे पोप पियस नवें ने आस्ट्रिया के आतंक से फ्रांस से सहायता माँगी। एक बार कवेनक उसको इनकार कर चुका था। इतने ही मे पोप का प्रधान-मंत्री मारा गया। इधर फ्रांस मे लुई-नेपोलियन राष्ट्र का कर्णधार बन गया। उधर पोप को सब प्रकार असहाय देखकर रोमन लोगों ने उसे गद्दी से उतार दिया और ६ फ़रवरी १८४९ को वहाँ एक प्रजातंत्र राष्ट्र की घोषणा कर दी। लुई नेपोलियन ने इस संबंध मे जिस नीति का अनुसरण किया,

वह बड़ी विचित्र थी। बचपन में वह पोप की पार्थिव-शक्ति का कट्टर विरोधी था। एसेम्बली मे पहुँचकर उसने कवेनक के प्रस्ताव का विरोध किया था, राष्ट्र का भार ग्रहण करने पर उसने केथोलिको को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की। किन्तु उसे स्वयं मैदान मे आने का साहस न हुआ। उसने पिडमोंट को पोप की सहायता के लिए उकसाया। किन्तु पिडमोन्ट आस्ट्रिया की फ़ौजो के सामने न टिक सका। उसको राज्याधिकार भी छोड़ना पड़ा। इस संबंध मे एसेम्बली की राय स्पष्ट थी। वह रोमन-प्रजातंत्र के कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहती थी। हाँ, मिडमोट को उसका राज्य वापस दिलाने की वह अवश्य पक्षपातिनी थी।

किन्तु लुई-नेपोलियन ने एसेम्बली की राय की कोई परवाह न की। जेनरल पाडोनोट की अध्यक्षता मे एक सेना भेजी गई, जिसको ३० अप्रेल को मेज़नी और गेरीबेल्डी ने राम से मार भगाया। इधर फ्रांस मे उग्र-उदारवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा। उन्हो के उत्साह से पेरिस मे दो एक उपद्रव हुए। मंत्रिमण्डल ने तुरन्त इनका दमन किया और एसेम्बली की सहानुभूति भी अपनी ओर खींच ली। सरकार के बहुत से विरोधो पकड़ पकड़कर जेलों मे ठूँस दिये गये। साथ ही सभाओं एव समाचार-पत्रों के विरुद्ध और भी कड़े नियम बनाये गये। इस प्रकार एसेम्बली का बहुमत सभापति की ओर झुकने लगा। तो भी लुई-नेपोलियन को अपनी

स्थिति स्पष्ट करने का साहस न हुआ। वह तो वास्तव में पुन: पोप को समस्त पार्थिव अधिकार दिलाना चाहता था, किन्तु जनता का रुख न देखकर उसने उलटे पोप से यह शर्त कराई कि यदि वह तत्कालीन युग के अनुसार जनता के साथ रियायत करने के लिए तैयार हो, तो उसको पुन: रोम का राज्य मिल सकता है। सुतरां १२ सितम्बर को पोप ने अपनी प्रजा के नाम एक घोषणा निकाली। उसमें अपनी समस्त विद्रोही प्रजा को क्षमा करने का वचन दिया, साथ ही राज्य के शासन-प्रबन्ध मे भी कुछ सुधार करने का आश्वासन दिलाया। यहाँ तक कि साधारण लोगो से भी राजकाज मे भाग लेने की बात कही गई।

किन्तु जो एक बार स्वतंत्रता का रस चख लेते हैं, उन्हें फिर दासता का प्रलोभन नहीं दिया जा सकता। रोमन लोगों को पोप का घोषणा-पत्र पसन्द न आया। इधर फ्रांस मे एसेम्बली के बहुमत को इस कारण यह घोषणा-पत्र रुचिकर न हुआ कि उसमे पोप ने अपने स्वाभाविक अधिकारों को छोड़ने की चर्चा की थी। प्रजातंत्रवादियों को छोड़ कर लुई-नेपोलियन की यह चाल और किसी को रुचिकर न हुई। किन्तु लुई-नेपोलियन को अपनी स्थिति का ज्ञान था। वह जानता था कि एसेम्बली उसका विरोध करेगी। उसने ३१ अक्टूबर को एक घोषणा निकाली जिसमें उसने एक व्यवस्थित नीति का अनुसरण करनेकी चर्चा की। उसने कहा—सचमुच

नेपोलियन का नाम ही तुम लोगों के लिए देश की आन्तरिक एवं बाह्य सुख-समृद्धि, धर्म, व्यवस्था आदि का परिचायक होना चाहिए। सभापति बनने के समय मैंने यही लक्ष्य अपने सामने रखा था और आज भी उसी के पालन मे लगा हुआ हूँ। इसी प्रकार लुई-नेपोलियन वचनो के अतिरिक्त अपने कार्यों मे उद्दण्डता की झलक दिखाने लगी। उसने अकारण मंत्रिमण्डल भंग कर दिया और १ नवम्बर १८४९ को अपने अनुचरो के सहयोग से एक नवीन मण्डल बनाया। इनमें जनरल होटपोल सबसे मुख्य थे। बस फिर क्या था, एसेम्बली मे और सभापति मे तना-तनी हो गई। किन्तु लुई-नेपोलियन मे अपनी टेक रखने की आदत न थी, उसने पुनः पार्लियामेन्टरी अधिकार फ्रांसवालो को देना स्वीकार कर लिया।

इस एसेम्बली मे जो सबसे बड़ा काम हुआ, वह शिक्षा-सुधार था। मार्च १८५० को प्राइमरी और सेकन्डरी शिक्षा के लिए एक नया विधान बनाया गया। उसके अनुसार कोई भी व्यक्ति, सभा अथवा धर्म-समाज बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के स्कूल खोल सकता था। केवल सदाचार और स्वास्थ्य की देखभाल सरकार के द्वारा की जाती थी। सेकेन्डरी-शिक्षा के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं था। हाँ, प्राइमरी स्कूलों के शिक्षकों को डिप्लोमा लेना पड़ता था। स्त्री-शिक्षकों को पादरियों के द्वारा लेटर आव् ओबीडियन्स नामक सनद

प्राप्त करनी पड़ती थी। इसके कारण स्त्रियों की शिक्षा मे बाधा पहुँची, क्योंकि पादरियों की शिक्षा प्रधानतः धार्मिक थी। और उस समय स्वतंत्रता और धर्म मे स्वाभाविक विरोध था। इस कारण यद्यपि विश्वविद्यालय के समय से अब स्कूलों की संख्या बढ़ गई, तथापि शिक्षा का सहज विकास रुक गया।

इस प्रकार एसेम्बली के बहुमत ने जो कि राजतंत्रवादियों का था, शिक्षा-सुधार सम्बन्धी विजय प्राप्त करने के बाद निर्वाचन-पद्धति और वोटाधिकार के प्रश्न की ओर अपना ध्यान लगाया। राजतंत्रवादी कभी सार्वजनिक वोटाधिकार के पक्ष मे नहीं थे, किन्तु खुलमखुल्ला इसका विरोध करने का उन्हे साहस न होता था। उन्होने एक चाल चली। १८५० मे जो जगहें खाली हो गई थी, उनकी पूर्ति के लिए सदस्यों का पुनः निर्वाचन किया गया। ३७ जगहो मे २७ उग्र-प्रजातंत्रवादी एवं १० राजतंत्रवादी निर्वाचित हुए। यद्यपि इससे राजतंत्रवादियो के बहुमत को कोई हानि नहीं पहुँची, तथापि उनके कान खड़े हो गये। ३१ मई १८५० को उन्होने एक यह नियम बनाया कि वोट देने के लिए नागरिक मनुष्य को किसी न किसी कोम्यून को ६ माह के स्थान पर कम से कम ३ वर्ष रहना चाहिए। इससे श्रमजीवियों को वोट देने का अधिकार न रह गया। बात की बात मे ३० लाख का वोटाधिकार छिन गया। वास्तव मे प्रेस और सभा आदि नियमो के द्वारा एसेम्बली जितनी बदनाम नहीं हुई थी, उतनी इस एक नियम

के द्वारा हो गई, क्योंकि इससे जनता की आँखें खुल गईं। एसेम्बली का महत्त्व घटने लगा। दुर्भाग्य-वश उसने इतने से ही बस नहीं किया। राजतंत्रवादियों ने चाहा कि एसेम्बली के छुट्टी के दिनो मे मंत्रिमण्डल को परामर्श देने के लिए एसेम्बली की एक स्थायी समिति बना दी जाय। उसमें उन्होंने अधिकतर राजतंत्रवादियो का चुनाव किया। लुई-नेपोलियन ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया। उसने जनता में यह खबर फैला दी कि इस प्रकार ये राजतंत्रवादी प्राचीन राज-घरानों को फ्रांस के राज्य-सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस पर लुई-वंश और ओरलियन-वंश के पक्षपातियों ने परस्पर मिलने की चेष्टा न की। लोगों का संदेह और भी दृढ़ हो गया। इतने मे लुई-फ़िलिप का देहान्त हो गया। दोनो शाखाओं का सौहार्द बढ़ने लगा। किन्तु लुई-वंश के उत्तराधिकारी ने सब काम बिगाड़ दिया। वह फ्रांस पर अपने दैवी गुणों के द्वारा राज्य करना चाहता था। जनता अब इस बात को सहने की कौन कहे, सुनने तक को तैयार नहीं थी।

अतएव राज-वंशों की मैत्री का स्वप्न भंग हो गया। लुई-नेपोलियन की बन आई। वह अधिकाधिक व्यवस्था की ओर झुकने और दैवी गुणों का विरोध करने लगा। सम्प्रति लुई-नेपोलियन सम्राट् नहीं बनना चाहता था। यदि व्यवस्था मे से यह धारा निकाल दी जाती कि सभापति अपने समय

की समाप्ति के बाद पुनः सभापति चुना जा सकता है, तो उसे संतोष हो जाता। वास्तव में लुई-नेपोलियन फूँक फूँक कर पैर रखता था। वह सोचता था कि यदि वह दूसरी बार सभापति चुना गया, तो धीरे-धीरे एसेम्बली को अपनी राह पर अवश्य ले आवेगा। इसलिए उसने व्यवस्था पर पुनर्विचार करने की बात छेड़ी। न्यायालयों ने अपनी सम्मति संशोधन के पक्ष में दी। इधर लुई-नेपोलियन अपनी कूटनीति से जनता में लोकप्रिय बनने की चेष्टा करने लगा। उसने समस्त देश में दौरा किया और व्याख्यान देकर लोगों को अपनी न्याय-प्रियता और क़ानून-प्रियता का विश्वास दिलाया। कहीं कहीं लोगों को नेपोलियन के नाम से जोश दिलाया। उसने नेपोलियन का झण्डा अपने साथ लिया। यह बात फ़ौजी कमान्डर-इन-चीफ़ जनरल को पसन्द न आई। लुई-नेपोलियन को उसका अस्तित्व कॉटे की भॉति खटकने लगा। उसने सोचा कि राजतंत्रवादी कमान्डर-इन-चोफ़ होने से मेरा काम नहीं चल सकता। एसेम्बली खुलने पर उसने गुप्तरूप से यह ख़बर फैला दी कि कमाण्डर-इन-चीफ़ एसेम्बली की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं है। एसेम्बली मे यह प्रश्न पूछा गया। कमाण्डर-इन-चीफ़ ने कहा कि यदि एसेम्बलो मुझसे सैनिक सहायता मॉगेगी, तो मैं देने के लिए तैयार हूँगा। इस पर लुई-नेपोलियन ने कहा कि यह सर्वथा सैनिक नियमों के विरुद्ध है। इतना ही नहीं, उसने अपने १८५१

के मंत्रिमण्डल से उसे निकाल दिया। इस पर एसेम्बली मे बड़ी सनसनी फैली। लगातार कई दिनो तक वाद-विवाद होता रहा। अन्त मे, मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। किन्तु कमान्डर-इन-चीफ़ से लुई-नेपोलियन का पीछा छूट गया। २४ जनवरी को उसने एक ऐसा मन्त्रिमण्डल बनाया जिसके सभी सदस्य निर्जीव और शक्तिहीन थे, कोई भी उसकी व्यक्तिगत लालसाओ को नहीं रोक सकता था। उसने यह ख़बर फैला दी कि कमान्डर-इन-चीफ़ और राज-तंत्रवादी इसलिए मिले हुए हैं कि समय आने पर वह किसी राज-वंश को गद्दी पर बैठाने मे उनकी सहायता करें। उग्र उदारवादियों ने झट इस बात पर विश्वास कर लिया। दुर्भाग्यवश १ मार्च को राजतंत्रवादियों ने यह प्रस्ताव किया कि राज-वंश के सदस्यों के प्रति जो देश-निकाले की आज्ञा प्रचारित हो रही है, वह उठा ली जाय। पार्लियामेट का रहा-सहा प्रभाव भी जाता रहा। लुई-नेपोलियन का मतलब सिद्ध हुआ किन्तु उसे अभी व्यवस्था को ठुकराने का साहस नहीं होता था, वह सोचता था कि व्यवस्था का हेर-फेर करने से न जाने क्या उपद्रव खड़ा हो। उसने कमजोरी के दोष लगा कर अपने मन्त्रिमण्डल को तोड़ दिया और ११ अप्रेल को लुओन की अध्यक्षता में एक नवीन मन्त्रिमण्डल बनाया। यह पहले की अपेक्षा शक्ति-शाली था। इसलिए व्यवस्था-पत्र के संशोधन का प्रश्न उठाया गया। लुई-वंश के पक्षपातियो

ने इस आशा से इस प्रस्ताव का स्वागत किया कि शायद उनकी जीत हो जाय, किन्तु ओरलियन-वंशवालो ने उसका विरोध किया, क्योकि उनका राजकुमार अभी छोटा था। इधर उग्रवादियों ने १८५० के वोटाधिकार छीनने के कारण इस प्रस्ताव मे भाग लेने से इनकार कर दिया। १९ जुलाई को सशोधन का प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हो गया, किन्तु व्यवस्था के अनुसार उतना बहुमत व्यवस्था मे परिवर्तन करने के लिए पर्याप्त न था। बस, एसेम्बली और सभापति मे घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। समाचार-पत्रो ने सभापति का साथ दिया। लुई-नेपोलियन ने कहा कि जब जब मैंने कोई सुधार करना चाहा है, तब तब कभी एसेम्बली ने मेरा साथ नहीं दिया। इस झमेले मे ११ अप्रेलवाले मन्त्रिमण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया और उसके स्थान पर २७ अक्टूबर को एक नवीन मन्त्रिमण्डल बना। इसमे जनरल सेन्ट आरनाड लुई-नेपोलियन का सबसे अधिक विश्वास-पात्र था। यही उस समय फ्रांस का युद्ध-मंत्री था। लुई-नेपोलियन ने ४ नवम्बर को एक घोषणा-पत्र निकाला। उसके देखने से उसकी दुरङ्गी चाल बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। एक ओर तो उसने एसेम्बली को यह चेतावनी दी थी कि देश मे भावी सभापति के निर्वा-चन के लिए भीषण षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं और दूसरे वह चाहता था कि ३१ मई का वोटाधिकारवाला संशोधन रद्द कर दिया जाय। एक से वह अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना

चाहता था, दूसरे प्रस्ताव से वह जनता की सहानुभूति आकर्षित करना चाहता था।

ये दोनो प्रस्ताव गिर गये। वास्तव मे उस एसेम्बली की बड़ी दुर्दशा थी। उसमे किसी प्रकार का बहुमत न था। कभी राजतंत्रवादी प्रबल हो जाते और कभी लुई-नेपोलियन प्रजातंत्रवादियों की सहायता से प्रधान हो जाता। चारों ओर फूट और अशान्ति के बादल छा रहे थे। देश का एसेम्बली मे विश्वास नही रह गया था। ऐसी स्थिति मे लुई-नेपोलियन ने एसेम्बली के कई प्रमुख सदस्यों को पकड़वा लिया और डे मोरनी को अन्तरङ्ग मंत्री नियुक्त किया। साथ ही २ नवम्बर को एक घोषणा-पत्र निकाला, जिसमें सार्वजनिक वोटाधिकार देने और नवीन व्यवस्था स्थापित करने का वचन दिया गया था।

---

(१२)

द्वितीय साम्राज्य

प्रथम भाग

(२ दिसम्बर १८५१ से २३ नवम्बर १८६०)

लुई-नेपोलियन की घोषणा से मनुष्यमात्र को वोट देने का अधिकार मिल गया। सुतरां २० दिसम्बर १८५१ को एक सार्वदेशीय सभा हुई। उसमे ६,४१,००० वोटों के विरुद्ध ७४,४०,००० वोटों से निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। फ्रेंच-जाति लुई-नेपोलियन का आधिपत्य स्वीकार करती है और उसको अपने घोषणापत्र के अनुसार एक नवीन व्यवस्थापत्र तैयार करने का अधिकार देती है। बस लुई नेपोलियन का कार्य सिद्ध हो गया। उसने एक ऐसा व्यवस्था-पत्र बनाया जिसमे उसकी शक्तियों और अधिकारों मे हस्तक्षेप करने की अधिक गुञ्जाइश नही रह गई थी। उसके उपोद्घात मे लिखा हुआ था कि इस समय देश को अपने प्राचीन साम्राज्य की राजनैतिक संस्थाओं की आवश्यकता है। इसलिए पार्लियामेंटरी विधान की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं, राष्ट्र के संचालकों को परामर्श देने के लिए केवल एक साधारण एसेम्बली रहेगी। राष्ट्र-संचालक देश के प्रति उत्तरदायी रहेगा, उसके मंत्री एसेम्बली के प्रति अपने पद की हैसियत से उत्तर-दायी न होंगे।

व्यवस्था की रक्षा के लिए एक सीनेट होगी। इसके सदस्य जीवन भर के लिए सभापति-द्वारा निर्वाचित किये जायँगे। कौन्सिल आव् स्टेट की सहायता बिना यह व्यवस्था मे कोई छोटा-मोटा संशोधन भी न कर सकेगे। कौंसिल आव् स्टेट के सदस्य भी सभापति-द्वारा चुने जायँगे। यह सभा क़ानून बना कर एसेम्बली मे पेश करेगी। एसेम्बली को न तो मन्त्रियों से प्रश्नोत्तर करने का अधिकार होगा और न कोई क़ानून बनाने का ही अधिकार होगा।

ऐसी शासन-व्यवस्था का अर्थ स्पष्ट है। इसका उद्देश्य सभापति का गौरव और अधिकार बढ़ाना-मात्र था। मन्त्री तो उसके हाथ के खिलौने थे। जनता सभापति के विरुद्ध आवाज़ नही उठा सकती थी। यदि सभापति को कभी अपने कार्यों का पक्ष समर्थन करना होता था, तो समाचार-पत्रों एवं अर्द्ध-सरकारी पत्रों मे गुप्तरूप से टीका-टिप्पणी करा दी जाती थी। सीनेट के सदस्यों की भी दुर्दशा थी। सभापति उनका निर्वाचन करता ही था, किन्तु उनके वेतन निश्चित करने का अधिकार भी सभापति को दिया गया था। व्यवस्थापक-सभा को कोई अधिकार ही नहीं रह गया था। बस कौंसिल आव् स्टेट देश की एक-मात्र शासन संस्था थी। यद्यपि इसका काम नियमित और सुचारुरूप से चल रहा था, तथापि यह जनता से कोसों दूर थी और सभापति की शक्ति का सामना करने की भी इसमे कोई हिम्मत न थी। सारांश यह कि यह भी सभा-

पति के हाथ की कठपुतली थी। जनवरी, १८५२ में समाचार-पत्रों और प्रेसों को दासता के बन्धन में जकड़ने के लिए नये-नये नियम बनाये गये। उनसे जमानत माँगी गई। बहुतों को तो प्रारम्भिक आज्ञा ही न दी गई और बहुतों को जूरी-द्वारा अपना निर्णय कराने का भी अधिकार न दिया गया। इसी प्रकार और भी कई क़ानून बने। बिना सरकारी आज्ञा के निश्चित समय के बाहर शराब की दूकानें नहीं खोली जा सकती थीं और बिना सरकारी आज्ञा के कोई सार्वजनिक सभा भी नहीं हो सकती थी। मतलब यह कि जहाँ तक सम्भव था, लोगों के मुँह पर ताला लगाने का उद्योग किया जा रहा था।

इनका भीतरी उद्देश्य साम्राज्य की पुनः स्थापना करना था।

परिस्थिति भी इसके अनुकूल हो रही थी। ४ नवम्बर १८५२ को सीनेट में यह प्रश्न उठाया गया। ट्रापलोंग नामी एक चतुर सीनेटर ने कहा कि हमारे भावी साम्राज्य का अर्थ होगा शाही-प्रजातंत्र। इससे अधिक साम्राज्य का कोई अभि-प्राय नहीं है। ट्रापलोंग का जादू चल गया। २१ नवम्बर को फिर एक सार्वदेशीय सभा हुई, उसमें फ्रेंच-जाति ने बहुमत से नेपोलियन और उनके उत्तराधिकारियों को अपना सम्राट् मान लिया। लुई-नेपोलियन ने तुरन्त सम्राट् के सम्पूर्ण अधिकारों के साथ तृतीय-नेपोलियन की उपाधि ली। सम्राट् को व्यापारिक संधि करने एवं बजट को अपनी

मनमानी इच्छा के अनुसार व्यय करने की पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई। साम्राज्य की नींव सुदृढ़ करने के लिए नेपोलियन ने सीनेटरों और एसेम्बली के सदस्यों को भी बराबर वेतन देने का नियम बना दिया।

लुई-नेपोलियन ने जो उद्देश्य अपने सामने रखा था, अन्त मे वह उसमे सफल होगया। किन्तु यह प्रत्यक्ष था कि इसके साम्राज्य मे स्थिरता के कोई लक्षण नहीं थे। प्रथम नेपोलियन और तृतीय नेपोलियन मे आकाश-पाताल का अन्तर था। पहला एक वीर योद्धा, चतुर शासक, प्रभावशाली सम्राट् था, संक्षेप में उसकी प्रतिभा ईश्वरीय थी। दूसरा साहस-हीन, कूटनीतिज्ञ, और अस्थिर था, संक्षेप मे कोई इसकी नीति को नहीं समझ सकता था। इस और उस समय की राजनैतिक संस्थाओं मे भी घोर अन्तर था। नेपोलियन का सिद्धान्त कार्य-कर्ताओं की प्रधानता स्थापित करना था। इसलिए उसने व्यवस्थापक-सभाओं के हाथ से सम्पूर्ण शक्ति खींच कर सरकारी कर्मचारियों को सौंप दी थी। तृतीय नेपोलियन का भी वही उद्देश्य था, किन्तु वह व्यवस्थापक-सभाओं को निर्जीव न कर सका। उनका चुनाव बराबर जनता-द्वारा होता था; इसलिए उसमें और व्यवस्थापक-सभाओं में रात-दिन युद्ध चलता था। किन्तु इसका एक कारण था। जिस समय प्रथम नेपोलियन ने फ्रांस पर आधिपत्य प्राप्त किया था, उस समय देश मे उतनी राजनैतिक

जागृति नहीं थी, जितनी तृतीय नेपोलियन के समय में हो गई थी। ३५ वर्ष मे जनता को स्वयं अपनी अवस्था का प्रबन्ध करने का थोड़ा बहुत अनुभव हो गया था। एक बात और थी। प्रथम नेपोलियन की सैनिक योग्यता जनता को चकाचौंध करनेवाली थी। उस समय देश का सारा ध्यान देश की रक्षा मे लगा हुआ था। किन्तु तृतीय नेपोलियन की समस्या अधिक गुरुतर थी। यदि वह उच्च श्रेणी के लोगो का साथ देता तो निम्नश्रेणी के लोग उस से क्रुद्ध हो जाते और जो निम्नश्रेणी के लोगो का साथ देता तो उच्च श्रेणीवाले नाराज होते। इसके अतिरिक्त भयङ्कर आर्थिक कठिनाइयो का भी सामना करना था।

किन्तु वास्तव मे तृतीय-नेपोलियन स्वयं विरोधी सिद्धान्तो का पुतला था। एक ओर तो वह जनता का बादशाह और सार्वजनिक वोटाधिकार का पक्षपाती बनना चाहता था और दूसरी ओर अपना महत्त्व बढ़ानेवाला और जनता के प्रतिनिधियों का तिरस्कार करनेवाला था। इसलिए एक ओर उसे अपने सामाजिक और आर्थिक सुधारों की ओर ध्यान देना पडा था, जिससे वे समय की गति के अनुकूल हों और दूसरी ओर उसको स्वयं अकेले राष्ट्र का भाग्य-विधाता बनने की चिन्ता थी, इसलिए राज्य-संचालन मे वह न तो मध्यम श्रेणी को, न राजतंत्रवादियों को और न उदारदलवालो को कोई अधिकार देना चाहता था। जब तक जनता को प्राचीन

समय से बढ़कर कुछ रियायतें मिलती रही, जब तक मध्यम वर्ग को १८४८ की भयङ्कर क्रान्ति की याद बनी रही, तब तक तो वे सब तृतीय-नेपोलियन का समर्थन करते रहे। कुछ दिनों के बाद जनता को सम्राट् की बातें निर्मूल मालूम हुईं और मध्यमवर्ग को अपने स्वार्थों मे हस्तक्षेप होता दिखाई दिया, किन्तु १८६० तक इस क्रान्ति के कारण किसी न किसी प्रकार दबे रहे।

विक्टर ह्यूगो ने तृतीय नेपोलियन को छोटे नेपोलियन के नाम बेशक रखा था किन्तु इसको प्रारम्भ मे अच्छी सफलता प्राप्त हुई थी। फ्रांस के बाहर सभी राष्ट्रों ने इसका स्वागत किया था। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है—वह यह कि यूरोप मे इस समय प्रजातंत्र की लहर फिर मन्द पड़ गई थी। स्वयं फ्रांस मे सभी दलो ने उसका अभिवादन किया था। पादरी संघ को तो प्रजातंत्र के ज़माने मे सब प्रकार से निराशा हुई थी। इसलिए उसने तृतीय नेपोलियन की ख़ूब प्रशंसा की और इसने भी पादरियों के साथ बहुत सी रियायतें कर दी। गिरजाघरो मे उनका सर्वाधिकार हो गया, फ़ौजों मे पुनः पादरी नियुक्त किये गये, सीनेट मे भी पादरियों को स्थान मिलने लगा, और रविवार के दिन सरकारी दफ़तर बन्द रहने लगे। दर्शन-शास्त्र का पढ़ना बन्द होगया। इन सब बातों से पादरियों को बड़ा आनन्द हुआ। मध्यम श्रेणी के लोगों को भी इस सरकार से संतोष था। क्योंकि, इस अस्थायी शान्ति

मे भी फ्रांस मे रेलवे, चेक, बैंक आदि का काफ़ी प्रचार हो गया था, व्यापारिक समितियाँ रजिस्टर्ड की जाती थी और ऋण के कारण कोई कैद नहीं किया जाता था। इससे देश मे यथेष्ट व्यापारिक उन्नति हो गई थी। लोगो को अपने आर्थिक अभ्युदय से अवकाश नही मिलता था, इसलिए उन्हे राजनैतिक स्वत्वो के अपहरण से कोई क्लेश न हुआ। आश्चर्य तो इस बात का है कि पहले जिस धर्म से उन्हे घृणा हो चली थी, धीरे-धीरे वे पुन. उसी ओर झुक चले थे। वास्तव मे बात यह है कि मनुष्य शान्ति और धनधान्य चाहते थे। जब तक तृतीय नेपोलियन के राज्य मे उन्हे ये बाते मिलती रहीं, तब तक वे व्यर्थ उससे असन्तुष्ट होनेवाले नहीं थे।

जिन्हे अपने राजनैतिक अधिकारो के छिन जाने का शोक था, ऐसे उग्र क्रांतिवादी बहुत थोड़े थे और उनमे शक्ति भी बहुत कम थी। साधारण जनता भी तृतीय नेपोलियन से बहुत सन्तुष्ट थी, क्योंकि वह समझती थी कि मैं ही उसकी बनानेवाली हूँ। इसने सार्वजनिक वोटाधिकार का पक्ष लेकर जनता को बिना दामो अपने पक्ष मे कर लिया था। वह राजतंत्रवादियों से नेपोलियन को हज़ार गुना अच्छा समझता था। पेरिस की जनता ने भी नेपोलियन के राज्यसिहासनारूढ़ होने पर कोई आपत्ति नही की। क्योकि उसने अपने आपको प्रजातंत्र का सेवक घोषित किया था। नेपोलियन के लेखों मे एक अजीब साम्यवाद पाया जाता था, जिससे लोगो को उस

पर बहुत कम संदेह हो सकता था। इन सब बातों के अतिरिक्त उसमे एक और ख़ूबी थी, वह उसका नाम था। उसके चाचा ने क्रान्ति के युग मे एक बार नहीं, कई बार यूरोप में फ्रांस का मुख उज्ज्वल किया था। किन्तु इस समय फ्रांस को नीचा दिखानेवाली १८१५ की विदेशीय संधियाँ ज्यों की त्यो बनी हुई थीं। फ्रांस का नाम अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे कुछ ऊँचा नहीं था। नेपोलियन के नाम से जनता मे फिर राष्ट्रोय अभिमान के कुछ चिह्न दिखाई देने लगे। लोग तृतीय नेपोलियन को श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। इसके साथ ही कई विरोधी उग्र-दलवादो सदस्यों को देशनिकाला दे दिया गया। ओरलियन-वंश की जायदाद ज़ब्त करके अनेक अनाथालयों और फ़ौजी कामो मे व्यय कर दो गई थो। बस फिर क्या था, तृतीय नेपोलियन ने पूर्ण रूप से जनता को अपने चंगुल मे फँसा लिया। लोगों ने पुनः राजनैतिक अधिकारों से अपना ध्यान हटाकर सामाजिक समता की ओर लगाया था।

एसेम्बली अर्थात् लेजिस्लेटिव चेम्बर का चुनाव फ़रवरी के अन्त मे हुआ। प्रेस और समाचारपत्रों के मुँह पर तो पहले ही ताला लग चुका था; अब जिनको सरकारी कर्मचारियों ने खड़ा करना चाहा, वही खड़े हुए और वही निर्वाचित भी हुए। सरकारी प्रभाव केवल इसी एक बात से मालूम हो सकता है कि चेम्बर मे कुल ३ सदस्य प्रजातंत्र के दल के थे। इस पर भो जब इन लोगों के व्यवस्था को मान्य स्वीकार करने

का प्रश्न आया, तो इन्होने शपथ लेना अस्वीकार कर दिया। सुतरां इनका चुनाव भी रद्द हुआ। बस, इस प्रकार केवल एक विरोधी चेम्बर मे बचा। इसका नाम मोन्टलेम्बर्ट था।

ऐसी एसेम्बली से नेपोलियन को भला क्या डर हो सकता था। इसके अतिरिक्त उसने कुछ नवीन सुधारो से अपनी स्थिति और भी सुदृढ़ कर ली थी। १८५४ मे कॉपी राइट ऐक्ट पास हुआ, १८५५ और १८५६ मे ज्वाइन्ट स्टाक कम्पनी एवं गिरवी ऐक्ट मे संशोधन किये गये। शासन-सम्बन्धी नियमों मे यत्र-तत्र परिवर्तन किये गये थे, जैसे राजघराने के प्रति विद्रोह करनेवालो की सज़ा बढ़ा दी गई थी, ग़ैर-सैनिक कर्मचारियों को पेंशन देने का नियम कर दिया गया, श्रम-जीवियों के संगठन के लिए भी उद्योग किया गया। इतना ही नहीं, सामाजिक प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। फैक्टरियों मे काम करनेवालों को बुढ़ापे मे पेन्शन दिलाने की व्यवस्था की गई, किन्तु इस नियम से कि जिस दिन वे फैक्टरी मे प्रवेश करे और जिस दिन छोड़ें उसकी तिथियों के निर्णय के लिए मज़दूर एक डायरी रक्खें। इस व्यवस्था का महत्त्व जाता रहा, क्योंकि इस कारण वे व्यर्थ पुलीस की देख-रेख मे फँस गये।

यद्यपि राजनैतिक संस्थाओं मे बहुत शिथिलता आ गई थी, तथापि अब भी कभी कभी मोन्टलेम्बर्ट के व्याख्यानों से लोगों मे सनसनी फैल जाती थी। १८५४ मे एक राजनैतिक

पुस्तक लिखने के अभियोग मे उसने बड़ा ज़ोरदार भाषण दिया था। इसी प्रकार १८५६ मे निर्वाचन मे सरकारी हस्त-क्षेप का उसने घोर प्रतिवाद किया था। इधर लेजिस्लेटिव चेम्बर स्वयं कौन्सिल आव् स्टेट के दबाव से बेहद ऊब गया था। न तो वह उसके प्रस्तावों मे कोई संशोधन कर सकता था और न बजट मे ही कोई घटी-बढ़ो करने का उसे अधिकार रह गया था।

फिर भो देश का ध्यान प्रबल रीति से इस ओर नहीं गया, क्योकि अन्तर्राष्ट्रोय स्थिति बहुत जटिल हो रही थी। यूरोप मे टर्की और रूस का युद्ध छिडा हुआ था। यूरोप के प्राय: सभी राजे नेपोलियन के नाम से सशंक थे। वह बार बार उनको अपनी शान्ति-वृत्ति का विश्वास दिलाता था, किन्तु उनको विश्वास नहीं होता था। उनके लिए केवल नेपोलियन का नाम ही काफ़ी था। अन्त मे उसको युद्ध मे टर्की का साथ देना पड़ा। एक तो टर्की फ़्रांस का पुराना मित्र था, दूसरे टर्की का साथ देने से उसकी ग्रेट-ब्रिटेन के साथ अधिक घनिष्ठता हो गई। वह इँगलैंड से सबसे अधिक डरता था। क्योंकि उस देश मे प्रेस बिलकुल स्वतंत्र थे। वहाँ पर नेपो-लियन की नीति के विषय मे खुल्लमखुल्ला टीका-टिप्पणी होती थी, जिससे नेपोलियन डरता था। तीसरे नेपोलियन को विश्वास था कि यह युद्ध फ़्रांस मे अरुचिकर न होगा, क्योकि अपरिवर्तनवादी-दल तो अपनी प्राचीन संधि की रक्षा करना

चाहता था, उदारदलवालों को इँगलैंड की मित्रता अधिक प्रिय थी, उग्र क्रान्तिकारी रूस की स्वच्छन्दता से चिढे हुए थे। रही सर्वसाधारण जनता की बात, उसको भी इस युद्ध से कोई असुविधा नहीं हुई थी, क्योंकि न तो कोई सेना मे भरती होने के लिए बाध्य किया जाता था और न कोई विशेष टैक्स देना पड़ता था। युद्ध का ख़र्च कर्ज लेकर चलाया जाता था। इन सब बातों के होते हुए भी समझदार व्यक्तियों ने युद्ध का समर्थन इसलिए किया था कि अन्यथा यूरोप के राष्ट्रो की शक्ति मे यथोचित सामञ्जस्य नहीं रहता।

युद्ध मे पहले-पहल मित्रो की जीत हुई। २० सितम्बर १८५४ को उल्मा के मैदान मे रूस की हार हुई। किन्तु १८५५ मे सबेसटोपोल के घेरे मे मित्रो को बड़ी कठिनाई हुई। इतने मे ही ज़ारनिकोलस की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र द्वितीय एलेकजेंडर ने संधि के लिए प्रार्थना की। १८५६ मे पेरिस मे संधि हुई। ब्लेक समुद्र मे रूस को जहाज़ी बेड़ा रखने की मनाही कर दी गई। डेन्यूब नदी मे आने-जाने का मार्ग सबके लिए खोल दिया गया और युद्ध के समय निरपेक्ष राष्ट्रो का व्यापार अबाधित कर दिया गया।

युद्ध मे विजय और व्यापार के प्रसार से बादशाह की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। १८५७ के निर्वाचन मे इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ा। इतना होने पर भी पेरिस और अन्य बड़े शहरों से ६ ऐसे सदस्य चेम्बर मे पहुँच गये जो

सम्राट् का विरोध करने पर तुले हुए थे। अन्त मे इनमे से ५ सदस्यों ने चेम्बर मे बादशाह की नीति का घोर विरोध करना प्रारम्भ किया। यद्यपि चेम्बर मे क़ानूनी रूप से किसी प्रकार की शक्ति नहीं रह गई थी, तथापि इससे देश के उत्तरोत्तर असंतोष की हालत प्रकट होती जाती थी। इस असंतोष का एक और कारण था। लोग नेपोलियन की अन्तर्राष्ट्रीय नीति को संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे, क्योकि वह यूरोप के प्राचीन राजघरानों से मैत्री बढ़ा रहा था। ओरसिनी ने तो इसी कारण देश और विदेश के कई साथियो के साथ सम्राट् को मारने के लिए एक षड्यंत्र रचा था। तीन बम बादशाह के ऊपर फेंके गये, भाग्यवश नेपोलियन तो बच गया, किन्तु उसके लगभग १५० अनुचरों की हत्या हो गई।

फ्रांस का सबसे प्राचीन शत्रु आस्ट्रिया था। अभी तक इटली पर उसका प्रभाव जमा हुआ था। फ्रांस को भी इटली के साथ बड़ी सहानुभूति थी। साथ ही इटली मे भी स्वतंत्रता की लहर बह चली थी। रोमन कैथलिक चर्च के सर्वश्रेष्ठ अध्यक्ष पोप की राजधानी इटली मे होने के कारण समस्त रोमन-कैथलिकों की सदिच्छा इटली के साथ थी। तृतीय-नेपोलियन भी इटली का पक्षपाती था। बादशाह होने के पहले उसने इटली की सहायता करनी चाही थी। टर्की-युद्ध के समय उसने पिडमोट को भी अपने साथ ले लिया था। संधि होने पर उसने यूरोप के राष्ट्रो को आस्ट्रिया के विरुद्ध

भड़काना चाहा। इटली की स्वतंत्रता उसका लक्ष्य था। ओरसिनी का उद्देश्य भी इटली का उद्देश्य था। नेपोलियन की उदासीनता से चिढ़कर ही उसने षड्यंत्र रचा था। नेपोलियन मे तत्परता आई या नहीं, किन्तु इसका एक परिणाम अवश्यम्भावी था। वह यह कि सम्राट् को दमन का मनमाना मौक़ा मिल गया। उसने झूठमूठ गुप्त-सभाओ और प्रजातांत्रिक षड्यंत्रों की कल्पना की। एक प्रकार से देश पर सैनिक-शासन स्थापित कर दिया और एक जनरल फ्रांस का अन्तरङ्ग मंत्री नियुक्त किया गया। इससे देश मे सनसनी फैल गई। नेपोलियन ने और भी उग्ररूप धारण किया। उसने कौन्सिल आव् स्टेट और चेम्बर से यह प्रस्ताव पास कराया कि १८४८ से जिन लोगों पर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया है, वे सब पुनः क़ैद कर लिये जायँ अथवा देश से निकाल दिये जायँ। इसके अतिरिक्त उसने यह नियम भी बनाया कि जो चेम्बर की सदस्यता के लिए खड़ा हो, उसको निर्वाचन के बाद नहीं, वरन् पहले ही व्यवस्था को अंगीकार करने की शपथ लेनी पड़ेगी।

बादशाह ने सोचा था कि दमन से उसका विरोध जाता रहेगा किन्तु परिणाम उलटा हुआ। अब तक केवल प्रजातंत्रवादी उसका विरोध करते थे, और वह भी केवल मुँह से; किन्तु उसका अत्याचार देखकर अब उदारदलवादी भी चिढ़ गये। मोन्टलेम्बर्ट ने किसी पत्र में इँग्लिश संस्थाओं की

प्रशंसा की। सरकार ने उसे छः महीने के लिए जेल भेज दिया। नरम से नरम मनुष्य भी इससे बिगड़ गया। हड़बड़ा कर बादशाह को मोन्टलेम्बर्ट को सज़ा से मुक्त करना पड़ा। साथ ही उसने एक ग़ैर-सैनिक कर्मचारी को देश का अन्तरङ्ग-मंत्री बनाथा, किन्तु लोगों का क्रोध दूर न हुआ। कुछ शान्ति मालूम होने लगी। इतने मे नेपोलियन ने एक और नया झगड़ा उठाया। इटली की चर्चा ज़ोरों से छेड़ दी। कभी उस पर धावा करने की कोशिश करता और कभी पीछे हट जाता। लुई-नेपोलियन के प्रत्येक काम मे एक रहस्यमय अस्थिरता दिखाई देती, जिससे लोगों की समझ मे यह नहीं आता था कि यह अमुक काम किस उद्देश्य से कर रहा है। महीनों इटली की समस्या बिलकुल अनिश्चित रही। एकाएक आस्ट्रिया ने पिडमौंड को सैनिक तैयारियाँ करने से रोक दिया। इस पर नेपोलियन ने आस्ट्रिया से युद्ध छेड़ दिया। उग्र-क्रान्तिकारियों को छोड़ कर नेपोलियन का यह कार्य फ्रांस में किसी को पसन्द नहीं आया, क्योकि इससे फ्रांस को किसी प्रकार के लाभ की सम्भावना नही थी। क्रान्तिकारी तो अपनी स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता का पुराना स्वप्न देख रहे थे।

फ्रांस मे इटली का यह आक्रमण इतना निन्दनीय माना गया था कि बहुत से साम्राज्यवादियों को भी यह आशंका हो रही थी कि कही इटली को आस्ट्रिया के चंगुल से बचाने के लिए नेपोलियन पोप की स्वतंत्रता तो नहीं छीनना चाहता है?

इसलिए जब चेम्बर मे युद्ध-व्यय का प्रश्न आया, तब उसके स्वीकृत होने में आवश्यकता से अधिक कठिनाई हुई। कुछ भी हो, नेपोलियन ने यही घोषित किया था कि वह इटली को स्वतंत्र देखना चाहता है।

लड़ाई शुरू हुई। बादशाह को दो एक जगह विजय मिली; किन्तु दो महीने के बाद उसने एकाएक हाल्ट बोल दिया और १० नवम्बर १८५९ को ज्यूरिच मे आस्ट्रिया से संधि कर ली। मार्च १८६० मे पिडमोट ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। संधि के अनुसार आस्ट्रिया ने पिडमोंट को लोम्बार्डी दे दी। फ्रांस ने नाइस और सेवाय को अपने साम्राज्य में मिला लिया। वेनेसिया आस्ट्रिया के पास ही रहा। इटली के शेष प्रान्त पोप की अधीनता मे कर दिये गये।

तृतीय-नेपोलियन ने जो काम ऐसे उत्साह से उठाया था, उसे बीच ही मे एकाएक छोड़ देने के कई कारण थे। (१) फ्रांस की अनिच्छा (२) इँग्लैंड की उदासीनता (३) प्रुशिया की धमकी और (४) यूरोप का अविश्वास। लुई-नेपोलियन मे इनके आगे टिकने की शक्ति नहीं थी। किन्तु इन सबसे बड़ा एक और कारण था जिसके आगे नेपोलियन क्या, संसार की कोई शक्ति नहीं ठहर सकती थी। यह इटली की स्वतंत्रता, स्वाधीनता और एकता की प्रबल इच्छा थी। इन्हें बाह्य हस्तक्षेप असह्य हो चला था। टसकेनी, परमा, मोडेना आदि प्रान्तों ने अपने शासकों को मार भगाया।

रोमगना ने पोप की अध्यक्षता अस्वीकृत कर दी। गेरीबेल्डी के स्वयंसेवकों ने सिसली टापू पर अधिकार कर लिया, पिडमोंट की फ़ौजे रोम मे जा डटीं और यह सब एक वर्ष के भीतर हो गया।

लुई-नेपोलियन ने तुरन्त इटली से अपना हाथ खीच लिया। १८५९ मे बोर्डो मे व्याख्यान देते हुए उसने पोप को भी रोमगना छोड़ देने की सलाह दी। यहाँ तक कि उसने रोमस्थित फ्रेंच-सेनाएँ वापस बुला ली। ये फ़ौजे सन् १८४९ ई० से वहाँ रहती थीं। यह उसने अच्छा किया या बुरा, यह बात तो दूसरी है परन्तु इसका जो दुखद परिणाम हुआ उससे साम्राज्य को बडी हानि पहुँची। यूरोप मे अशान्ति फैल गई। रोमन-कैथलिक जो कि पोप की पार्थिव शक्ति मे विश्वास करता था, साम्राज्य के विरोधी बन गये। १८५९ और १८६० मे लगातार पादरियों की अध्यक्षता मे उत्पात होते रहे। सरकार ने अपना दमनचक्र चलाया। कैथलिक पत्र बन्द कर दिये गये, पोप के लिए चन्दा इकट्ठा करने की भी मनाही हो गई और पादरियों तथा विशपों का अपमान होने लगा। इस अत्याचार को देखकर उदारदलवादी भी कुण्ठित हो गये। बहुत दिनों से सरकार से पृथक् हो जाने के कारण वे शक्तिहीन हो गये थे। उन्होंने सोचा कि यदि इस समय हम कैथलिकों को अपनी सहानुभूति से आकर्षित कर लेंगे, तो ये हमे भावी संग्राम मे सहायता देंगे।

जिनसे यह कहा जा सके कि नेपोलियन ने शासन में कोई सुधार कर दिया था, तथापि इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि बादशाह को अपनी भूल सुधारने की चिन्ता हो गई थी।

---

(१३)

द्वितीय साम्राज्य

१८६०—१८७०

तृतीय नेपोलियन का राजत्व-काल दो भागों मे इसलिए विभक्त किया गया है कि यद्यपि इस द्वितीय भाग मे उसने बराबर अपनी स्थिति को सँभालने की चेष्टा की तथापि वह सफल न हुआ और अन्त मे साम्राज्य का पतन हो गया।

नवम्बर १८६० के संदेश से लोगों ने फिर स्वन्तत्रता की साँस ली। उस समय जो व्यवस्थापक-सभा काम कर रही थी, उसका निर्वाचन १८५७ में हुआ था, इसलिए देश की राजनैतिक परिस्थिति मे यदि कोई भीषण परिवर्तन न हुआ होता तो उसके सभ्यों से अधिक बोलने की आशा नहीं की जा सकती थी। किन्तु देश की दशा बड़े वेग से बदल रही थी। सम्राट् की नीति से उसके अनुयायी भी घबरा रहे थे। सन् १८६० के बाद जब पार्लियामेंट की बैठक हुई तब उसमें बहुत से सदस्य बादशाह के पाँच प्रसिद्ध विरोधियों में जा मिले। बादशाहों के मित्रों ने भी उसकी नीति पर आक्षेप करने मे कोई संकोच न किया। सीनेट मे भी बड़े भयंकर व्याख्यान हुए। नेपोलियन ने बहुत कोशिश की कि वह देश को अपनी परिवर्तित नीति का परिचय दे सके। आक्षेप के

मुख्य दो विषय थे (१) इटली की समस्या और (२) आर्थिक स्थिति। पहले के विषय मे बादशाह ने मंत्रियों-द्वारा स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था कि वह अब पूर्णरूप से उदासीन रहेगा। किन्तु लोगो को संतोष नहीं होता था। एक पक्ष पोप की पार्थिव शक्ति कम करने की फिक्र मे था, तो रोमन-कैथलिक बादशाह से पोप का साथ दिलाना चाहते थे। इधर १८ फ़रवरी १८६१ को विक्टर इमेनुएलने अपने को इटली का बादशाह कहना प्रारम्भ कर दिया। फ्रेंच-चेम्बर मे इटली का प्रश्न बारबार उठता किन्तु सरकार सिवाय सदस्यों का मुँह ताकने के और कुछ न कर सकती। एक दल कहता कि हमे वहाँ से अपनी सेना हटा लेना चाहिए और दूसरा दल पोप की रक्षा पर ज़ोर देता। धीरे धीरे देश मे शिथिलता आने लगी। किन्तु न तो कैथोलिकों ने अपना उपद्रव छोड़ा और न सरकार ने अपना दमन, यहाँ तक कि सरकार ने पीटर फण्ड मे चन्दा इकट्ठा करना भी बन्द करा दिया, यद्यपि यह फण्ड देश मे बहुत दिनो से एकत्र किया जाता था।

आर्थिक स्थिति के संबन्ध मे सबसे बड़ी बात यह थी कि सरकार को कई वर्ष से घाटा हो रहा था। बजट से अधिक व्यय हो जाता था। इसके लिए स्वयं नेपोलियन ने चेम्बर और जनता को विश्वास दिलाया था कि भविष्य मे अर्थमंत्री की आज्ञा के बिना अधिक व्यय नही किया जायगा और बजट ६५ भिन्न भिन्न खातों मे विभक्त करके चेम्बर-द्वारा

स्वीकृत कराया जायगा। वाणिज्य और उद्योग-धंधों की भी दुर्दशा थी। वैसे तो उस समय यूनाईटेड स्टेट्स मे युद्ध होने के कारण संसार भर मे व्यापार मन्दा हो रहा था, किन्तु फ्रांस की दुर्दशा मे नेपोलियन का भी हाथ था। नेपोलियन ने १८६१ मे लेवेनन्त के रोमन-कैथलिकों की रक्षा के लिए सीरिया मे फ्रेंच-सेनाएँ भेजी। १८६० मे चीन मे यूरोपीय बन्दरगाह खोलने के लिए उद्योग किया और १८६२ मे मेक्सिको मे आधिपत्य जमाना चाहा। किन्तु इन सब कामों का फल एक ही हुआ—धन-हानि और जन-हानि।

इन सब विषयों मे चेम्बर के भीतर ख़ूब गरमागरम बहस हुई। किन्तु उसका तात्कालिक फल कुछ भी न हो सका, क्योंकि अभी तक नेपोलियन का सिक्का जमा हुआ था। फल केवल यह हुआ कि जनता सोते से जाग गई और नेपोलियन की नींव हिल गई। सरकार को अकस्मात् दो एक बार हार भी खानी पड़ी, जैसे चेम्बर ने जेनरल कजिन डे मोन्टोवां को पेन्शन देने का सरकारी प्रस्ताव, चूँकि उन्होंने चीन मे देश का नाम ऊँचा किया था, रद्दी के टोकरे मे फेंकवा दिया। इसी प्रकार एक मंत्री को अर्थमंत्री के विरुद्ध जनता के साथ सहानुभूति होने के कारण मंत्रि-मण्डल से त्याग-पत्र देना पड़ा। दो-एक छोटे-मोटे सुधार भी स्वीकृत हुए किन्तु उससे जनता की नई जागी हुई प्यास नहीं बुझ सकती थी। वे सोचते थे कि चेम्बर को अपनी राय व्यक्त करने

का अधिकार मिल गया है। जनता भी उसका साथ देने को तैयार है, फिर देश मे ऐसी कौन सी शक्ति है जो चेम्बर की इच्छा में बाधा डालती है। जनता में इस प्रकार आवेग अवश्य था किन्तु वह किस ओर था, इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। एक ओर जनता यह नहीं कह सकती थी कि उसके लिए क्या श्रेयस्कर और क्या अश्रेयस्कर है, दूसरी ओर सरकार चकरा रही थी कि वह किसका साथ दे और किसका न दे।

३१ मई १८६३ ई० में फ्रांस की ऐसी अनिश्चित स्थिति थी, उसी समय चेम्बर का नया निर्वाचन-दिन था। सरकार ने तो जहाँ तक उससे बन पड़ा, १८५२ की तरह अपने विरोधी मनुष्यों को चेम्बर में आने से रोका। उन्होंने सम्राट् के दो एक सुधारों की इतनी अधिक प्रशंसा की कि वह अतिशयोक्ति मालूम पड़ने लगी। प्राचीन उदारदल-वादी, जैसा लिखा जा चुका है, रोमन कैथलिकों से मिल गये थे। इन दोनों पार्टियों ने मिल कर किसी किसी निर्वाचन-क्षेत्र से अपने सदस्य खड़े किये, जिनमे वोटों का ख़ूब घोर संग्राम हुआ। इस दल का सबसे प्रमुख नेता थियर्स था। यह व्यवस्था मे परिवर्तन नही करना चाहता था। इसका उद्देश्य केवल न्यायपूर्वक वर्तमान व्यवस्था के अनुसार सरकार से काम कराना था। कुछ उग्र क्रान्तिकारी कहते थे कि वे निर्वाचन में कोई भाग नहीं लेंगे, क्योंकि सहयोग करने से ही यह सिद्ध

हो जायगा कि हम इस पद्धति की न्याय-परता मे विश्वास करते हैं। किन्तु कुछ क्रान्तिकारी क्रान्ति करने पर तुले हुए थे, वे भीतर-बाहर सभी जगह काम करना चाहते थे। वे सम्राट् की मनमानी से चिढ़ गये थे। इसलिए समाज और राज की एकदम काया-पलट कर देना चाहते थे।

सरकार ने सभी का, एक समान, चाहे वे उदारदलवादी हों और चाहे क्रान्तिकारी, विरोध करना शुरू किया। उनके समाचार-पत्र बंद करा दिये, सभायें भंग कर दीं, किन्तु इन सब अड़चनों का सामना करते हुए इस बार पार्लियामेट मे ४० साम्राज्य-विरोधी जा घुसे। इनमे प्राचीन लुई-वंश का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि वेरियर था। ओरलियनवंश का प्रतिनिधि थियर्स और क्रान्तिकारियों का प्रमुख नेता ज्यूलस फर्वे था। निर्वाचन से एक बात और प्रकट होती थी, वह यह कि देहातों में साम्राज्य के प्रति श्रद्धा थी, छोटे-छोटे शहरों मे उदारवादियों की संख्या बढ़ रही थी और बड़े नगर क्रान्ति के अड्डे बन रहे थे।

सरकार भी बिलकुल अंधी नहीं थी। वह जानती थी कि उसका प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। किन्तु, इसी समय उसका बेड़ा वहीं बैठ गया है, इस पर उसने संतोष प्रकट किया। सर्वसाधारण ने भी बहुत सोच-विचार से काम लिया, क्योंकि उस समय दूसरों की दृष्टि मे देश की दशा गिर रही थी। इटली की समस्या हल नहीं हुई थी। ज़ार एलेकजेन्डर-

द्वितीय ने बारम्बार कहने-सुनने पर भी पोलैण्ड के साथ कोई रियायत नहीं की, इधर उत्तर मे जर्मन-साम्राज्य भयंकर रूप धारण कर रहा था। देश और सरकार समझती थी कि इस समय उनका सा काम एक-मन और एक-स्वर होकर देश की रक्षा करना है। परन्तु इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता थी मज़दूरों को अपनाने की। क्योंकि इन लोगों का विश्वास अपने राजनैतिक अधिपतियों से, चाहे वे किसी भी दल के हों, घटता जाता था। पर, सरकार ने एक दूसरा ही मार्ग ग्रहण किया। बादशाह ने अपने अन्तरंग मंत्री प्रेसगनी को निकाल दिया, क्योंकि वह निर्वाचन का काम अच्छे ढंग से नहीं कर सका था। साथ ही उसके अनुत्तरदायित्वपूर्ण मंत्रियों को भी हटा दिया। इसके ऊपर कोई दायित्व नहीं था, ये चेम्बर मे मंत्रियों के प्रस्तावों का समर्थन भर करते थे। यह प्रथा असंगत थी। इसलिए तृतीय नेपोलियन ने सब मंत्रियो की ओर से एक प्रधान मन्त्री नियुक्त किया और उसी को बोलने का अधिकार दिया। वास्तव मे चाहे इसे हम चेम्बर का प्रधान मंत्री कहें अथवा सभापति, यह कुछ निश्चित न था। रूर को, जो पहले प्रधानमंत्री हुए, लोगों ने बाइस इम्पायर तक कह डाला था। असल बात यह थी कि यह रूर महाशय यद्यपि तर्क-वितर्क, भाषण और व्याख्यान मे बड़े दक्ष थे, कूट-नीति मे भी किसी से कम न थे, तथापि बादशाह के इतने चापलूस थे कि इनको बादशाह की प्रतिच्छाया कह सकते हैं।

एक और नये मंत्री की नियुक्ति का उल्लेख करना भी यहाँ असंगत न होगा। यह शिक्षा-विभाग के मंत्री विक्टर डरी थे। इन्होने शिक्षा-पद्धति की बहुत सी त्रुटियाँ दूर की। दर्शन और तुलनात्मक इतिहास पढ़ाने का क्रम पाठशालाओ मे जारी किया। साहित्य और विज्ञान की ओर भी काफ़ी ध्यान दिया। किन्तु सबसे बढ़ कर इन्होंने यह काम किया कि विश्वविद्यालयों मे स्त्रियों का पाठ्य-क्रम बना दिया, जिससे स्कूल और कालेजों मे एक नई जान आगई। हाँ, पादरियों और सीनेट के विरोध के कारण अनिवार्य एवं निश्शुल्क प्राइमरी शिक्षा का बिल ये पास न करा सके।

इसके अतिरिक्त सरकार ने मजदूरो और किसानो को अपनाने की कोशिश न की हो, सो बात नहीं है। मज़दूरो को हड़ताल करने का अधिकार मिल गया अर्थात् यदि वे हड़ताल कर दें तो क़ानूनन अपराधी नही ठहराये जा सकते थे। हाँ, मिल कर या किसी संघ की हड़ताल करने के उद्देश से ही स्थापना करना अब भी दोष-पूर्ण समझा जाता था। इसी प्रकार म्यूनिसिपल एवं साधारण बोर्डों मे सुधार हो जाने से किसानों के प्रतिनिधियों के कुछ अधिकार बढ़ गये थे।

पर ये सब बातें लोगों की प्यास न बुझा सकीं। क्योंकि वे असल मे राजनैतिक स्वत्वो मे अधिकाधिक हाथ बटाना चाहते थे। १८६४ मे थियर्स ने एक ज़ोरदार भाषण मे देश की माँगों को बड़े अच्छे ढंग से उपस्थित

किया। उसने दिखा दिया कि सरकार की ख़ैर उदार-वादियों की नीति का अवलम्बन करने में ही है। जनता और प्रेस दोनो पुलिस के करुणा-पात्र हैं, शासकों की नीति से सार्वजनिक वोटाधिकार केवल ढकोसला-मात्र रह गया है। चेम्बर की स्वतंत्रता के अपहरण के लिए इतने नियमोपनियम बनाये गये थे कि उसे कोई अधिकार नहीं रह गया था। उसने कहा—मंत्रियों को अधिकार दो और वे चेम्बर के प्रति उत्तरदायी रहें, तभी उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन का विकास सम्भव है।

थियर्स का यह भाषण इतना महत्त्व-पूर्ण था कि यह सभी दल के मनुष्यों की ज़बान पर रहने लगा। यहाँ तक कि साम्राज्यवादी भी इसका समर्थन करने लगे। किन्तु जब रूर के सामने यह प्रश्न उपस्थित होता तो वह हँसकर कहता—नहीं, मैं अपने बादशाह को व्यवस्था के शिकंजे मे जकड़ा हुआ मिट्टी का पुतला नहीं बनाना चाहता हूँ। इधर अमरीकन युद्ध के बन्द हो जाने से देश की व्यापारिक विपत्ति टल गई। जर्मनी के साथ सन् १८६४ मे संधि हो गई। १५ सितम्बर सन् १८६४ में इटली के साथ संधि हो जाने से इटली की समस्या भी कुछ दिनों के लिए टल गई। संधि की शर्तें यह थीं कि दो वर्ष के भीतर फ़्रांस को इटली से अपनी फौजें हटा लेनी चाहिए, साथ ही इटली को पोप के पोनटीफ़िकल देशों को अबाधित करना होगा।

इस प्रकार लोगों ने समझा कि शान्ति हो गई। किन्तु यह शान्ति स्थायी शान्ति न थी। इटली के समझौते मे पोप से विशेष परामर्श नही लिया गया था, इसलिए, पियस (नवें) ने उसको अमान्य कर दिया। फ्रेंच-कैथलिक प्रजा ने उसका समर्थन किया। उसने एक आदेश निकाला जो इतिहास मे सिलेबस के नाम से प्रसिद्ध है। उसमे पोप की पार्थिव शक्ति और रोम के प्राचीन साम्राज्य का प्रतिपादन किया गया है। इतना ही नहीं, उसमे स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता, सार्वजनिक वोटाधिकर के सिद्धान्त महा घृणित ठहराये थे। इस आदेश से फ्रेंच-सरकार मे खलबली पड़ गई क्योकि इस बार उनके मूल पर ही कुठाराघात किया गया था। पादरियों को आज्ञा दी गई कि यह आदेश गिरजाघरो में न पढ़ा जाय। फिर क्या था, वही पुराना झगड़ा—पार्थिव-शासन और धर्म-शासन का सहज विरोध उठ खड़ा हुआ। क्रान्तिवादियों ने लोगों को यह समझाने की चेष्टा की कि यह दोनों शक्तियाँ सर्वथा पृथक् पृथक् हैं, किन्तु अधिकांश फ्रेंच-प्रजा ने इस पर कोई ध्यान नही दिया। वे पोप को पार्थिव-शक्ति से पृथक् नहीं करना चाहते थे।

बात की बात मे फ्रांस की स्वतंत्रता के बादल हवा मे विलीन हो गये, ऐसा मालूम होने लगा कि अभी बहुत दिनों तक फ्रांस पर निरंकुशता के काले बादल छाये रहेंगे। किन्तु भाग्यवश फिर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति जटिल हो गई और

लोगों का ध्यान गृह-कलह से, हटकर बाहर की ओर लग गया। डेनिश डची के लिए प्रुशिया और आस्ट्रिया मे बहुत दिनों से झगड़ा चल रहा था। फ्रांस दूर खड़ा हुआ इस तमाशे को देख रहा था। इनमे सन्देह नहीं कि इटली के साथ उसकी सहानुभूति बढ़ रही थी। इतने मे एक और घटना हुई। प्रुशिया ने इटली को अपनी ओर मिलाकर आस्ट्रिया को ३ जुलाई को सेडोवा के मैदान मे हरा दिया। इससे नेपोलियन के कान खड़े हो गये। अभी तक चेम्बर मे थियर्स, ज्यूलिस फर्व, इमली ओलीवियर आदि उसको फ्रांस की हीनावस्था सुधारने की चेतावनी दिया करते थे, किन्तु उसकी समझ मे एक न आता था। उसका प्रतिनिधि रूर भी उदारदलवादियों की माँगों को अनुचित समझता था, चेम्बर को प्रस्तावों मे संशोधन करने का अधिकार दिया जाना ही वह अत्यधिक समझता था। किन्तु सेडोवा के युद्ध ने सबको चौकन्ना कर दिया, क्योंकि उस हार के कारण आस्ट्रिया को बेनीसिया इटली को और डची प्रुशिया को दे देना पड़ा, साथ ही जर्मन-संघ से भी हाथ सिकोड़ना पड़ा। प्रुशिया का यह बढ़ता हुआ प्रताप नेपोलियन को किसी प्रकार सह्य न हुआ। पड़ोसी की शक्ति आवश्यकता से अधिक बढ जाने से वह सशंक हो गया था। इस डर से छूटने का एक ही उपाय था कि फ्रांस की सेना बढ़ाई जाय और सेना बढ़ाने का भी एक उपाय था।

वह यह कि देश की सच्ची भलाई का ध्यान कर देशवासियों का अपनाया जाय।

बादशाह देश से धन-जन के लिए विशेष अपील करना चाहता था, किन्तु जनता को बादशाह की बुद्धिमत्ता मे विश्वास नहीं रह गया था, क्योंकि इसकी हालत सदा डाँवा-डोल रहती थी। १९ जनवरी १८६७ को उसने एकाएक एक घोषणा निकाली। उसमे बादशाह के प्रारम्भिक भाषण की प्रथा तोड़ दी गई थी। चेम्बर के सदस्यों को चेम्बर मे प्रश्न करने एवं सरकारी नीति की आलोचना करने का अधिकार देने का वचन दिया गया था और यह वर्ष मे केवल एक बार नहीं, वरन् जब कभी इसका समय उपस्थित हो। इसके अतिरिक्त प्रेस और सर्वसाधारण सभाओं के विरोध सम्बन्धी प्रस्ताव बनाये गये थे। उक्त प्रस्ताव यथार्थ रूप से कभी कार्य मे परिणत न हो सके। क्योंकि नेपोलियन मे दृढ़ता-पूर्वक काम करने की शक्ति नहीं थी। जब तक उस पर दबाव नहीं पड़ता था, वह किसी काम को नहीं कर सकता था। यह उसकी स्वाभाविक आदत थी, इसके अतिरिक्त अब बुढ़ापे के कारण भी उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी। उसको जो लोग घेरे रहते थे, वे अपनी हालत से सुखी थे, इसलिए वे बादशाह को मनमानी करने मे ख़ूब सहायता देते थे। रूर की भी यही हालत थी। जिस नीति को ग्रहण करने से वह बड़ा हुआ था यदि आज अनुचित-उचित के विचार से उसी को ठुकरा

देता तो उसका सारा गौरव मिट्टी मे मिल जाता, इसलिए वह देश को कम से कम अधिकार देना चाहता था। बड़ी कठिनाई से जैसे-तैसे म्यूनीसिपल ऐक्ट पास हुआ।

किन्तु सुधारो की एकमात्र गारंटी अन्तर्राष्ट्रोय परिस्थिति थी। सेडोवा के युद्ध के पश्चात् नेपोलियन ने मेक्सिको से अपनी फ़ौजें वापस मँगवाई। फ़ौजो का वहाँ से चलना था कि वहाँ की प्रजा ने मेक्समीलियन बादशाह को मार डाला। इधर यूरोप मे प्रुशिया की बढ़ती हुई शक्ति को दबाने के लिए फ़्रांस ने लेकजमवर्ग को मिलाना चाहा, किन्तु प्रुशिया की चाल से वह सफल न हुआ। ११ मई १८६७ ई० को लन्दन की कान्फ़रेन्स मे लेकजम्वर्ग एक स्वतंत्र प्रान्त घोषित कर दिया गया। सब से बढ़कर बुराई यह हुई कि गेरीवाल्डी के स्वयंसेवको ने पोन्टीफिकल स्टेट्स पर धावा बोल दिया। नेपोलियन को पोप की रक्षा के लिए नवम्बर १८६७ को दो फ़ौजें भेजनी पड़ी।

इस प्रकार फ़्रांस की अन्तरंग और बाह्य दोनो स्थितियाँ ऐसी असन्तोषजनक हो रही थी कि रूर भी, जो कि अपने आशावाद से हटना नहीं जानता था, थोड़ी देर के लिए अपने आसन से डिग गया। अन्त मे उसने सब व्याधियो का मूल अपने मास्टर को ही ठहराया। १८६८ की पार्लियामेट की बैठक मे इसके सुधारने की कुछ चेष्टा की गई। पहली फ़रवरी को नया फ़ौजी क़ानून पास हो गया, उसके अनुसार जो

नवयुवक सैनिक सर्विस से पृथक् कर दिये गये थे, वे पुनः फ्रांस की रिजर्व फौजो में भरती होने के लिए बुला लिये गये। इसी प्रकार ११ मई को प्रेस प्रारम्भिक आज्ञाओं के बन्धन से मुक्त हो गया, ६ जून को राजनैतिक एवं धार्मिक सभाओं को छोड कर अन्य सार्वजनिक सभाओ के लिए सरकारी कर्मचारियों से आज्ञा लेन की आवश्यकता न रह गई। ये ऐक्ट पास तो हो गये, किन्तु चेम्बर मे इन पर घोर वाद-विवाद हुआ। क्रान्तिकारी तो इन ऐक्टों को सारहीन और अपर्याप्त बतलाते थे किन्तु साम्राज्यवादी कहते थे कि इस प्रकार के क़ानून बनने से समाज और सम्राट् दोनो का अहित होगा। उनकी दृष्टि मे यह सिद्धान्त कि बादशाह को व्यवस्था के अनुसार चलना चाहिए, केवल कहने की बात थी। यदि सचमुच उनका पालन किया जाता तो बादशाहत एक दिन नही चल सकती थी।

इधर चारो ओर से उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्रिमण्डल की स्थापना की पुकार मच रही थी। जो पहले इसके विरोधी थे, अब वे भी इसके पक्षपाती हो गये थे, क्योंकि इसके अतिरिक्त सम्राट् की रक्षा का और कोई उपाय शेष नहीं रह गया था। ज्योंही सभाओ और समाचार पत्रों से प्रतिबन्ध उठाया गया, त्योंही देश मे परिवर्तन की बाढ़ आ गई। लोग समझे बैठे थे कि अब फ्रांस से क्रान्तिकारी एवं साम्यवादी विचार बहुत कुछ उठ गये हैं। किन्तु असल मे बात ऐसी न

थी। जिस प्रकार बाँध टूट जाने से धारा और भी प्रबल हो जाती है, उसी प्रकार ऊपर से मुखबन्दी होने से अशान्ति की आग भीतर ही भीतर धधक रही थी। चारों ओर साम्यवाद का प्रचार होने लगा। कई जगह हड़तालें हुई। जिनको बलपूर्वक दबाना पड़ा। पेरिस शहर में भी क्रान्तिकारियों के झण्डे फहराने लगे। सरकार हैरान थी। विदेशों मे तो उसकी बदनामी हो ही रही थी, घर में भी चारों ओर से उस पर हमले हो रहे थे। उसको स्वयं पता नहीं था कि वह कहाँ जा रही है। सरकारी सदस्य एक दूसरे का मुँह ताकते थे।

इसी बीच मे १८६९ का निर्वाचन हुआ। लोगों मे परस्पर कितना वैमनस्य और विद्रोह था, वह निर्वाचन-फल देखने से प्रकट हो जाता है। सरकारी सदस्यों को कुल ४६,३६,००० वोट मिले और विरोधियों को ३२,७०,०००। किन्तु मार्के की बात यह थी कि स्वयं विरोधियों मे अनेक दल थे। उदारदलवादी भी सरकार के विरोधी थे और क्रान्तिवादी भी। किन्तु ये आपस मे कट्टर शत्रु थे। नवीन चेम्बर मे २८ गरमदलवादी सदस्य थे। ये अधिकतर शहरों द्वारा निर्वाचित हुए थे और २६४ भिन्न-भिन्न राज-वंशों के पक्षपाती थे, जिनमे से आधे उदारदलवादी थे। उदारदल और गरमदल दोनो मिलकर पार्लियामेंट का संचालन कर सकते थे।

यह तो स्पष्ट हो गया था कि अब फ्रांस मे किसी व्यक्ति-

विशेष की बादशाहत नहीं चल सकती। नेपोलियन के लिए एक ही मार्ग था, वह यह कि वह चुपचाप बहुमत के हाथ मे शासन की बागडोर दे देता। किन्तु सहसा उसे अपना अधिकार छोड़ने का साहस न हुआ।

२८ जून को चेम्बर का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। उसी दिन सदस्यों के वास्तविक अधिकारों का प्रश्न उठाया गया। ८ जुलाई को ११६ सदस्यों ने मिलकर एक राज-वंशीय उदारदल क़ायम किया। उसने एक स्वर से चेम्बर से देश की माँगों को स्वीकार करने की प्रार्थना की। देश अपने शासन मे अधिकाधिक अधिकार चाहता है। उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्रिमण्डल स्थापित किये बिना और चेम्बर को सरकार से वाद-विवाद का अधिकार दिये बिना जनता को किसी प्रकार संतोष नहीं हो सकता। यही, संक्षेप मे, उनकी माँगों का सार था। सरकार इस प्रकार पार्लियामेंटरी स्वातंत्र्य की माँग को देख कर घबरा गई। अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। हाँ, यह कह दिया गया कि सरकार सदस्यों की रायों पर विचार कर रही है।

भाग्यवश इस सोच-विचार का फल अच्छा ही हुआ। रूर प्रधान मंत्री के बजाय सीनेट के सभापति हो गये। ८ सितम्बर १८६९ को जो घोषणा-पत्र निकाला गया उसमें बादशाह ने जनता की माँगें स्वीकार कर लीं। १८५२ में बादशाहत के जो सिद्धान्त बनाय गये थे, वे एक एक करके

सब छोड़ दिये गये। नेपोलियन ने अपनी भूल और कमज़ोरी स्पष्टरूप से स्वीकार कर ली। चेम्बर को बादशाह के साथ क़ानून बनाने और उनमे संशोधन करने का पूर्ण अधिकार मिल गया। मंत्री उसी के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया। चेम्बर को अपने अन्तरंग संगठन और संचालन की स्वतंत्रता दे दी गई। व्यापारिक संधियों के लिए पहले चेम्बर की स्वीकृति आवश्यक कर दी गई और सबसे बड़ी बात यह थी कि बजट भिन्न भिन्न विभागों मे पास होने लगा।

यह तो सब हुआ, लोगों की इच्छा के अनुसार उनकी माँगें स्वीकृत हो गईं, किन्तु उनके हृदय से यह दुविधा नहीं जाती थी कि इस घोषणा के अनुसार काम भी किया जायगा या यह केवल काग़ज़ी जमा-खर्च रहेगा। क्योंकि यद्यपि रूर इस क्षेत्र से हट गये थे, तथापि अभी उनके अनेक ऐसे चेले बादशाह को घेरे हुए थे जिन्होंने समय समय पर इन सिद्धान्तों को पैरों तले रौंद डाला है। लोगो को साम्राज्यवादी सिद्धान्तों से तो घृणा थी ही, किन्तु वास्तव मे उनके कार्यकर्त्ताओ से कहीं अधिक घृणा थी। यदि ये लोग एक-दम हटा दिये जाते, तो शायद देश मे शान्ति का प्रचार जल्दी हो जाता। इधर नेपोलियन की यह हालत हो गई कि वह नये चेहरों से घबराता था, इसलिए अपने पुराने साथियों को नहीं हटाना चाहता था। किन्तु धीरे-धीरे उसे निश्चय हो गया कि इन्हे हटाये बिना काम नहीं

चलने का। अन्त मे उसने २७ दिसम्बर को इमिली ओलीवर को लिखा कि क्या तुम एक ऐसा केबीनेट (मंत्रिमण्डल) बना सकते हो जो पूर्णरूप से पार्लियामेंट के बहुमत की प्रतिनिधि हो और जो हमारे ८ सितम्बर के घोषणापत्र के अनुसार अक्षरशः काम करे। किन्तु जो काम ६ महीने पहले सम्भव था, वही अब एक प्रकार से असम्भव हो गया। साम्राज्यवादी दल बादशाह से अपने प्राचीन सिद्धान्तों को छोड़ देने से बहुत क्रुद्ध हो गया। इधर राजवंशीय उदारदल की संख्या बढ़ती ही जाती थी, ये ११६ से १५० हो गये थे। किन्तु इनमे कई भेद होते जाते थे। दो तिहाई के लगभग इमिली ओलीवर के अधीन थे, वास्तव में ये प्राचीन अपरिवर्तन-दल के उत्तराधिकारी थे। शेष उदारदलवादी बफेर की अध्यक्षता मे काम करते थे। वास्तव मे इनमे भी दो दल हो रहे थे। एक तो ज्यूलिए फर्व के पक्ष मे था जो बादशाहों के सुधारो के अनुसार काम करने को तैयार था और दूसरा रोचफोर्ट की तरफ़ था, जो कहता था कि बिना पूर्ण प्रजातंत्र के देश का काम नहीं चल सकता।

जैसे-तैसे २ जनवरी १८५० को ओलीवर ने राजवंशीय उदारदलवालों की सहायता से एक मंत्रिमण्डल बनाया। अपनी उदार नीति के फल-स्वरूप उसने बहुत से प्राचीन कर्मचारियों को अलग कर दिया। साथ ही दो बिल भी पास करा लिये। एक के द्वारा तो सरकार का म्युनिसिपल कौन्सिलरो मे से ही

मेयर चुनने के लिए बाध्य किया था और दूसरे के द्वारा जनरल कैन्सिलरो को अपना सभापति चुनने का अधिकार दिया गया था। इसके अतिरिक्त चेम्बर ने प्रेसो के लिए स्टाम्प ड्यूटी घटा दी और उनके अभियोगों के निर्णय के लिए फिर जूरी की आवश्यकता बताई गई। चेम्बर ने तो अपना काम कर दिया। किन्तु सीनेट ने असाधारण देर लगाई। यहाँ एक एक मिनिट मुश्किल से कटता था। आख़िर इसी देरी ने सब मामला चौपट कर दिया।

ओलीवर था इस समय फ़्रास का भाग्य-विधाता। किन्तु वास्तव मे उससे अधिक दयनीय और कोई नहो था। क्योंकि, उदारदलवादी एक ओर से मंत्रिमण्डल पर अभियोग लगाते थे तो अपरिवर्तनवादी दूसरी ओर से। जिस समय उसको अपने साथियो की सबसे अधिक ज़रूरत थी, उसी समय वे उसे छोड़ रहे थे। सम्राट् के आसपासवाले तो उससे बेतरह चिढ़े हुए थे। ओलीवर ऐसे संकट मे पड़ा हुआ था। यद्यपि ओलोवर एक प्रसिद्ध सुवक्ता था, तथापि ऐसी नाज़ुक अवस्था मे देश की नौका को सुचारुरूप से खेने की उसमे शक्ति न थी। उसमे अपने सिद्धान्तो पर डटे रहने की शक्ति न थी। इसलिए वह कभी-कभी बादशाह और उसके साथियों की बातो मे फँस जाता था। इससे सर्व-साधारण मे वह अपनी धाक नहीं जमा सकता था।

नेपोलियन (तृतीय) को यह अच्छी तरह मालूम था कि

जनता उसको अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगी है। अन्त समय मे एक बार फिर उसने उसी उपाय का अवलम्बन करना चाहा जिसका उसने सिंहासनारूढ होते समय किया था। आख़िर उसको तख़्त पर किसने बैठाया था,—जन-साधारण ने। इस-लिए फिर उन्ही लोगो से क्यों न अपील की जाय। सुतरां २१ मार्च को उसने ओलीवर से कहा कि एक ऐसा मसविदा तैयार किया जाय जिसमे साम्राज्य के १८६० से किये हुए सभी सुधारो का समावेश हो और यह देश के समाने उपस्थित किया जाय। उसमे इस बात का भी उल्लेख रहे कि बादशाह देश के प्रति सदैव उत्तरदायी है और केवल उसी को व्यवस्था मे संशोधन करने का अधिकार है। रूर ने यह सलाह दी कि यह मसविदा एक सार्वजनिक महासभा मे स्वीकृत कराया जाय। ओलीवर को यह कार्य-क्रम बिलकुल ही नापसन्द था, क्योंकि पार्लियामेट के सामने सार्वजनिक सभा की कोई आवश्यकता न थी, किन्तु उसमें न करने की शक्ति नहीं थी। यहाँ तक कि बादशाह का रुख़ देखने के लिए उसने अपने मंत्रिमण्डल के दो एक उदारदलवादी मंत्रियों का त्याग-पत्र ग्रहण कर लिया।

८ मई को सार्वजनिक सभा हुई। अन्त मे यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि हम लोग उन सुधारों को स्वीकार करते हैं जो बादशाह ने व्यवस्था मे किये हैं। २० अप्रेल का मसविदा इन सबो की सनद है। इस प्रस्ताव पर एक-दम वोट लिये गये

थे। या तो वह स्वीकृत होता अथवा अस्वीकृत। कुछ उदारवादी और राजवंशीय लोगों ने वोट नहीं दिये। किन्तु वह बहुमत से पास हो गया। ७३,५९,००० वोट उसके पक्ष मे, १५,७२००० विपक्ष मे थे और १९,००,००० लोगो ने किसी ओर वोट नही दिया।

सार्वजनिक सभा समाप्त हो गई। नेपोलियन (तृतीय) का जनता ने समर्थन कर दिया। किन्तु वास्तव मे यह उसके लिए कोई हर्ष का समाचार नही था। क्योंकि इससे उसको बड़ा धोखा हुआ। जनता का समर्थन बिलकुल ऊपरी समर्थन था। देश के बाहर भी फ्रांस की दशा अच्छी नहीं थी। प्राय: सभी को यह निश्चय था कि शीघ्र ही एक न एक दिन हमारी जर्मनी से अवश्य बजेगी। जर्मनी मे विस्मार्क बड़ी तेज़ी से इस भावी युद्ध के लिए तैयारी कर रहा था। मानो वह लड़ाई का कोई बहाना ढूँढ़ना चाहता था, क्योकि जर्मनी इस समय लड़ाई के लिए जितना तैयार था उतना फ्रांस नही था।

लड़ाई का हेतु ढूँढ़ने मे अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। स्पेन की गद्दी बहुत दिन से ख़ाली थी। क्योंकि वहाँ के क्रान्तिकारियो ने अपनी रानी इसावेला को गद्दी से उतार दिया था। ख़ाली गद्दी के लिए जर्मनी ने अपना हाथ बढ़ाया। होहनजोलरेन नामक सरदार राजा बनना चाहा। फ्रांस को यह बात सह्य न हुई। किन्तु यदि फ्रांस अधिक गंभीरता से काम लेता, तो शायद उसके लिए अधिक हितकर होता।

स्पेन तो स्वयं किसी विदेशी राजा को स्वीकार नहीं कर सकता था। किंग जोज़ेफ़ को इसी प्रकार उन्होंने निकाल दिया था। किन्तु जर्मनी की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर फ़्रांस के होश ठिकाने नहीं थे।

पेरिस और बर्लिन के मंत्रिमण्डलो मे गरमागरम बातचीत होने लगी। फ़्रांस की दृढ़ता को देखकर जर्मन प्रिंस अपना दुराग्रह छोड़ने को राज़ो हो गया। जर्मनी के बादशाह विलियम ने मामला तय करा दिया। किन्तु अपनी सफलता से प्रसन्न हो फ़्रांस ने और टॉग फैलाई। फ़्रांस के बाह्य मंत्री ड्यूक डी ग्रामोन्ट ने विलियम से यह शर्त करानी चाही कि भविष्य मे कभी इस प्रकार का दावा नहीं किया जायगा। विलियम इस पर राज़ो न हुआ। बिस्मार्क की सहायता से तुरन्त ड्यूक डी ग्रामोट ने यूरोप में यह ख़बर फैलवा दी कि प्रुशिया के बादशाह ने हमारा अपमान किया है। बिस्मार्क ने क्यों ऐसा किया, सो ईश्वर जाने, किन्तु यह बात प्रत्यक्ष थी कि यह ख़बर बिलकुल झूठी है। फ़्रांस मे सनसनी फैल गई। चेम्बर और सीनेट ने उग्र रूप धारण किया। थियर्स आदि नेताओं ने परिस्थिति पर विचार करना चाहा, किन्तु क्रोध मे कोई किसी की नहीं सुनता। १५वीं जुलाई को ड्यूक ने अपनी फ़ौज़ें बढ़ायीं और १९ को नियमानुसार युद्ध घोषित कर दिया गया।

युद्ध तो शुरू हो गया, किन्तु नेपोलियन के पास न तो

सेना थी, न उसके खज़ाने मे धन था। जल्दी मे आस्ट्रिया से भी सहायता के लिए नहीं पूछ सका था। ऐसी अवस्था मे लड़ाई का एक ही परिणाम हो सकता था और वही हुआ। १८६८ मे सेना-सुधार और परिवर्द्धन के लिए जो प्रस्ताव हुए थे, वे अभी तक कागज़ों मे ही लिखे थे। इसलिए प्रारम्भ ही से फ्रेंच-सेनाओं की हार हुई। २, ४, ६ अगस्त को वेसीनवर्ग, रीचसोफेन, फोरवेच आदि स्थानो मे इनकी हार हुई। तुरन्त चेम्बर की बैठक की गई। ओलीवर को त्याग-पत्र देना पड़ा। उसके स्थान मे अपरिवर्तनवादियों का मंत्रिमण्डल बना और पेरिस शहर की रक्षा की तैयारी होने लगी। नेपोलियन ने स्वयं एक सैन्य के संचालन का भार ग्रहण किया। वेजेन तो पहले ही से कई जगह हार खाकर मेज के क़िले मे बन्द हो गये थे। बादशाह सेडान की ओर बढ़े और १ सितम्बर को अपनी सम्पूर्ण सेनासहित प्रुशियन बादशाह के हाथ आत्म-समर्पण कर दिया।

लड़ाई के छः सप्ताह के भीतर फ्रांस का पूर्ण पराजय हो गया। फ्रांस का ऐसा भयकर पतन पहले कभी नहीं देखा गया था। चेम्बर स्तम्भित हो गया। उदारदलवादी थियर्स ने एक अस्थायी सरकार बनाने का प्रस्ताव किया। बहुमत ने उसे चुपचाप स्वीकार कर लिया। किन्तु क्रान्तिकारी लोगों ने उसे स्वीकार न किया। उनका कहना था कि पहले साम्राज्य को दफ़न कर दो, फिर भावी सरकार की चर्चा करो। उन्होंने
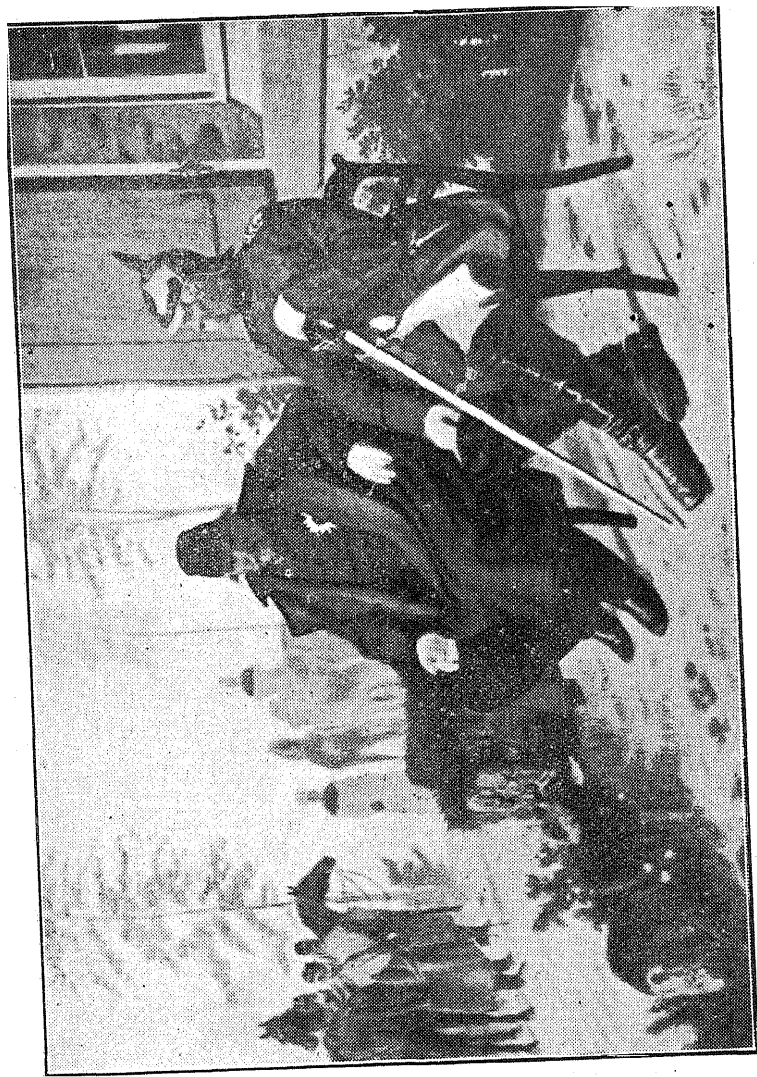
अपनी सम्पूर्ण सेना सहित प्रुशियन बादशाह के हाथ आत्मसमर्पण कर दिया।—पृ० ३४८

वेम्बर पर हमला किया और जनरल ट्रोच की अध्यक्षता में,
कि राजधानी के सैनिक-शासक थे, विली के होटल में एक
अस्थायी प्रजातांत्रिक सरकार स्थापित किया।

राष्ट्रीय सभा

(सितम्बर १८७० से ३१ दिसम्बर १८७५)

साम्राज्य के पतन का कारण स्पष्ट है। उसका जन्म प्रजातांत्रिक सिद्धान्तो मे हुआ था और उसका लालन-पालन राजतांत्रिक ढंगों से किया गया था। इन दोनों मे पूर्व-पश्चिम का नाता है। बादशाह मे इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह इनके सामञ्जस्य का कोई मार्ग ढूँढ़ निकाले। इसमे बादशाह और उसके साथियों का स्वार्थ न होता, यदि उन्होंने अपने स्वार्थ के कारण समय की गति को रोका न होता, ते सामाजिक संघर्षण से स्वयं कोई उचित मार्ग निकल आता। किन्तु ऐसा न हुआ। और उसके परिणाम मे परिवर्तन और अपरिवर्तन दोनों दलवाले बादशाह के विरोधी हो गये। परिवर्तनवादी तो इसलिए कि वे जो सुधार करना चाहते थे, बादशाह उनसे सहमत न हो सकता था और अपरिवर्तनवादी इसलिए कि वे जो स्वार्थ चलाना चाहते थे, उसमे विफल हुए।

१८४८ के फ्रांस से १८७० के फ्रांस मे बड़ा अन्तर हो गया था। नेपोलियन तृतीय के साम्राज्य से सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि मध्यम वर्ग का महत्त्व बिलकुल गिर गया। १८४८ की क्रांति मे ही उनका सामाजिक प्रभाव जाता

रहा था। द्वितीय साम्राज्य के आर्थिक आन्दोलन के कारण वे अधिक लालची, स्वार्थी और व्यवहार-कुशल हो गये थे। १८६८ के सैनिक ऐक्ट के समय अपने लड़कों को सैनिक शिक्षा देने के लिए वे बड़ी मुश्किल से राज़ी हुए थे। मध्यम-वर्ग के बहुत कम सदस्य उदार नीति का समर्थन करते थे। अपना स्वार्थ साधने के लिए उन्होंने रोमन-कैथलिको से मेल कर लिया था। एक समय जिन से वे डर कर दूर भागते थे, स्वार्थवश उन्ही से हाथ मिला रहे थे, इतना ही नहीं, उन्होंने उनसे बहुत कुछ शिक्षाये भी ग्रहण कर ली थी। यहाँ यह भी उल्लेख कर देना असंगत न होगा कि यह समय व्याख्यान-बाज़ी का था। इसलिए अपने वर्ग के वकील-बैरिस्टरों की नक़ल करके इस समाज मे इसका ख़ूब प्रचार हो रहा था।

दूसरा दल प्रजातंत्रवादियों का था। १८४८ की क्रान्ति से इसने बड़े मनोहर स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु भाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश इसको कभी शासन के संचालन का भार नही मिला। इसलिए १८७० मे भी यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता था कि इसके कौन कौन से सिद्धान्त कार्य-रूप मे परिणत होने योग्य हैं और कौन नही। रहे साम्यवादी, उन्होने तो १८४८ से एक इंच भी तरक्की नही की थी। वे १८७० में भी उसी तरह असन्तुष्ट और अज्ञानी थे जिस तरह १८४८ मे। क्योकि, कहीं पर भी इन्होंने सिद्धान्तो को व्यवहार मे लाने का उद्योग नहीं किया था। जनता

को शिक्षित करने का जो उनका मुख्य सिद्धान्त है, उसके सम्बन्ध मे भी कोई चेष्टा नही की जाती थी। उसके अन्य सिद्धान्त एक-दम अनुभवहीन, असम्बद्ध और अस्थिर थे। सार्वजनिक वोटाधिकार का बहिष्कार और साम्राज्य की स्थापना अधिकतर उन्ही के विरोध के कारण की हुई थी।

१८७० मे जा अस्थायी सरकार स्थापित हुई थी, उसमे सच-मुच सच्चे आदमियों का संगठन हुआ था। उनको देश के अधः-पतन से बचाने की कितनी चिन्ता थी, यह एक इसी बात से मालूम होता है कि उन्होंने अपने संगठन का नाम रक्खा था—देश-रक्षा-सरकार। सबसे पहले उनका उद्देश्य था फ्रांस के गिरे हुए झण्डे को ऊपर उठाना। यद्यपि ये अपने उद्देश्य मे सफल नही हुए, तथापि इन्होंने इसके लिए कोई बात उठा नहीं रखी। थियर्स सारे यूरोप मे फ्रांस को बाहिरी सहायता दिलाने के अभिप्राय से घूमता फिरा। सरकार के कुछ सदस्य स्वयं पेरिस के घेरे मे बन्द रहे और लोगो को डटे रहने के लिए उत्तेजित करते रहे। कुछ सदस्य टूरस और बोर्डों मे काम कर रहे थे। एक गेम बीटा नामक नवयुवक ने प्रान्तों मे घूम घूम कर अपनी अद्भुत वाक्शक्ति से लोगो को प्रोत्साहन दिलाया और देश मे एक जान फूँक दी। संक्षेप मे, इस सरकार का उत्साह हमको प्राचीन राष्ट्रीय पञ्चायत की तत्परता की याद दिलाता है। साथ ही इसमे एक विशेषता थी, वह यह कि इसने कभी कठोरता से काम नहीं लिया।

साढ़े पाँच महीने तक पेरिस के चारों ओर घेरा पड़ा रहा। जनरल लोग उत्साह से डटे रहे। प्रान्तों से बराबर सहायता मिलती रही। किन्तु २७ अक्टूबर को मेज के क़िले का पतन हो गया। इससे और भी हताश होकर अनेक दुर्ग शत्रु के हाथ में चले गये। इसके पश्चात् ९ नवम्बर की कोलमीर-विजय को छोड़कर फ्रेंच-सैनिकों की जनवरी १८७१ तक बराबर हार होती रही। अन्त में २९ जनवरी को पेरिस ने भी आत्म-समर्पण किया। उस दिन वरसेलीज़ में संधि की शर्तें तय हुईं और १० मई को फ्रैंक फोर्ट की संधि पर हस्ताक्षर हो गये। उसके अनुसार फ्रांस को वेलफोर्ट को छोड़ कर सम्पूर्ण अलसेक प्रान्त और लोरेन का कुछ हिस्सा जर्मनी को दे देना पड़ा। इसके अतिरिक्त पाँच लाख मिलियर्ड देने पड़े और यह तय हुआ कि जब तक यह हर्जाना न चुक जायगा, तब तक जर्मनी फ्रांस की भूमि को दबाये रहेगा। इस प्रकार से इस अपमानजनक संधि का अन्त हुआ।

राष्ट्र-रक्षा-सरकार को इस विकट परिस्थिति से बड़ी चिन्ता हो रही थी। युद्ध के समय मे उसने दो बार एसेम्बली का निर्वाचन कराना चाहा, किन्तु विस्मार्क क्षणिक संधि करने को तैयार न होता था। अन्त मे जब यह अपमान-जनक संधि हो गई और राष्ट्र को अवकाश मिला, तो निर्वाचन का प्रश्न उठा। इस बार निर्वाचन १८४२ की बेलेट-प्रथा के ढङ्ग पर हुआ था। निर्वाचन से देश के राजनैतिक भावों का पता लग

जाता है। देश युद्ध से तङ्ग आ गया था और तिस पर भी इस बार तो अपमानजनक संधि करनी पड़ी थी। लोगों ने इसका हेतु प्रजातंत्रवादियो को ठहराया था। इसलिए देश मे इनके प्रति उदासीनता फैल रही थो। एसेम्बली मे इस बार ज़मींदारों का प्राधान्य रहा, इनमे बहुत से अपरिवर्तनवादी और बहुत से राजतंत्रवादी थे।

लार नदी का ऊपरी भाग अब भो जर्मनी के अधीन था। १३ फ़रवरी को बोर्डो मे एसेम्बली की पहली बैठक हुई। १६ फ़रवरी को ज्यूलियस ग्रे उसके सभापति चुने गये। १७ फ़रवरी को थियर्स फ्रेंच-प्रजातंत्र के मुख्य कार्यकर्त्ता नियत हुए। थियर्स का फ्रेंच-एसेम्बली का सर्वेसर्वा होना पहले ही से एक प्रकार से निश्चित था; क्योकि इनकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी। यह यूरोप मे फ्रांस का मिशन ले गये थे, साथ ही उन्होंने साम्राज्य की अन्तर्राष्ट्रीय नीति का सदैव घोर विरोध किया था। जिस साम्राज्य को एसेम्बलो ने फ्रेंच राष्ट्र के पतन का मुख्य कारण माना था, भला उसके विरोधी को इस समय क्यों न उच्च आसन मिलता ?

साम्राज्यवाद के दिन गये सो गये। इस समय सवाल यह था कि वर्तमान एसेम्बली देश के उत्थान के लिए क्या करनेवाली है ? शान्ति स्थापित करना तो उसका पहला उद्देश्य था, किन्तु यह किस प्रकार हो, इसके विषय मे सदस्यों के अनेक मत थे। सच पूछा जाय तो इस समय

एसेम्बली में अपनी अपनी डफली और अपना अपना रागवाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। एसेम्बली मे कुल ७४० सदस्य थे। जिनमें से २५० के लगभग प्रजातंत्रवादी थे, एक दर्जन के लगभग पक्के क्रांतिकारी और ३० के क़रीब नेपोलियन के समर्थक थे, किन्तु ये भी खुल्लमखुल्ला उसका पक्ष लेने मे हिचकते थे। ३० सदस्यों को हम मतलबी यार कह सकते हैं। ये हमेशा हवा का रुख़ देखकर बात करते थे। लगभग १०० प्राचीन राजवंश के पक्ष में थे, कैथलिक पादरी इन्हो के सहायक थे। ३०० ओरलियनवंश के पक्ष मे थे, इनको हम अपरिर्तनवादो कह सकते हैं और शेष उदारवादो थे जो थियर्स की अध्यक्षता मे काम करते थे और जिन्हे प्रारम्भ मे प्रजातत्रवादियों से घृणा थी। किन्तु ज्यों-ज्यों साम्राज्यवादियों से इनकी घृणा बढ़ती गई त्यो त्यों प्रजातन्त्रवादियों से इनका मेल भी बढ़ता गया। यदि सच पूछा जाय तो इस समय राजतंत्रवादियों का ही बहुमत था, किन्तु उनमे एकता न होने के कारण वे देश का संचालन न कर सके। तीनों दल अपने अपने राजकुमार को लेकर लड़ रहे थे। ऐसी स्थिति मे प्रजातंत्रवादियों की बन आई। लोग धीरे-धीरे उनकी ओर झुकने और उनकी बात मानने लगे।

नरमदलवादी एक प्रकार से निष्क्रिय थे। उन्होंने प्रेस और म्यूनिसिपल निर्वाचन और संगठन के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किये। वे इस ताक मे बैठे हुए थे कि

कब मौक़ा आवे और वे पुनः किसी राजवंश को फ्रांस की गद्दी पर बैठा सकें। पादरीवर्ग बिलकुल चुप न था। उसने जैसे-तैसे १५ जुलाई १८७५ को सेकेन्डरी शिक्षा का बिल पास करा लिया। पहले उसको यह अधिकार कभी नहीं मिला था। अंधे से अंधा मनुष्य भी यह देख सकता था कि इस समय देश मे पूर्ण उत्साह, लगन, विरोधाचार सुतरां दौर्बल्य है। तथापि एसेम्बली के काम को देखकर हम कह सकते हैं कि उसने सराहनीय कार्य किया। भूखे-प्यासे और कमज़ोर देश का संगठन करना, सेना का जोड़ना, कोष भरना और हर्जाना देकर अपने देश को शत्रुओं से छुड़ाना आसान काम नहीं था। थियर्स गंभीरता से स्थिति का अध्ययन कर धीरता से काम मे जुट गया। १९ फ़रवरी को उसने एक मंत्रिमण्डल बनाया, उसमे सभी दल के प्रतिनिधि थे—तीन प्रजातंत्र के और ६ अपरिवर्तनवादी दल के ११ मार्च को उसने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। उसमे उसने सभी दलों से अपील की कि पहले देश के घावों को भर जाने दो, तत्पश्चात् व्यवस्था-सम्बन्धी झगड़े उठाओ; अन्यथा हमीं लोग अपने हाथों से देश की हत्या कर देंगे। लोग इस पर राज़ी हो गये। यह समझौता इतिहास में वोर्डों के समझौते के नाम से मशहूर है। इससे प्रजातंत्रवादियों को विशेष लाभ हुआ क्योंकि शासन अब भी उन्हीं के नाम से चलता था, इसलिए उससे जो कुछ देश का हित

हुआ, वह उन्हीं का श्रेय माना गया। इधर राज्य पक्षवाले भी इस समझौते से ख़ुश थे। वे समझते थे कि हर्जाने आदि चुकाने के लिए नये टैक्स लगाने पड़ेंगे और यह काम सदैव अप्रिय होता है। इसलिए इससे हम बचे सो अच्छा ही हुआ।

चेम्बर के इसी अधिवेशन में शासन का केन्द्र बोर्डो से बरसेलीज़ हटा दिया गया। इस परिवर्तन का भी तात्कालिक राजनैतिक परिस्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मेचोवेली ने एक बार कहा था कि जिन नगरों पर घेरे डाले थे उनमे षड्यंत्रों और विद्रोहो की जड़ जम जाती थी। इसके लिए वहाँ कारण भी यथेष्ट उपस्थित हो जाते हैं, नागरिकों का साधारण व्यवसाय रुक जाता है, रात-दिन वे हथियारो से सुसज्जित रहते हैं। घेरे मे सड़ने के कारण अपने ही नेताओं को अपराधी ठहराते हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि ये लोग न्यायोचित सरकार से घृणा करने लगते हैं। पेरिस में भी यही बात हुई। यहाँ तो घेरे के बीच ही मे पेरिसवासी फ़्रेंच-सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। जब शान्ति हुई और जर्मन-फ़ौजों ने नगर मे प्रवेश किया तो लोगों को बड़ी चोट लगी। इसके अतिरिक्त फ़्रेंच-सरकार ने फ्रेंच-नेशनल-गार्ड तोड़ दिया, जिससे सैकड़ों-हज़ारों आदमी बेकार हो गये। व्यापार बहुत दिनों से रुका हुआ था जिससे सैकड़ों छोटे-छोटे महाजनों के दिवाले निकल गये। सबसे बड़ी बात यह थी कि लोगों को अपने वर्तमान शासकों मे विश्वास नहीं था।

इसलिए देश मे मुर्दनी छाई हुई थी। कुछ धूर्तों ने इस अवस्था से लाभ उठाना चाहा। शासन का केन्द्र बोर्डों से वरसेलीज़ बदलते ही उन्होने उपद्रव खड़ा कर दिया। १८ मार्च से पेरिस की सड़कों पर दंगे होने लगे। सरकारी कर्मचारियों को फ़ौजों के बीच मे होकर वरसेलीज़ जाना पड़ा। पहले तो फ्रेंच-सरकार ने इन विद्रोहियों को समझाने की बड़ी चेष्टा की, उनके म्युनिसिपल अधिकार भी बढ़ा दिये। २८ फ़रवरी को उनकी नई म्युनिसिपल कौंसिल का निर्वाचन हुआ। अब तो उनके नेताओं ने अपना गुप्त रूप प्रकट कर दिखाया। उन्होंने पेरिस का नहीं, वरन् समस्त फ्रांस का शासन अपने अधिकार मे करना चाहा। सरकार ने भी इनको अच्छा जवाब दिया। जल्दी से एक सेना तैयार की गई। कुछ सिपाही जर्मन क़ैद से छूट आये और फिर पेरिस शहर का घेरा डाल दिया गया। किन्तु इस बार फ्रेंच-सरकार ने ही पेरिस पर घेरा डाला था। इस पर यह तुर्रा था कि जर्मन-सेनायें अब भी शहर का बाहिरी हिस्सा दबायें हुए थीं। ६ सप्ताह तक घेरा पड़ा रहा। अन्त मे २८ मई को वरसेलीज़ की फ़ौजों ने पेरिस पर क़ब्ज़ा कर लिया।

विद्रोहियों ने अपनी रक्षा के लिए कुछ कम उद्योग किया हो, सो बात नहीं थी। इस विद्रोही-संगठन को हम प्राचीन राष्ट्रीय-पंचायत का बच्चा कह सकते हैं; अन्तर केवल यह था कि इनका उद्देश्य साम्यवाद का प्रचार करना था। विद्रो-

हियों और विप्लवकारियों मे यह नियम होता है कि जो जितना उग्र होता है, वह उतना अधिक लोक-प्रिय हो जाता है। इसमें भी सबसे उग्र क्रान्तिकारियों का कहना था कि कारखाने जनता की सम्पत्ति समझे जायँ और मज़दूरी की कम से कम दर निश्चित कर दी जाय। जब इन लोगों ने देखा कि अब हमारा किसी प्रकार बचाव नहीं हो सकता तो अन्त में उन्होंने हत्या और अग्निकाण्ड से भी काम लिया। लड़ाई में बड़ा रक्तपात हुआ था, पग पग पर मारकाट हुई था। पतन के बाद हज़ारों विद्रोही युद्ध के न्यायालय के सामने विचारार्थ उपस्थित किये गये।

इस विद्रोह का पहला परिणाम यह हुआ कि देश और चेम्बर मे सर्वत्र प्रजातंत्र-सिद्धान्तों की ओर से उदासीनता हो गई। राजतंत्र-विद्रोहियो ने इस अवसर को हाथ से न जाने दिया, प्रजातंत्र को बदनाम करने लगे। उन्होंने सब बुराइयों और उपद्रवों की जड़ प्रजातंत्र को ही ठहराया। किन्तु इन बातों से अब प्रजातंत्र की धाक उखड़नेवाली नहीं थी। उसी साल .फ्रांस ने युद्ध क्षति-पूर्ति के लिए क़र्ज़ माँगा। .फ्रांस के एवं बाहर के नागरिकों ने निस्संकोच होकर .फ्रांस को रुपया उधार दिया। यद्यपि इस समय .फ्रांस का सितारा नीचा था, तथापि फ्रेंच लोगों मे काफ़ी जीवन था। जब उन्होंने देखा कि देश पर संकट है तो सहर्ष नये नये टैक्सों का भार अपने ऊपर उठा लिया। एक-दम ७५० लाख .फ्रेंक टैक्स

बढ़ाया गया। क़र्ज़ का ब्याज देने अथवा सैनिक सामान के तैयार करने मे इस धन का उपयोग किया गया।

फ्रेंच-सेना ते बिलकुल अस्त-व्यस्त हो चुकी थी, उसके नवीन सगठन के लिए भी धन की बड़ी आवश्यकता थी। प्रुशिया ने अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाने के लिए अपने देश के २० से ४० वर्ष के युवाओं के लिए सैनिक-शिक्षा ग्रहण करना एवं कम से कम पाँच वर्ष सेना मे काम करना अनिवार्य कर दिया था। फ्रांस के लिए इस समय इसके अतिरिक्त और कोई गति नही थी। २७ जुलाई १८७२ को उसने भी एक ऐसा क़ानून बना दिया। यह क़ानून ते बन गया, किन्तु इसकी सार्थकता तभी हो सकती थी, जब सब लोग इसका महत्त्व समझें और महत्त्व तभी समझ सकते थे, जब सभी देश-वासी शिक्षित हो। विक्टर डरी ने प्रारम्भिक शिक्षा के लिए बहुत उद्योग किया था, किन्तु अब भी फ्रांस में, ५,००,००० बच्चे निरक्षर थे। ज्यूलिस सिमसन ने एसेम्बली मे इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित करना चाहा कि देश मे प्रारम्भिक शिक्षा भी अनिवार्य कर दी जाय; किन्तु तुरन्त ये प्रश्न उठ खड़े हुए कि यह निश्शुल्क होगी या नहीं, इसमे पादरियों का हस्तक्षेप हागा या नहीं? ये प्रश्न ऐसे थे; जिनका निपटारा सुलभ न था। अतएव एसेम्बली ने इस प्रस्ताव पर विचार न किया।

थियर्स के प्रस्तावानुसार जब तक देश की दशा नहीं सँभल

अपरिवर्तनवादी मंत्री नियुक्त किये। कभी कभी तो उसने एसेम्बली पर धाक जमाने और अपना काम निकालने के लिए स्वयं त्याग-पत्र देने की धमकी दी। यह दवा फ़ौरन काम कर जाती थी, क्योंकि जब तक देश शत्रुओं के चंगुल से छुटकारा न पा जाता और हर्जाने का रुपया न चुक जाता, तब तक किसी को थियर्स का त्याग-पत्र स्वीकार करने का साहस नहीं हो सकता था। किन्तु भीतर ही भीतर थियर्स के विरुद्ध आग भड़कती रही। पादरियों ने अपनी आशाओं पर पानी फिरता हुआ देख कर प्रकाश्य रूप से उसका विरोध किया। यहाँ तक कि उन्होंने फिर पोप के पार्थिव-साम्राज्य-स्थापना की चर्चा उठाई।

१३ नवम्बर १८७२ के पहले देश की अवस्था बहुत कुछ सँभल चुकी थी। आर्थिक-दशा असन्तोषजनक नहीं थी, सेना का भी संतोष-प्रद संगठन हो गया था। इसलिए थियर्स ने अपने वचनानुसार व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्न उठाया। क्रान्तिकारियों से उसने आग्रह-पूर्वक कहा—तुम लोगों को नियम और व्यवस्था के ऊपर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये। देश में दो बार प्रजातंत्र की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु आप लोग दोनों बार अपने उद्देश्य मे असफल हुए। इसका कारण नियमो की अवहेलना है। राजतंत्रवादियों से उसने कहा—देश में प्रजातंत्र स्थापित हो चुका है, यही देश के लिए न्यायसंगत शासन-प्रणाली है। इसके साथ द्रोह करना देश-द्रोह करना

है। इसलिए हम लोगों को सहर्ष उसका स्वागत करना चाहिए। हाँ, यह हम लोगो का पहला कर्त्तव्य है कि उसका स्वरूप स्थिर करने मे अपनी स्वतंत्र इच्छा से भर-पूर काम लें। वास्तव मे समाज को परिवर्तनप्रिय नहीं होना चाहिए। जो लोग परिवर्तन के लिए ही परिवर्तन-परिवर्तन चिल्लाया करते हैं, वे कदापि उन्नति नहीं कर सकते।

इस स्पष्ट और गंभीर भाषण से लोग चौकन्ने हो गये। सर्वत्र हल-चल मच गई। प्रजातंत्रवादी तो थियर्स की अध्यक्षता मे काम करने को तैयार हो गये किन्तु राजतंत्रवादियों से अपना प्यारा सिद्धान्त न छोड़ा गया। वे थियर्स से सचेत हो गये। जब १३ मार्च १८७३ को एक एसेम्बली के स्थान में दो हाउस बनाने का मन्तव्य स्वीकृत हुआ, तो उसमे राजतंत्रवादियों ने यह उपनियम जोड़वा दिया कि जिस बैठक में थियर्स का चित्ताकर्षक व्याख्यान हो, उसमें फिर किसी विषय पर वोट न लिये जायँ। १७ मार्च को जर्मनी के साथ संधि की जो अन्तिम शर्तें स्वीकृत हुई उनके अनुसार जर्मनी ने बहुत जल्दी हर्जाना चुकवाने की शर्त मान ली, जिससे फ्रांस को शत्रु के हाथ से जल्दी छुटकारा पाने की आशा हो गई। बस, राजतंत्रवादियों ने सोचा - अब थियर्स की कोई आवश्यकता नहीं। तीनों दल वफेट, ड्यूकडी ब्रोगली, इरनोल आदि की अध्यक्षता मे थियर्स को हराने के लिए एक हो गये। पहले-पहल ४ अप्रेल को उन्होंने जूलियस ग्रेवी को निकालकर

वफेट को सभापति बनाया और कुछ दिनों के बाद थियर्स को को भी प्रजातंत्रवादियों से मिल जाने के कारण निकाल दिया। थियर्स केवल १६ वोटों से हारा था। उसके स्थान पर २४ मई १८७३ को मारशल-मेकमहोन राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्त्ता निर्वाचित किये गये। उन्होंने ड्यूक डी ओगली की अध्यक्षता मे एक मंत्रि।ण्डल बनाया। इसका उद्देश्य क्रान्तिवाद का दमन करना और शासन को प्राचीन-पद्धति के अनुसार चलाना था। बहुत से सरकारी कर्मचारी बदल दिये गये, बहुत से समाचार-पत्र बन्द करा दिये गये, कैथलिक आन्दोलन की ओर सहानुभूति दिखलाई गई। इन्हीं सब बातों से उसका अपरिवर्तन-सिद्धान्त प्रकट हो गया।

थियर्स अब पूर्णरूप से प्रजातांत्रिक दल में जा मिला था। उसके प्रभाव से इस दल मे बहुत गंभीरता एवं बुद्धिमत्ता आ गई थी। न तो उन्होंने कोई विद्रोह मचाया और न उपद्रव खड़ा किया। वे .फ्रास मे प्रजातंत्र की स्थापना करने पर तुले हुए थे, किन्तु अब ढोंग नहीं रचना चाहते थे, वरन् जनता को धीरे धीरे शान्त रूप से अपनी ओर खींच रहे थे। राजतंत्र-वादियों ने एसेम्बलो मे व्यवस्था का प्रश्न उठाया, इस पर भी प्रजातंत्रवादी उत्तेजित नहीं हुए, क्योंकि वे जानते थे कि राज-तंत्रवादियों और अपरिवर्तनवादियों मे कभी नही पट सकती। इधर राजतंत्रवादियों मे परस्पर मिलने की कोशिश होने लगी, मेकमहोन के सभापतित्व का एकमात्र उद्देश्य .फ्रांस की गद्दी पर

किसी राज-वंश के पुरुष को बैठाना था। १८५० की भाँति १८७३ मे प्रमुख राजतंत्रवादियों के उद्योग से लुई और ओर-लियन-वंश मे मेल हो गया। दसवें चार्ल्स के उत्तराधिकारी काउण्ट डी चेम्बोर्ड के कोई सन्तान नही था, इसलिए यह आशा की जाती थी कि लुई-फ़िलिप का नाती पहले उसी को गद्दी पर बैठने देगा। ८ जून १८७१ को एसेम्बली ने १८३२ और १८:८ के उन नियमो को जिनके द्वारा राजवंश के सदस्य फ़्रांस से बाहर निकाल दिये गये थे, तोड़ दिये। इन लोगों को विश्वास होगया कि अब हमारे उद्देश्य की पूर्ति में विलम्ब नहीं है। किन्तु उन्होंने काउन्ट डी चेम्बोर्ड के स्वभाव का यथेष्ट अध्ययन नहीं किया था। वह पक्का बादशाह था, उसकी नसों मे अब भी वही पुराना ख़ून लहरें मार रहा था। उसने देश की व्यवस्था-संबंधी सलाह से काम करने से साफ़ इनकार कर दिया। वह कहता था, मैं बादशाह हूँ, ईश्वर ने मुझे बादशाहत करने के लिए बनाया है, मैं अपनी इच्छा के अनुसार काम करूंगा। अक्टूबर के अन्त मे राजतंत्रवादियों के परामर्शों का अन्त हो गया। मालूम हो गया कि इन लोगों से कुछ होने जाने का नही।

किन्तु इस राज-तंत्र-आन्दोलन के दो उल्लेखनीय परिणाम हुए। एक तो यह कि इन लोगों से बोनापार्ट का दल क्रुद्ध हो गया, क्योंकि इन्होंने अकारण इनको अपनी मंत्रणा से पृथक् कर दिया। दूसरा परिणाम यह हुआ कि लोगों का ध्यान प्रजातंत्र की ओर और भी दृढ़ता से झुक

गया, क्योंकि उनको किसी भी राजवंश के सदस्य की हुकूमत अब सह्य नहीं हो सकती थी।

तो भी व्यवस्था-सम्बन्धी इस झमेले को सुलझाना परम कर्त्तव्य था। वोर्डो में युद्ध के पश्चात् जो अस्थायो सरकार बनी थो, वह इस प्रकार अस्थायी कहला कर कब तक चल सकती थो। इसलिए एसेम्बली के बहुमत ने अपने ध्येय की पूर्ति के लिए एक नया उपाय निकाला। उन्होंने सोचा कि जब तक काउन्ट डी चेम्बोर्ड शान्तिपूर्वक नहीं मर जाते, तब तक हम किसी स्थायो सरकार का निर्माण नहीं करते। उसके पश्चात् काउन्ट डी पेरिस फ्रांस की गद्दी पर बैठेंगे। तब तक सुचारुरूप से काम करने के लिए उन्होंने यह नियम बना दिया कि मेकमहोन सात बार तक राष्ट्र के सभापति रहेंगे। साथ ही उसने यह घोषणा की कि तीन दिन के भीतर एसेम्बली-व्यवस्था मे संशोधन करने के लिए एक कमीशन बैठायेगी। इस पर मंत्रिमण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया। ड्यूक डी ब्रागली ने राजतंत्रवादियों की सहायता से एक नया मन्त्रिमण्डल तैयार किया।

एसेम्बलो की इस घोषणा के दो फल हुए। एक तो यह कि ओरलियन-वंश की स्वार्थपरता देखकर लुई-वंशवाले इतने चिढ़ गये कि वे केवल ईर्ष्या-वश कभी कभी प्रजातंत्रवादी पार्टी का साथ देने लगे। दूसरा यह कि बे नापार्ट के पक्षवालों को भी कुछ हिम्मत हुई। इधर लोग अन्तिम अपमान-जनक

युद्ध की बात भूल रहे थे, उधर उन दोनों वंशों मे फूट पड़ गई थी। बोनापार्ट दलवाले सोच रहे थे कि वे शायद इस स्थिति से अधिक लाभ उठा सके और १८७४ के निर्वाचन में उस दल के थोड़े से सदस्य सचमुच एसेम्बली मे पहुँच गये।

दोनो राज-वशों के मिलान से रोमन-कैथलिक लोगों ने बडी-बड़ी आशाये बाँधी थीं। उसके टूटते ही उनका हृदय टूट गया। जर्मनी मे भी रोमन-कैथलिकों की यही हालत थी। वहाँ के प्रश्नों को लेकर फ्रांस के धार्मिक समाचारपत्रों ने जर्मन-सरकार को बे-धड़क फटकारना शुरू किया। इससे फ्रांस का मंत्रिमण्डल डर गया। उसने इन लोगो को हर तरह समझाना चाहा कि हम आपके विरोधी नही हैं। यही दिखलाने के लिए प्रधानमंत्री ने १८५० की तरह वोटदाताओ की सख्या कम करने की चेष्टा की, म्युनिसिपल कौंसिलों के सभापति पुनः सरकार-द्वारा नियत किये जाने लगे और उसका भी जनता-द्वारा निर्वाचित कौंसिलर होना ज़रूरी नही रह गया। ब्रोगली ने इन प्रस्तावो के द्वारा अपना असली रूप दिखा दिया, किन्तु तौ भी एसेम्बली के बहुमत ने उसका साथ न दिया। १९ नवम्बर के घोषणापत्रों को अभी लोग भूले नही थे। १६ मई १८७४ को प्रजातंत्र और लुई-वंशीय राजतंत्र को हरा दिया। किन्तु विजेताओं में स्वयं पूर्व-पश्चिम का नाता था।

ऐसी विकट अवस्था में मारशल-मेकमहोन को बहुमत

के विपक्षियों मे से अपना मंत्रिमण्डल चुनना पड़ा। बहुमत के विरोधियों मे से फ्रांस के प्रधान मंत्री, सभापति अथवा बादशाह को बारबार अपना मंत्रिमण्डल चुनना पड़ा। इस बार २३ मई को जनरल डी सिसी प्रधान मंत्री बनाये गये। यह योग्य थे। इन्होने राजतंत्रवादियों से व्यवस्थासम्बन्धी प्रश्न फिर कुछ दिनों के लिए स्थगित करवा दिया। किन्तु कितने दिनों के लिए, यह कुछ निश्चित नहीं था। कार्य-कर्त्ताओं के अधिकार ऐसे विषयों मे उस समय बिलकुल अमर्यादित थे। वास्तव में ईमानदारी की बात तो यही थी कि जनता के प्रतिनिधि एसेम्बली के रूप मे बैठकर अपने भावी शासन के विषय मे निपटारा कर लेते और जो बहुमत से तय होता, उसी को ग्रहण करते। किन्तु राजतंत्रवादी इस साधारण सिद्धान्त को भी नहीं मानना चाहते। राजवंश की प्रतिष्ठा अब एक प्रकार से उनकी शक्ति के बाहर की बात हो गई थी, इसलिए वे चाहते थे कि जब तक प्रजातंत्र का प्रश्न टलता जाय, तभी तक अच्छा है। यदि भाग्यवश काउन्ट डी चेम्बर्ड की इसी बीच में किसी कारण से मृत्यु हो जाती, तभी ओरलियन वश को कुछ आशा हो सकती थी। सरकार इसी सोच-विचार मे उलझी हुई थी। इतने मे बोनापार्ट के दल ने एक आन्दोलन पेरिस मे खड़ा किया, वे एक सार्वजनिक सभा-द्वारा इन्हीं सब प्रश्नों का निपटारा कराना चाहते थे। सरकार ने उनकी इस माँग को अस्वीकृत कर दिया। जिन समाचारों में इस पक्ष

का समर्थन किया जाता था, उनके ऊपर भी अत्याचार किया गया। किन्तु देहातों मे एकाएक साम्राज्यवाद के प्रति श्रद्धा का भाव दिखाई दिया, उसी के कारण जैसा ऊपर लिखा जा चुका है बोनापार्टवालों को एसेम्बली में कुछ जगहे मिल गईं। इस आन्दोलन से राजनैतिक नेताओं मे आतङ्क छा गया। वे साम्राज्यवाद से भूत की नाईं डरते थे। अपनी दूरदर्शिता के कारण थियर्स पहले ही से लोगों को उचित रीति से प्रजातंत्र के समर्थन के लिए समझा रहा था। लेकिन उसकी सूखी-रूखी बात पर कौन ध्यान देनेवाला था। जब उनको साम्राज्यवाद के आन्दोलन मे कुछ बल दिखाई दिया तो अपरिवर्तनवादी भी व्यवस्था मे संशोधन करने की चर्चा करने लगे। जो काम बुद्धि के द्वारा वर्षों मे नहीं हो सका था, वह डर के मारे महीनों मे पूर्ण हो गया।

१८७५ के जनवरी और फ़रवरी महीने मे जो घटनायें हुईं, वे एकदम नाटकीय एवं कौतूहल-वर्द्धक हैं। नाटकीय इसलिए कि इतना बड़ा प्रश्न बात की बात मे हल हो गया। अन्तिम निर्णय की संदिग्धावस्था भी नाटकीय औत्सुक्य से किसी प्रकार कम नहीं थी और कौतूहल-वर्द्धक इसलिए कि पहले तो राजतंत्रवादियों ने प्रजातंत्रवादियों की शर्तों को अनेक बार ठुकरा दिया अन्त में उन्हीं को अपनी भूल के कारण नीचा देखना पड़ा।

२४ और २५ फ़रवरी को शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध मे दो

ऐक्ट स्वीकृत हुए। इसके बाद १६ जुलाई को शासन-प्रबन्ध के विभिन्न विभागों के परस्पर संबंध दिखलाने के लिए जो ऐक्ट पास हुआ वह इतिहास मे १८७५ की व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय से लेकर आजतक इस व्यवस्था में दो एक संशोधन भी किये गये हैं किन्तु अभी तक उसके रूप मे कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। इस व्यवस्था के अनुसार फ्रांस मे दो सभायें क़ायम की गईं, एक सीनेट और दूसरी चेम्बर आव् डिपटीज़। इन दोनों का संगठन सर्वसाधारण के निर्वाचन पर निर्भर रहता है। दोनों को मिलाकर नेशनल-एसेम्बली बनती है। सभापति के चुनाव के लिए अथवा दोनों सभाओं द्वारा प्रस्तावित होने पर व्यवस्था-संबंधी परिवर्तन पर विचार करने के लिए इस नेशनल-एसेम्बली का अधिवेशन होता है। सभापति संगीन मामलों को छोड़कर साधारणतः सभाओं के प्रति उत्तरदायी नहीं रहता। सात वर्ष तक सभापतित्व करने के बाद वही व्यक्ति फिर सभापति चुना जा सकता है। सभापति मंत्रियों को नियुक्त और पदच्युत करता है। यही मंत्री व्यक्तिगत और सम्मिलित रूप से अपने कार्यों के लिए सभाओं के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। सभापति सीनेट की अनुमति से चेम्बर को भंगकर सकता है। सीनेट की आयु नौ वर्ष की होती है। उसके एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष बदल दिये जाते हैं। भिन्न भिन्न प्रतिनिधि-सभाओं को इस में वोट देने का अधिकार है।

चेम्बर के सदस्य चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य को इन सदस्यों को वोट देने का अधिकार प्राप्त है।

सीनेटर और डिप्टी का वार्षिक वेतन ९,००० फ्रैंक के लगभग होता है। साधारणतः इनको अन्य किसी प्रकार की नौकरी करने की आज्ञा नहीं दी जाती। साल में कम से कम पाँच महीने पार्लियामेंट की बैठक होती रहती है। सभापति किसी आवश्यक कारण से जब चाहे तब उसका अधिवेशन कर सकता है।

पार्लियामेंट और सभापति दोनो को संयुक्त रूप से क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया है। पार्लियामेंट मंत्रियों से प्रश्न करती है और मदवार बजट पर बहस करती है। किसी प्रकार की लड़ाई या संधि बिना इसके प्रस्ताव के नहीं की जा सकती। चेम्बर जिन मंत्रियों पर अभियोग लगाती है, सीनेट उन पर सभापति की सम्मति से अन्तिम निर्णय देता है।

इस व्यवस्था को हम किसी प्रकार पूर्ण व्यवस्था नहीं कह सकते। वास्तव मे संशोधन और परिवर्द्धन की जगह सर्वत्र विद्यमान रहती है। किन्तु १७८९ से फ़्रांस में जितने प्रकार की व्यवस्थायें बनी थी, यह उन सबों मे श्रेष्ठ थो। इसमें समयानुकूल संशोधन के लिए काफ़ी स्थान था। जिन बुराइयों के कारण वे व्यवस्थाएँ असफल हुई थीं, वे इससे दूर कर दी गई थीं। इसमे लोगों को विचार की पूर्ण स्वतंत्रता

दी गई। वास्तव मे यह किसी एक विशिष्ट समुदाय की बनाई हुई नहीं थी। राजतंत्रवादियों ने बाध्य होकर इस प्रजातांत्रिक व्यवस्था का निर्माण किया था। इसमे फ्रांस ने अपने सभी पिछले अनुभवों से काम लिया था। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमे किसी विशेष दल का प्राधान्य नहीं था।

संसार के राजनैतिक इतिहास मे इस व्यवस्था का उच्च स्थान है। पार्लियामेंट प्रथा के अनुसार शासन करनेवाला यह पहला प्रजातंत्र है। इसमे किसी आदर्शवादी सिद्धान्त का समावेश नहीं किया गया था जो कार्यरूप मे परिणत न हो सके। यह एकदम व्यावहारिक था, देश की तात्कालिक अवस्था के अनुकूल होने के साथ-साथ इसमे देश की भावी समस्याओं के हल करने की भी पूरी जगह थी। १८७१ की नेशनल-एसेम्बली ने जिस प्रकार इस महान् कार्य को सम्पन्न किया, वह सर्वथा सराहनीय है। २ अगस्त और २० नवम्बर १८७५ के ऐक्टों के द्वारा उसने सीनेट और चेम्बर के निर्वाचन-विधान के लिए नियमों का ब्यौरा भी तैयार कर दिया।

जिस दिन उपर्युक्त व्यवस्था स्वीकृत हुई, उसी दिन सिसी के मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि उसे कभी बहुमत प्राप्त करने की आशा नहीं थी। मेकमहोन ने एसेम्बली के सभापति वफेट से मंत्रिमण्डल बनाने के लिए कहा। वफेट प्रारम्भ में ओरलियन-वंश के पक्षपातियों में से था। समय की गति के अनुसार उसे अपने ही सिद्धान्तों के विरुद्ध

मंत्रिमण्डल का निर्माण करना पड़ा। इस बहाने से कि यदि हम मंत्रिमण्डल में उन व्यक्तियों को लेंगे, जिन्होंने हमारे सिद्धान्तों का विरोध किया है, तो हमारे सिद्धान्त जनता में और भी अधिक लोकप्रिय हो जायँगे। वफेट ने अपने मंत्रि-मण्डल में फ्रांस की नवीन व्यवस्था के विरोधियों को सम्मि-लित कर लिया। किन्तु जब इस मंत्रिमंडल ने सचमुच इनके सिद्धान्तों का कार्यरूप में विरोध करना शुरू कर दिया तो लोगों की आँखें खुल गईं। उदाहरण के लिए १२ जुलाई १८७५ को उच्च शिक्षा ऐक्ट बना। सिद्धान्तरूप से कोई इसका विरोध नहीं कर सकता था। किन्तु इसके द्वारा रोमन-कैथलिक चर्चों को ज़बर्दस्ती क़ानून, चिकित्सा, विज्ञान, कला आदि सिखानेवाले स्कूल और कालेजों के खोलने का अधिकार दे दिया गया। इतना ही नहीं, साधारण जनता इस अधिकार से वञ्चित कर दी गई। उपाधियों के वितरण करने का काम भी सरकार ने अपने जिम्मे नहीं रखा। इसी प्रकार यद्यपि २९ दिसम्बर १८७५ को प्रेसों के कतिपय अभियोगों के निर्णय के लिए पुनः जूरी बैठाने का नियम बना दिया गया तथापि पेरिस, मारसेलीज़, लिओन आदि में अभी यह क़ानून चालू नहीं किया गया। आगामी निर्वाचन मे इन सब बातों के दुष्परिणाम स्पष्ट दिखाई देने लगे।

३१ दिसम्बर १८७५ को नेशनल एसेम्बली भंग हो गई। देश ने इस पर हर्ष प्रकट किया। यद्यपि साम्राज्य के पतन के

बाद प्रारम्भ मे देश की रक्षा के निमित्त इस एसेम्बली ने अच्छा उद्योग किया था, तथापि अब यह पुनः राजवंश की स्थापना के लिए चेष्टा करने लगी, इससे इसकी लोकप्रियता जाती रही। १८७३ मे जब इसने अपने असली संचालक थियर्स को बाहर निकाल दिया, तब इसके मुँह पर मानों स्याही लग गई। इसके पश्चात् किसी राज-वंश के उत्तराधिकारी को फ़्रांस का बादशाह बनाने की व्यर्थ चेष्टा मे उसने पूरे तीन वर्ष बरबाद कर दिये। अन्त मे १८७५ मे फ़्रांस वहीं पर लौट आया जहाँ थियर्स ने उसे १८७२ मे छोड़ा था और तब उसने फ़्रांस की नवीन व्यवस्था स्वीकार कर ली।

रोमन-कैथलिकों के प्रति अत्यधिक उदारता, प्रजातन्त्र मे भारी अविश्वास, अस्थायी और ऊपरी सुधार-प्रेम, अपनी अयोग्यता पर क्रोध और देश को अपनी ओर खींचने में असामर्थ्य—ये नेशनल-एसेम्बली के इतिहास की प्रधान घटनाएँ हैं। इन्हीं के कारण वह देश मे आवश्यकता से अधिक बुरी समझी जाने लगी थी।

१५

तृतीय प्रजातंत्र

(१ जनवरी १८७६–जनवरी १८६५)

१८७६ से १८६५ का समय तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है। १८७६ से १८७६ तक का समय नेशनल-एसेम्बली की मृत्यु के बाद उसकी अन्त्येष्टि क्रिया कही जा सकती है, इसमे राजतंत्रवादियों की ग्लानि का घृणित चित्र दिखाई देता है। १८७६ से १८८५ तक का समय विजयी प्रजा-तन्त्र का बाल्यकाल है। इसमे प्रजातन्त्र की नींव स्थिर हुई है, उसका संगठन हुआ है, देश को प्रजातन्त्र की प्रारम्भिक शिक्षा दी गई है। इस समय फ़्रांस ने यूरोप के अन्य देशों के साथ उपनिवेशों के बसाने के लिए भीषण प्रयत्न किया। १८८५ मे प्रजातन्त्र ने स्वदेशीय शत्रुओं को जीत लिया था और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भी उपयुक्त स्थान प्राप्त कर लिया। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय पार्लियामेटरी प्रजातत्र प्रौढ़ावस्था को पहुँच गया था।

१८७६ के नवीन निर्वाचन से राजनैतिक अस्थिरता और दलबन्दियों का अच्छा पता चलता है। राजतन्त्रवादी अपना मोह नहीं छोड़ना चाहते थे, इसलिए उन्होंने फिर व्यवस्था को उलटने की पुकार मचाई। इस छोटे से दल के लोग

अपने आपको व्यवस्थावादी कहते थे। किन्तु वास्तव मे ये कट्टर अपरिवर्तनवादी और ओरलियन राज-वंश के अनुयायी थे। उदारदलवादी थियर्स की अध्यक्षता मे काम करते थे, इन्होने १८७५ की व्यवस्था का हृदय से स्वागत किया। यह दल प्रभावशाली था, इसमे उसके बहुत से विरोधी भी आ मिले थे। प्रजातन्त्रवादी दल अधिकतर उदार-दल का समर्थन करता था। वह संशोधन का प्रबल विरोधी तथा, जन-शिक्षा और आर्थिक-सुधार का पोषक था। क्रान्तिकारी दल संख्या मे छोटा था, यह अपने को प्राचीन क्रान्ति का अनुयायी बतलाता था। इसका कहना था कि पार्लियामेंट को राष्ट्र के प्रधान कर्मचारी को निकालने का अधिकार सदैव प्राप्त रहना चाहिए और सभी मुख्य एवं मौलिक क़ानून सार्वजनिक सभाओं द्वारा स्वीकृत होने चाहिए, रोमन-कैथलिक राज-धर्म नहीं होना चाहिए, पूँजीपतियों और श्री-पतियों पर क्रमानुसार अतिरिक्त टेक्स लगना चाहिए। संक्षेप मे इसका झुकाव साम्यवाद की ओर था। इसलिए फ्रांस के बैंक रेलवे और खानों पर भी राष्ट्र का आधिपत्य देखना चाहते थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि नवीन व्यवस्था के दो विरोधी थे। किन्तु दो भिन्न भिन्न कारणों से। इन दोनों विरोधियों के कभी मिलने की सम्भावना नहीं थी, तथापि ये दोनों सरकार के विरुद्ध वोट देने को तैयार थे। नियमानुसार इस बार जो मंत्री चुने गये थे, वे पार्लियामेंट

के प्रति उत्तरदायी थे। पार्लियामेट में किसी एक दल का निश्चित बहुमत नहीं था। इसलिए मंत्रिमण्डल भी खिचड़ी रूप मे था। ऐसी अवस्था मे प्रारम्भ ही से उसके दोनों विरोधियों ने उसकी स्थिति को और भी नाज़ुक कर दिया। राजतंत्रियों को राज-वंश की धुन सवार थी और क्रान्तिकारी ऐसे आदर्श सिद्धान्तों के पीछे पड़े थे जो कार्यरूप मे परिणत नहीं किये जा सकते थे। जो सुधार उनको दिये जाते थे, वे उनको अपर्याप्त बतलाकर ठुकरा देते थे। इतने ही से उनकी आपत्तियों की इति-श्री नही थी। फ़्रेंच लोग व्यक्तिगत अधिकार और प्रभाव से चिढ़े हुए थे, लगभग एक शताब्दी से वे इसी के दुख भोग रहे थे। दूसरी बुराई लागों का सीनेट के प्रति अविश्वास था। सच पूछा जाय ता सीनेट का संगठन ही भ्रमोत्पादक था।

फ़्रांस के आधुनिक युग की यदि सबसे बड़ी विशेषता पूछी जाय, तो यह कहा जा सकता है कि इस काल मे फ़्रेंच-राज्य-सिंहासन पर एक के बाद एक शासक बैठे, किन्तु एक ही कारण से उनका पतन होता गया और एक ही कारण से उनके उत्तराधिकारी शासक बनते गये। पतन का कारण था व्यक्तिगत अधिकारों का दुरोपयोग और उत्थान का कारण यह भ्रम था कि देश की जितनी नाज़ुक अवस्था हो, उसकी रक्षा के लिए उतने ही सर्वाधिकारसम्पन्न शासक की आवश्यकता है। इसलिए १८७५ में फ़्रेंचों को यह विश्वास

हो गया कि व्यक्तिगत अधिकार बुराई की जड़ है। बार-बार धोखा खाने से लोग यह भूल गये कि इस बार ये अधिकार निर्वाचित संस्थाओं को दिये गये हैं, जो सदैव राष्ट्र की इच्छा के अनुकूल कार्य करने के लिए बाध्य हैं। राष्ट्र की अवहेलना उनकी शक्ति के बाहर है।

इसमे सन्देह नहीं, कार्यकर्त्ता अभो विगत साम्राज्यों के अधिकारों को नहीं भूले थे, १८७७ मे वे उनको दुहराना भी चाहते थे। किन्तु अब वह ज़माना नहीं रह गया था। लोग कार्यकर्त्ताओं को केवल कार्यकर्त्ता होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखने लगते थे। न तो मंत्रिमण्डल जन-प्रिय था और न उसे कोई अधिकार था। इस प्रकार पार्लियामेट की दलबन्दी के आगे उसकी शक्ति क्षीण होती गई। १८७७ मे मंत्रिमण्डल ने चेम्बर को भंग करना चाहा। नियमानुसार उसको अधिकार था, किन्तु जनता की पुकार के आगे वह इसमे समर्थ न हुआ। अन्त मे मंत्रिमण्डल ने क्षणिक दल-बन्दियों के आगे सिर झुकाने मे ही अपनी भलाई समझी। उसे डर था कि यदि वह अपने अधिकारों पर ज़ोर दे, तो कहीं उस पर निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का दोष न लगाया जाय।

इससे भी अधिक भयङ्कर सीनेट का प्रश्न था। फ्रेंच लोगों को जटिलता पसन्द नहीं होती। वे तर्क करते थे कि यदि चेम्बर के सदस्य जनता द्वारा चुने जाते हैं और उन्हीं को

देश पर शासन करने का वास्तविक अधिकार है, तो फिर उनके कार्यों की देख-रेख करने के लिए किसी दूसरे चेम्बर की क्या आवश्यकता है। इस तर्क के द्वारा वे सीनेट की निरर्थकता सिद्ध करते थे। वास्तव में व्यवहारिक राजनीति के अतिरिक्त इस आक्षेप का और कहीं समुचित उत्तर भी नहीं मिल सकता। तात्कालिक परिस्थिति के कारण इस प्रश्न की गंभीरता और भी अधिक बढ़ गई थी। नवीन व्यवस्था के अनुसार सभी कार्यकर्त्ताओं को—चेम्बर के सदस्यों को और राष्ट्रपति को एक निर्दिष्ट समय के लिए अधिकार दिये गये थे। उस अवधि के बाद सामान्य रूप से उनका अधिकार छिन जाता था। सुतरां जब सार्वजनिक वोटाधिकार के द्वारा चेम्बर का निर्वाचन हुआ तो उसमे ३५० प्रजातंत्रवादी और सब मिलाकर १५० राजतंत्रवादी सदस्य चुने गये। सीनेट की अवस्था इसके अनुकूल न थी। इसका चुनाव चुने हुए वोटों द्वारा होता था और प्रत्येक तीसरे वर्ष मे उसके तृतीयांश सदस्यों को बदलने का नियम था। इसलिए १८८९ तक बराबर उसमे राजतंत्रवादियों का बोल-बाला रहा। बस, सीनेट के प्रति यही सबसे बड़ा लांछन था और इसी एक दोष के कारण एक प्रकार से व्यवस्था के निर्माता अपने मनोरथ मे असफल हुए।

१८७६ के निर्वाचन से राजतंत्रवादी किसी प्रकार हताश नहीं हुए। वे समझते थे कि प्रजातंत्र हमारे विकास का एक

पहलू है और सभापति मारशल मेकमहोन की सहायता से जनता पुनः उनकी ओर झुक जायगी। इसलिए एक ओर तो वे सभापति को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा करते थे और दूसरी ओर रोमन-कैथलिकों को भड़काने का उद्योग करते थे। निर्वाचन के बाद पादरियों ने पुनः अपना आन्दोलन उठाया। लोग पोप की पार्थिव शक्तियों के पुनरुद्धार के लिए पुकार मचाने लगे। बिशप लोगों ने प्रजातंत्र मे अपने प्रतिकूल कोई बात देखे बिना ही उसकी निन्दा शुरू कर दी। दिन प्रति दिन नेशनल के भीतर और बाहर यह लड़ाई भयंकर रूप धारण करती गई। ज्यों ज्यों राजतंत्रवादी रोमन-चर्च और पोप की ओर झुकते जाते थे, त्यों त्यों उदारदलवादी और स्वतंत्र विचारवाले रोमन-कैथलिकों का विरोध करते जाते थे। लोग चाहते थे कि जितनी जल्दी इनकी रही-सही मान-मर्यादा और उपद्रव नष्ट हों, उतना ही अच्छा है।

प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन के बाद वफेट के मंत्रिमण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया था, क्योंकि उसके संगठन एवं पार्लियामेट की इच्छाओं मे मेल नहीं था।

अब प्रश्न यह हुआ कि नई केबीनेट कौन बनावे? सभापति और सीनेट के विरोध को देखते हुए मंत्रिमण्डल का उत्तर-दायित्व आसान काम नहीं था। जैसे-तैसे १० मार्च को डूफर इस भार को उठाने के लिए तैयार हुए। उन्होंने जहाँ तक हो सका, प्रजातंत्र-दल के नरम से नरम एवं प्रभावहीन से प्रभाव-

हीन व्यक्तियों को अपने मण्डल में लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस मंत्रिमण्डल से न तो सभापति, न सीनेट और न प्रजातंत्रदल कोई ख़ुश न हुआ। उसका सबसे अधिक उल्लेखनीय काम यह था कि १३ अगस्त १८७६ को प्रान्तो मे म्युनिसिपल कौन्सिलों को स्वयं अपना मेयर चुनने का अधिकार दिया गया। इस प्रस्ताव को स्वीकार कराने मे ज़मीदारों और ताल्लुक़ेदारों ने मंत्रिमण्डल का साथ दिया, क्योंकि इसके द्वारा उनके महत्त्व के बढ़ने की आशा थी। इसका दूसरा प्रस्ताव यह था कि राष्ट्र को एकमात्र उच्च पदवियों के वितरण करने का अधिकार रहे। सीनेट ने इसका विरोध किया। प्रस्ताव गिर गया। मंत्रिमण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया और उसके स्थान पर १२ दिसम्बर १८७६ को ज्यूलिस साइमन की अध्यक्षता में नया मंत्रिमण्डल बना।

पहले की अपेक्षा यह मंत्रिमण्डल अधिक प्रजातात्रिक था। इसलिए सीनेट ने इसका और भी घोर विरोध किया। अतएव वह किसी सुधार में सफल न हुआ। प्रेस और म्युनिसिपलटियों के सम्बन्ध में उसने दो-एक छोटी-मोटी सुधार-योजनायें उपस्थित करनी चाही। उस समय उनका जो विरोध किया गया, वह प्रजातंत्र के विरोधियों का सबसे अधिक उग्र रूप था। अन्त में १६ मई १८७७ को मारशल मेकमहोन ने देशरक्षा का गुरुतर भार अपने ऊपर समझकर एकाएक मंत्रिमण्डल तोड़ दिया और ड्यूक डी ब्रोगली को प्रधान मंत्री

बनाया। उसका उद्देश्य देश मे पुनः प्राचीन नैतिक शासन की स्थापना बतलाया गया। जिस मंत्रिमण्डल ने १८७३ मे थियर्स को उखाड़ फेंका था, उसी मंत्रिमण्डल के हाथ में फिर से देश का शासन-भार सौंपा जा रहा था, यदि इस मंत्रिमण्डल के विषय मे यह कहा जाय, तो कुछ अनुचित न होगा।

अब इस मंत्रिमण्डल की करतूतें सुनिए। बार बार पार्लियामेंट का स्थगित होना, अन्त मे चेम्बर का भंग कर देना, वोटरों पर अनुचित दबाव डालना और प्रेस पर धड़ाधड़ अभियोग चलाना। किन्तु देश में यथेष्ट जीवन आ गया था, यह उसके निर्वाचन से सहज मे ज्ञात हो जाता है। उसने १८७६ की भाँति फिर चेम्बर मे अधिकांश प्रजातंत्रवादी भेजे। किन्तु राजतंत्रवादियों की आँखें तब भी न खुली। केवल ड्यूक डो ब्रोगली ने इस्तीफ़ा दे दिया। तब मेकमहोन ने अपने मन से जनरल रोचवेट की अध्यक्षता मे एक मंत्रि-मण्डल बनवाया। उनकी राय थी कि सार्वजनिक सभा की जाय, उससे सब झगड़ा दूर हो जायगा। किन्तु मारशल मेकमहोन की मनमानी देख कर चेम्बर ने वजट का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया, साथ ही चारों ओर से सभी दल मिलकर सभापति का विरोध करने लगे। तब कहीं मारशल का सिर नीचा हुआ। १३ दिसम्बर को डूफर ने फिर एक मंत्रिमण्डल बनाया। किन्तु उससे राजनैतिक परिस्थिति मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ, वह ज्यों की त्यों नाज़ुक बनी रही। सीनेट और सभापति से देश का

विश्वास बिलकुल उठ गया था, वे उनकी चालबाज़ियों से तंग आ गये थे। इसलिए सभापति को फिर कभी चेम्बर को भंग करने का साहस न हुआ। इधर प्रजातंत्रवादी भी बड़े असमञ्जस में पड़े थे। उनका बहुमत अवश्य था, किन्तु उनसे कुछ करते-धरते नही बनता था। अतएव देश उनसे भी प्रसन्न नहीं था। तिस पर उन्हें पादरी-सघ के वार पर वार सहने पड़ते थे। अबकी बार उन्होंने प्रण कर लिया था कि वे इस पादरीसंघ का अन्त करके रहेंगे। क्रान्तिकारियों के सरदार गेमबीटा का मुख्य सिद्धान्त यह था कि हमारा शत्रु पादरी-संघ है। ये लोग चाहते थे कि मेकमहोन के स्थान पर थियर्स को सभापति बनायें। किन्तु दुर्भाग्यवश सितम्बर १८७७ मे उसका देहान्त हो गया था। इसलिए प्रजातंत्रवादी सोच-विचार मे पड़े हुए थे। इधर मारशल भी अपने ताक मे बैठे थे। १८८९ मे सीनेट के एक तिहाई सदस्यों का निर्वाचन होने-वाला था। उसने आशा बॉध रक्खी थी कि इनमे अधिकांश अपरिवर्तनवादो होंगे, इसलिए इनकी सहायता मे जल्दी सफल-मनोरथ हूँगा। इसके अतिरिक्त सन् १८७८ में पेरिस मे सार्वभौमिक प्रदर्शिनी होनेवाली थी। सभी लोगों ने इसको बड़ा महत्त्व-पूर्ण समझ रक्खा था। इसलिए इस समय विभिन्न दलों ने चेम्बर में द्वन्द्व-युद्ध करने के बजाय देश मे अपनी स्थिति सुदृढ़ करना अधिक उत्तम समझा, क्योंकि इससे उनका प्रभाव अन्य राजनैतिक दलों से निश्चित रूप से बढ़ सकता था।

अतएव यह हम आसानी से कह सकते हैं कि डूफर के मंत्रिमण्डल का जीवन चेम्बर की शिथिलता पर निर्भर था। इसमे सन्देह नहीं कि उसने जो कुछ थोड़ा बहुत किया, वह अच्छा ही किया। सब लोगों की आँखें १७८९ की ओर लगी हुई थीं। जब १७८९ आया तो काया-पलट हो गई। सीनेट के नवीन निर्वाचन मे प्रजातांत्रिक सदस्यों की विजय हुई। मेक-महोन ने झट से बहाना ढूँढ़कर त्याग-पत्र दे दिया। वेरसेलीज़ मे दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन हुआ। जूल्स ग्रेवी सभापति बनाये गये और पेरिस फिर फ्रांस की राजधानी नियत हुई।

१७८९ मे पहली बार प्रजातंत्र की शानदार जीत हुई। अब लोगों की यह उत्सुकता बढ़ रही थी कि देखें प्रजातंत्र क्या करता है। किन्तु हमारी राय मे प्रजातंत्र ने किसी को नीराश नही किया। प्रजातंत्र का पक्का संगठन हो गया। १७ जून १८८० को सरकार ने शराब की बिक्री में हस्तक्षेप करना छोड़ दिया और सार्वजनिक सभाओं को प्रारम्भिक प्रतिबन्धों से मुक्त कर दिया। २९ जुलाई को प्रेस भी सब बाधाओं से मुक्त हो गया। २८ मार्च १८८२ को सभी म्युनिसिपलटियों को, क्या नगरों की और क्या प्रान्तों की,—अपने अपने मेयर चुनने का अधिकार मिल गया, साथ ही उनके शासन-सम्बन्धी अधिकार भी बढ़ा दिये गये। २१ मार्च १८८४ को ट्रेड यूनियन अर्थात् व्यापारिक संघों के

संगठन को स्वतंत्रता दे दी गई, किन्तु अन्य प्रकार के संगठनों के लिए अब भी सरकार से पहले आज्ञा माँगनी पड़ती थी। २७ जुलाई १८८४ को तलाक़ की प्रथा फिर जारी कर दी गई। शान्ति के समय मे सैनिक गिरजाघर तोड़ दिये गये और ६०० मेजिस्ट्रेट राजनैतिक अभियोग के कारण निकाल दिये गये। यद्यपि अन्तिम दोनों क़ानून जनता को अधिक पसन्द नहीं आये, तथापि देश पर प्रजातंत्र का अच्छा और गहरा प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार यह हम दावे के साथ कह सकते हैं कि प्रजातांत्रिक सरकार ने जनता को अपने शासन-कार्य मे यथेष्ट स्थान दिया और जहाँ तक सम्भव हो सका उसने फ्रांस की भावी सन्तानों को सुयोग्य नागरिक बनाने मे कोई बात उठा नहीं रखी। २७ फ़रवरी और १८ मार्च १८८० को पब्लिक इंस्ट्रकशन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव उपस्थित हुआ, जिससे ऐक्ट द्वारा शिक्षा-विभाग से रोमन-कैथलिकों का सम्बन्ध विच्छेद करा दिया, किन्तु इससे शिक्षा-स्वातंत्र्य में कोई ह्रास नहीं हुआ, प्रत्युत उन्नति हुई। उपाधियों के वितरण करने का काम पूर्ण रूप से सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। दिसम्बर १८८० में विक्टर डरी के प्रस्तावानुसार लड़कियों की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। ९ अगस्त १८७९ को प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए शिक्षक तैयार करने के लिए बहुत से नारमल स्कूल खोले गये। १६ जून १८८१ और २८

मार्च १८८२ के क़ानूनों के अनुसार फ्रांस भर में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य, निश्शुल्क और जनता-द्वारा संचालित कर दी गई। अनिवार्य और निश्शुल्क शिक्षा का क़ानून तो पास हो गया, किन्तु इसके पास कराने मे सरकार को बड़ी कठिनाई हुई। राजतंत्रवादी और पादरी संघ दोनों इसका विरोध करने पर तुले हुए थे। पादरी-संघ इस प्रकार की शिक्षा को नास्तिकपन की शिक्षा कहता था। अपना अधिकार चाहे वह न्यायसंगत हो या न हो, छोड़ना सबको बुरा मालूम होता है। १८५० के क़ानून-द्वारा पादरियों को शिक्षा-प्रचार मे एक प्रकार से एकाधिकार मिल गया था, इसलिए उन्हे इस नये क़ानून से बड़ा कष्ट और क्रोध हुआ। किन्तु कुछ भी हो, थोड़े ही दिनों मे प्रत्येक देहात मे बालक और बालिकाओं के लिए स्कूल खुल गये। इनमें शिक्षा का प्रोग्राम और शिक्षक सर्व-साधारण द्वारा तैयार किये गये थे, पादरीवर्ग से इसका कोई सम्पर्क नहीं था। हाँ, लोगो को प्राइवेट स्कूल खोलने और उनमें अपनी इच्छा के अनुसार धार्मिक शिक्षा देने का अधिकार दे दिया गया था।

देशोन्नति के लिए ये सुधार-प्रस्ताव तो प्रजातन्त्र ने आसानी से स्वीकृत करा लिये, किन्तु उनको कार्यरूप में परिणत करने के लिए रुपयों की आवश्यकता थी। शिक्षा-विभाग में ही स्कूलों की इमारतें बनवाने और शिक्षकों का वेतन चुकाने के लिए न जाने कितने धन की ज़रूरत थी। इसके

अतिरिक्त सरकार ने और भी कई जनतोपयोगी कार्य अपने हाथ मे ले रक्खे थे जैसे रेल, नहर, बन्दरगाह आदि। किन्तु सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक काम उस समय फ्रेंच-सेना का वैज्ञानिक रीति से संगठन करना, और उसको नये से नये हथियारों और लड़ाई के सामान से सुसज्जित रखना था। इन कामो के लिए जितना ही अधिक रुपया हो उतना ही अच्छा। इसलिए प्रजातांत्रिक सरकार को रुपयों की माँग हुई। दुर्भाग्यवश प्रारम्भ में वे जो एक ग़लती कर बैठे थे, उसके कारण उनकी समस्या और भी कठिन हो गई थी। अपनी जीत के जोश मे आकर उन्होंने युद्ध के पश्चात् लगाये हुए करों का तृतीयांश लेना बन्द कर दिया था। इससे जनता मे उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। किन्तु अब ख़र्च बढ़ने पर उनको अपनी भूल मालूम हुई। बार बार क़र्ज़ लेने से भी काम नहीं चलता था, क्योंकि उनके प्रत्येक वार्षिक बजट में घाटा होता था। जिसकी पूर्ति क़र्ज़ों के द्वारा नहीं हो सकती थी, इसलिए टैक्सों का दुहराना अनिवार्य हो गया। किन्तु इतने ही मे उनकी समस्या का अन्त नहीं होता था। यूरोप के सभी देशों मे इस समय उपनिवेशो पर आधिपत्य जमाने की उमङ्ग समा रही थी। इस कार्य मे वे यथेष्ट सफलता भी प्राप्त कर रहे थे। यदि फ्रांस इस समय खड़ा-खड़ा केवल तमाशा ही देखता रहता, तो यूरोप में उसका मान-भंग हो जाता। इसलिए उसे

वाध्य होकर इस स्पर्द्धा मे भाग लेना पड़ा। वास्तव में फ़्रांस की स्वयं पूर्वीय देशों की लड़ाई मे पड़ने की इच्छा नही थो, इससे मालूम होता है कि वह १८७७ तक इस विषय में बिलकुल उदासीन रहे। १८७८ मे वे बर्लिन की कांग्रेस मे गये थे, किन्तु उसमे उनका कोई स्वार्थमय उद्देश्य नहीं था और न उसके द्वारा उन्होंने कोई स्वार्थ-सिद्ध ही किया। उस समय वे केवल रहे-सहे ओटोमन-साम्राज्य की रत्ता करना चाहते थे। किन्तु जब इटेलियन लोगो ने फ़्रांस की अलजीरियन कोलोनी पर धावा बोल दिया, मेडगास्कर मे उसने जो संधि की थी, उसकी जब अवहेलना की जाने लगी, तब फ़्रांस से चुप न रहा गया। फ़्रांस के अन्वेषक जर्मनी, इँग्लैण्ड अथवा और किसी देश के अन्वेषकों से कम न थे। १८८०-८१ मे उन्होने टूनीसिया पर हमला किया, १८८२-८५ तक टोनकिन पर और १८८३-८५ तक मेडगास्कर टापू पर १८८४ मे फ़्रास ने फ्रेंच-कांगों की नाव डाली। इस प्रकार उसने अफ़्रीका मे अपने उप-निवेशों का विस्तार बहुत कुछ बढ़ा लिया।

किन्तु वास्तव में प्रजातांत्रिक राज्यों को साम्राज्यवर्द्धन का कार्य नहीं सोहता। फ़्रांस के इस साम्राज्य-विस्तार का अन्तिम फल चाहे जैसा रहा हो, किन्तु उसका तात्कालिक परिणाम अच्छा नही हुआ। इससे उसके निर्माताओं, विशेषकर जूलियस फेरी, का पतन हो गया। धार्मिक झगड़ों, और आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्थिति और भी जटिल हो गई।

सके अतिरिक्त पार्लियामेंट के कामों में अभी तक कोई स्थिरता नहीं आई थी। सदस्य कई दलों में बँटे हुए थे, कोई निश्चित बहुमत नहीं था। प्रत्येक दल में भी कई उपभेद थे। कोई दल कभी किसी ओर मिल जाता था और कभी किसी ओर। गेमबीटा उस समय बड़ा प्रभावशाली नेता था किन्तु सभापति जुलियस-ग्रेवी को उससे पुराना द्वेष था, इसलिए उसने इसको प्रधान मंत्री चुनना पसन्द न किया। ४ फ़रवरी १८७६ को बेडिंगटन के, २८ दिसम्बर १८७६ के फ्रेसीनेट के, और २३ सितम्बर ८० को जूलियस फेरी के मंत्रिमण्डलों की स्थापना हुई, किन्तु देश को किसी से सन्तोष न हुआ। उसको ऐसा न मालूम होता था कि वह अपने निर्वाचित व्यक्तियों-द्वारा ही शासित हो रहा है। ग़नीमत केवल यह थी कि इन सब मंत्रिमण्डलों का उद्देश्य एक था; ये प्रजातांत्रिक उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते थे। किन्तु इस हेतु कभी तो उन्हे उग्र क्रान्तिकारियों के साथ रियाअत करके उनसे सहायता की याचना करनी पड़ती थी और कभी अपरिवर्तनवादी-दल को। ये दोनों दल एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। पार्लियामेंट की यह स्थिति सर्वथा अस्वाभाविक एवं भयंकर थी। देश को यह दुरंगी चाल अच्छी नहीं लगती थी। १८८१ में नियमानुसार चेम्बर के नवीन निर्वाचन का समय आया। गेमबीटा, जो इस पार्लियामेंट से तंग आ गया था; यह उद्योग करने लगा कि आगामी चेम्बर में एक ऐसा प्रबल दल तैयार

किया जाय जिसको अपनी कार्य-सिद्धि के लिए उग्र क्रान्ति-वादियों अथवा अपरिवर्तनवादियों का मुँह न ताकना पड़े। इसलिए उसने प्रस्ताव किया कि डिपार्टमेंटल वेलट प्रथा से सदस्य चुने जायँ। सीनेट ने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया। १८८१ का चुनाव पुरानी पद्धति से हो गया, किन्तु गेमवीटा का क्रोध हद्द दर्जे पर पहुँच गया। उसने स्वयं व्यवस्था मे परिवर्तन करने का प्रस्ताव उठाया, विशेषकर उसने सीनेट को जनता का प्रतिनिधि बनाने पर ज़ोर दिया। किन्तु उस समय उस प्रस्ताव से कोई लाभ न हुआ। प्रजातांत्रिक दल मे एक नवीन उलझन पैदा हो गई। चेम्बर मे तो इस बार ५ मे से ४ सदस्य प्रजातंत्र के पक्ष मे थे, किन्तु इस प्रस्ताव से लोग फिर दलों मे बँट गये और चेम्बर को अन्य दलो की शरण लेनी पड़ी। सभापति ने त्याग-पत्र दे दिया और गेमवीटा से मंत्रिमण्डल बनाने के लिए कहा। गेमबीटा का नाम था, इसमे सन्देह नहीं, किन्तु इतने दिनों तक शक्ति प्राप्त न करने से लोग उसकी कार्य-कुशलता मे अविश्वास करने लगे थे। १४ नवम्बर १८८१ को उसका मंत्रि-मण्डल बना, परन्तु दुर्भाग्यवश ३१ दिसम्बर १८८२ को उसकी मृत्यु हो गई। उसके अनुयायियों मे कोई ऐसा नहीं था जो उस दल का अध्यक्ष बनकर काम चलाता। सम्प्रति मिस्र का प्रश्न छिड़ा हुआ था। मिस्र मे किस तरह फ्रांस अपना प्रभाव स्थिर रख सके और इसके लिए नील की घाटी मे अँगरेज़ों के साथ किस प्रकार

काम किया जाय, ये समस्यायें ऐसी जटिल थीं कि उनके कारण फेरीसिन्ट मंत्रिमण्डल को त्याग-पत्र देना पड़ा था। ७ अगस्त १८८२ को ड्यूकर्ल्क का जो मंत्रिमण्डल बना था, उसका भी इसी समस्या के कारण अधःपात हो गया था। इसके बाद गेमबीटा आया किन्तु उसकी मृत्यु से चेम्बर मे उथल-पुथल मच गई। दो महीने के भीतर दो मंत्रिमण्डल बने और नष्ट होगये। अन्त मे जूल्सफेरी ने २१ फ़रवरी १८८३ को अपना मंत्रिमण्डल बनाया, उसने कुछ दिनो तक काम चलाया। १८८५ मे टोनकिन मे फ्रेंच-सेना की हार हुई। इस पराजय के क्षोभ मे मंत्रिमण्डल भी टूट गया।

परन्तु यह मंत्रिमण्डल अपने एक कार्य के लिए विशेष उल्लेखनीय है। राजनैतिक दलों के पारस्परिक झगड़ों को निपटाने और औपनिवेशिक समस्याओं को हल करने के लिए तो इसने जो किया सो किया, सबसे बड़ी बात यह की कि गेमबीटा के प्रस्तावानुसार १३ अगस्त १८८४ को सीनेट के संगठन मे परिवर्तन कर दिया। उसके आजन्म सदस्य मिटा दिये गये और उसका निर्वाचन-क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया गया। वास्तव मे जूल्सफेरी के पतन का कारण एक झूठा तार था। इसके कुछ दिनों बाद फ्रांस की चीन के साथ एक लाभदायक संधि हो गई थी। परन्तु उस झूठे तार से फेरी का मंत्रिमण्डल टूट चुका था और पार्लियामेंट एवं जनता व्यस्त-दशा को पहुँच गई थी।

इस उथल-पुथल मे उग्र क्रान्तिकारियों की बन आई। उन्होंने ब्रीसन की अध्यक्षता में ७ अप्रेल १८८५ को अपना मंत्रि-मण्डल बनाया। इधर राजतंत्रवादी भी इस अस्त-व्यस्तावस्था से लाभ उठाने की चेष्टा करने लगे। संक्षेप मे, प्रजातंत्रवादियों का प्रभाव कुछ कम हो रहा था। इसी अवसर पर डिपार्ट-मेन्टल वेलेट द्वारा १८८५ का निर्वाचन हुआ। इसके द्वारा चेम्बर में तिहाई सदस्य प्रजातंत्र के विरोधी पहुँच गये। इनका पक्ष और भी कमज़ोर होगया। पहली कमज़ोरी तो यही थी कि ग्रेवी फिर सात वर्ष के लिए सभापति बना दिये गये। मंत्रिमण्डलों का तो बुरा हाल था, रोज़ बनते थे और रोज़ बिगड़ते थे। ७ जनवरी १८८६ को फ्रेसिन्ट केबीनेट बनी और ११ दिसम्बर को गोबलेट केबीनेट। इससे एक बात प्रकट होती थी—वह यह कि उग्र क्रान्तिवादियों को चाहे जितने अधिकार और स्वतंत्रता दी जाय, तथापि वे सन्तुष्ट नहीं होते थे। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव जो इस ज़माने में स्वीकृत हुआ, यह था कि जिन वंशों ने फ्रांस पर बादशाहत की है उनके वंशज फ्रांस से बाहर निकाल दिये जायँ।

क्रान्तिवादी मंत्रिमण्डल ने एक ऐसा युद्ध-सचिव चुना था जो जनरल होने के बजाय पक्का कूटनीतिज्ञ था। उसकी नीति सदैव अज्ञात और अस्थिर रहती थी। इसलिए यूरोपवाले उससे घबड़ाते थे। इधर फ्रांस अभी तक उपनिवेशों के विस्तार में लगा हुआ था, उसका दिल बढ़ा हुआ था, किन्तु अब काम

भी बन्द हो गया। लोगों में असन्तोष फैलने लगा। उधर आस्ट्रेलिया, जर्मनी और इटली मे संधि हो गई। इन सबोने मिलकर फ़ास को दबाना शुरू किया। वे कहते थे कि फ़्रांस के साम्राज्य-विस्तार की लालसा बड़ी दूषित है। इसलिए वे फ़्रांस को नीचा दिखाना चाहते थे। दुर्भाग्यवश इसी समय फ़्रांस मे भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। आर्थिक और राजनैतिक संकटों से लोग एकदम उत्तेजित हो उठे। लोग उस समय सहसा एक ऐसे कर्णधार को चाहने लगे जो दुख के समय उनकी नौका पार लगावे।

चेम्बर ने जर्मनी के साथ संधि करने का उद्योग किया। किन्तु उपर्युक्त सचिव ने, जिसका नाम बोलंगर था और जो उस समय मंत्रिमण्डल का सदस्य था, उसमे बाधा डालना शुरू किया। ३० मई १८८७ को इस मंत्रिमण्डल का पतन हुआ। किन्तु तौ भी जनरल बोलंगर ने हार न मानी। अभी तक वह सेना मे नियुक्त था। उसने अपने मित्रों और सेना की सहायता से सभापति ग्रेवी पर धावा बोल दिया। ग्रेवी अपने एक कुटुम्बी के प्रति पक्षपात दिखाने के कारण जनता में बदनाम हो रहे थे। उन्हें तुरन्त त्याग-पत्र देना पड़ा। चेम्बर ने ३ दिसम्बर १८८७ को साड़ो कारनोट को समापति बनाया। किन्तु जनरल ने उपद्रव करना न छोड़ा। वह अपने सैनिक पद से भी निकाल दिया गया। तब उसने नेशनल कमेटी के नाम से एक पार्टी खड़ी की। उसमे सभी असन्तोषी

जा मिले थे। उग्र क्रान्तिकारी, साम्यवादी, राजतंत्रवादी जिनमें लुई-वंश, ओरलियन-वंश और बोनापार्ट-वंश के पक्षपाती सम्मिलित थे—सभी दल के सदस्य थे। सब लोग प्रजातंत्र को तोड़ने की फ़िक्र मे थे। इस हुल्लड़शाही के झण्डे पर लिखा हुआ था—"क्रान्ति और संशोधन"। लोग घबराये हुए थे, अपनी अपनी खिचड़ी पका रहे थे। ऐसे लोगों पर इन शब्दो का क्या प्रभाव हुआ, वह केवल इसी बात से मालूम होता है कि पेरिस ने इस बार जो सदस्य चेम्बर में भेजा, वह इसी नेशनल कमेटी का सदस्य था।

प्रजातंत्र की स्थिति बड़े ख़तरे मे थी। चेम्बर मे बड़े भयंकर भाषण हो रहे थे। हुल्लड़शाही का ज़ोर बढ़ता जाता था। ३० मई १८८७ से १३ फ़रवरी १८८६ तक एक एक करके चार मंत्रिमण्डल बने, किन्तु सब असफल हुए। नवीन निर्वाचन के पहले अपनी रक्षा की दृष्टि से पार्लियामेंट ने क़ानून बना दिया कि वोट पुरानी प्रथा से लिये जायँ, साथ ही एक व्यक्ति दो जगहो से न खड़ा हो सके। मंत्रि-मण्डल ने साहस करके सीनेट मे जनरल बोलंगर पर देश-द्रोह का अभियोग चलाया। देश-द्रोही में कितना बल हो सकता था, वह भाग खड़ा हुआ। दो वर्ष पश्चात् वेलजियम मे उसने आत्म-घात कर लिया।

संकट के समय मनुष्य को अपनी रक्षा के लिए प्राण-पण से उद्योग करना पड़ता है। प्रजातंत्र के सामने भी जीवन-

मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया था। किन्तु इस युद्ध में विजय पाने के बाद प्रजातंत्र और भी मज़बूत होकर निकला। लोगो को मालूम हो गया कि प्रजा-तंत्र मे जीवन है। १८७५ मे जो राजनैतिक संस्थायें स्थापित की गई थी उनमे विकास के लिए यथेष्ट स्थान रखा गया था, इसलिए उनका तोड़ना हँसी-खेल नहीं था।

बाहर के लोग भी इस बात को समझ गये थे। पोप लिओ १३ वें ने बिशप लोगों को प्रजातंत्र की अवज्ञा करने की मनाई कर दी, इसी प्रकार ज़ार एलेकज़ेन्डर ३ ने फ्रांस के साथ संधि करली। प्रजातंत्र मे जान थी, यह सिद्ध हो चुका था, किन्तु वह अभी अपने जौहर नही दिखा सका था, क्योकि १८८५ के चेम्बर के इतिहास मे हमे केवल दो ही एक उल्लेखनीय प्रस्ताव मिलते हैं---एक तो लावारिस बच्चों की रक्षा के लिए नया विधान बनाया गया और दूसरा यह कि फ्रेंच लोगों को सेना मे काम करने के लिए जो अवधि अनिवार्य रूप से निर्दिष्ट थी, वह घटाकर तीन वर्ष कर दी गई। किन्तु इसके साथ भी एक पुछल्ला लगा हुआ था। अभी तक कुछ लोग इस सैनिक-सेवा से मुक्त कर दिये जाते थे। किन्तु इसने यह अपवाद मिटा दिया। सुतरां शिक्षकों, ब्रह्मचारियों, पादरियों और विधवाओ के ज्येष्ठ पुत्रो के लिए भी हथियार धारण करना अनिवार्य हो गया।

१८८९ के चेम्बर के मंत्रिमण्डलो मे पहले की अपेक्षा

अधिक अस्थिरता थी, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसने देश के आर्थिक और सामाजिक सुधारों में कोई विशेष उन्नति की हो। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि उसने देश की आवश्यकताओं पर ख़ूब वाद-विवाद किया, जिससे वे समस्यायें स्पष्ट हो गईं। उसने जो थोड़े-बहुत सुधार किये, वे इस प्रकार हैं—मज़दूरों को पुलिस से सरटीफ़िकेट लेना अनावश्यक कर दिया गया और खानों की सरबे के लिए मज़दूरों को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दे दिया गया। १८९० मे मालिकों के मज़दूरों को निकालने के अंधाधुंध अधिकार मे उचित संशोधन कर दिया गया। फ़ेक्टरियों मे काम करने के लिए बालकों और स्त्रियों के लिए घंटे निश्चित हो गये। इसी प्रकार हड़तालों के निपटारे और समझौते के लिए पंचायतें नियत कर दी गईं। कारख़ानों मे जान-माल की रक्षा एवं स्वास्थ्य-रक्षा की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा। सन् १८९३ में देहातों में निश्शुल्क डाक्टरी सहायता पहुँचाने का भी समुचित प्रबन्ध कर दिया गया।

यद्यपि उपर्युक्त क़ानूनों से मज़दूरों की बहुत सी असुबिधायें दूर हो गईं, तथापि अभी दो महत्त्वपूर्ण बातें बच रही थीं। एक तो यह कि कारख़ानों में काम करते समय मज़दूरों के घायल होने पर स्वामियों का क्या दायित्व है और दूसरा यह कि मज़दूरों के बुड्ढे अथवा एकदम शक्तिहीन होने पर मालिकों का क्या कर्त्तव्य है?

देश की आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। वह ज्यों की त्यों असन्तोष-जनक बनी थी। लोग टैक्सों के बोझ से दबे जा रहे थे। इसके अतिरिक्त न जाने कितनी आवश्यक बातों पर टैक्स लगाया जाता था, जिसको अन्त मे जनता को ही भुगतना पड़ता था। इस प्रकार जनता दोनो प्रकार के टैक्सों की मार से दबी जा रही थी। शासन की इन छोटी-छोटी बातों की ओर देश के सबसे प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को ध्यान देने का समय नहीं मिलता था। मंत्रिमण्डल घड़ी-घड़ी बदलता था। शासन-प्रथा और शासक-वर्ग मे २५ वर्ष से कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ था। इसी प्राचीन शासन-प्रथा के अनुसार शक्ति कुछ थोड़े आदमियों के हाथ में चली गई थी। इसमे सन्देह नहीं कि अब राष्ट्र के समस्त नौकर-चाकर जनता के प्रतिनिधियों की राय को बड़े ध्यान से सुनने लगे थे, क्योंकि उनको यह मालूम हो गया कि अब हमारे भाग्य का निर्णय इन्हीं के हाथो मे है।

टिरार्ड के मंत्रिमण्डल के बाद १७ मार्च १८९० को फ्रेंसिन्ट ने मंत्रिमण्डल बनाया। इसके बाद २७ फ़रवरी १८९२ को लोबेट का मंत्रिमण्डल बना। इन मण्डलों के सदस्यों मे परिवर्तन बहुत कम हुआ, इसलिए उनके कार्य मे कोई नवीनता अथवा विशेषता न आई। १८९३ मे पुनः नवीन निर्वाचन होने वाला था। लोग फिर मानों सोते से जाग उठे। पार्लियामेट के कुछ सदस्यों पर तरह तरह के अभियोग लगाये गये, चारों

श्रोर उनकी निन्दा होने लगी, उन पर रुपया उड़ाने का अपराध लगाया गया। प्रजातंत्र के विरोधियों को मौक़ा मिल गया। राजतंत्रवादियों ने इस बार प्रजातंत्र का तख़्ता उलटने का अन्तिम उद्योग किया, परन्तु सफलता न मिली। १८६३ के निर्वाचन के समय फिर उनकी हार हो गई। उनके ऊपर से देश का विश्वास उठ गया था। किन्तु संसार में ऐसी वस्तु नहीं जिसका कुछ न कुछ प्रभाव न पड़ता हो। सुतरां इस आन्दोलन का प्रभाव भी पड़ा। नवीन निर्वाचन मे राजतत्रवादियों को तो स्थान न मिला, किन्तु ५० साम्यवादो सदस्य पार्लियामेट मे पहुँच गये। साम्यवाद तक ही हद नहीं थी, लोग षड्यन्त्रों की रचना कर रहे थे। १८६२ में कई जगह बम फेंके गये और १८६४ मे सभापति कारनोट की हत्या हो गई।

राजनैतिक क्षेत्र एक-दम निन्दा, राग-द्वेष, पारस्परिक घृणा, षड्यंत्रों एवं कूट-नीति से भर गया। ऐसी स्थिति मे बहुत से मंत्रिमण्डल बने और बिगड़े। ६ दिसम्बर १८६२ को रिबट का, ४ अप्रेल १८६३ को डूपी का, ३ दिसम्बर १८६३ को कसीमीर पेरीअर का, १ जुलाई १८६४ को फिर चार्ल्स डूपी का और २६ जनवरी १८६२ को फिर रिबट का मंत्रिमण्डल बना। परन्तु प्रेस, पार्लियामेंट और जनता के आक्षेपों के आगे सब बैठ गये। मंत्रियों की कौन कहे, सभापति भी इन अभियोगों के सामने न ठहर सके। कारनोट के पश्चात् केसीमीर पेरीअर सभापति हुए थे। उन्हें ६ महीने के

वोटरों को मनमाने वचन देता, मैं यह करूँगा और वह करूँगा किन्तु करते-धरते कुछ न बनता। बहुत से बात-बात मे न्याय-अन्याय, क़ानूनी और ग़ैर क़ानूनी का प्रश्न उठाते और इसी में अपनी शक्ति नष्ट कर देते।

सबसे अन्तिम दल साम्यवादियों का था। ये जर्मनों के समष्टिवाद का समर्थन करते थे। फ्रांस मे समय समय पर जो व्यापारिक हड़तालें होतीं, उनसे वे अपना मतलब गाँठते और साम्यवाद का प्रचार करते। कुछ प्रोफ़ेसरगण भी इनमें सम्मिलित हो गये थे। कुछ उपदेशकों का कहना था कि चर्च को भी अब मज़दूरो से सुलह कर लेनी चाहिए, इसी मे उसकी भलाई है। इसमे सन्देह नहीं कि देश मे इस दल का प्रभाव बढ़ता जाता था। एक तो लोग इनके उग्र रूप से घबराते थे और दूसरे यह अधिक से अधिक माँग उपस्थित करते थे, जिससे आवश्यकतानुसार सुधार अवश्य ही स्वीकृत कर लिये जाते थे।

इस प्रकार १८९५ का चित्र कुछ बहुत अच्छा नहीं है। किन्तु इसको हम निराशाजनक नहीं कह सकते। जितना युद्ध राजनैतिक क्षेत्र में हो रहा था, उतना जन-साधारण में नहीं था। उनका क्षोभ क्षणिक था। वे शान्ति के साथ अपने उद्देश्य के लिए चेष्टा कर रहे थे। आवश्यकतानुसार राजनीतिज्ञों से सहायता भी लेते थे और नहीं भी लेते थे। उन्होंने यह जान लिया था कि उन्नति का मूल-मंत्र स्वावलम्बन और स्वाधीनता है।

आधुनिक फ्रांस

[१८६५—१६२०]

बूलैंजर-सम्बन्धी घटना के थोड़े ही समय बाद देश मे एक ऐसा काण्ड हो गया जिसने फ्रांस-जर्मन-युद्ध होने और कम्यून के दबाये जाने के समय से राष्ट्र का ध्यान दूसरी ओर हटा दिया। सन् १८६४ में कप्तान अलफ्रेड ड्रेफ़स के ऊपर एक मुक़दमा चलाया गया था। आरोपियों का कहना था कि उसने फ्रांस-सरकार के साथ विश्वासघात करके कुछ आवश्यक काग़ज़ात जर्म्मन-सरकार के एक प्रतिनिधि को दिखा दिया था। उक्त कप्तान को फ्रांसीसी गायना के समुद्र-तट से कुछ दूर डेविल्स आईलैण्ड नामक द्वीप में एकान्त कारावास का दण्ड दिया गया। परन्तु ड्रेफ़स के मित्र बराबर यह आन्दोलन करते रहे कि वह निर्दोष है। इस आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप सन् १८६६ ई० में सेना में खुफ़िया-विभाग के अध्यक्ष कर्नल पिकर्ट का ध्यान इस ओर अकर्षित हुआ। लेकिन उच्च कर्म्मचारियों की सहानुभूति ड्रेफ़स के साथ नहीं थी और कर्नल पिकर्ट को भी ड्रेफ़स के पक्ष मे होने का कुफल चखना पड़ा। कर्नल हेनरी कर्नल पिकर्ट के उत्तराधिकारी हुए और उन्होंने पिकर्ट के विरुद्ध एक

अभियोग खड़ा कर दिया—कर्नल पिकर्ट ने ड्रोफ़स का पक्ष-समर्थन करने के निमित्त जाली प्रमाण तैयार किये हैं।

सन् १८९८ ई० मे गैब्रिएल हैनैट्रक्स के स्थान मे परराष्ट्र-विभाग का अधिकार डेलकैसी के हाथ मे आया। डेलकैसी को इस बात का विश्वास था कि पश्चिमी भूमध्य भाग मे ही फ़्रांस का अपनी समस्त शक्तियों को केन्द्रित करना उचित होगा और इटली तथा ग्रेटब्रिटेन के साथ मित्रता-भाव स्थापित कर लेने से बहुत लाभ होगा। उसका विचार था कि फ़्रांस को भावी संकटों से बचाने के लिए भी ऐसा करना बहुत आवश्यक है।

फ़्रांस और इटली मे पारस्परिक वैमनस्य बहुत दिनो से चला आता था। भूमध्य भाग मे जितने शक्तिशाली देश हैं उनमें इटली की गणना भी प्रधान रूप से होती थी और उत्तरी अफ़्रीका के सम्बन्ध मे यदि कुछ निश्चय करना होता था तो इटली की सम्मति लेना भी अनिवार्य्य रहता था। सन् १८७१ ई० तक इटली अपनी राजनैतिक एकता को स्थापित करने में ही व्यस्त था, इस कारण उसे इतना अवकाश नहीं था कि वह दूसरे झगड़ों मे पड़े। सन् १८७१ तक तो यह दशा रही ही, किन्तु सच पूछिए तो कई साल बाद को भी वह अपनी ही कठिनाइयों मे फँसा रहा। इटली मे एकता-स्थापन के इस आन्दोलन ने एक परिणाम यह उत्पन्न किया कि इटली-वासियों के हृदय मे फ़्रांस के प्रति विरोध-भाव का प्रचार हो

गया। इसके पहले सन १८५९ ई० मे फ़्रांस के तत्कालीन शासक तृतीय नैपोलियन ने इटली के उक्त आन्दोलन की सफलता के लिए कुछ सहायता भी दी थी। इस सहायता के उपलक्ष मे इटलीवालो ने सैवाय और नाइस नामक स्थान फ़्रांस को भेंट कर दिये थे। लेकिन तृतीय नैपोलियन की तृष्णा इतने से नहीं शान्त हो सकी। फल यह हुआ कि उसके व्यवहार से इटली-वासियों मे असन्तोष की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त इटली की अप्रसन्नता के कई कारण और थे। इटली रोम की ओर बढ़ना चाहता था, परन्तु नैपोलियन ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के निमित्त उसे ऐसा करने से रोक दिया। सन् १८६६ ई० मे गैरीबैल्डी ने रोम पर आक्रमण किया था, लेकिन फ़्रांस की ओर से खड़ी होनेवाली बाधा के कारण वह सफल नही हो सका था, पोप के प्रभुत्व को अक्षत बनाये रखने के लिए फ़्रांस की सेनायें वहाँ तब तक डटी रहीं जब तक जर्मनों ने राइन की ओर बढ़ना नहीं शुरू कर दिया।

जब फ़्रास ने सन् १८३० ई० मे अल्जीरिया पर अधिकार जमा लिया था तभी, सच पूछिए तो इटली और फ़्रास की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का बीज-वपन हो चुका था। सन् १८८१ ई० मे फ़्रांस ने ट्यूनिस पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। इस घटना से प्रतिद्वन्दिता का भाव और भी उद्दीप्त हो उठा। फ़्रांस की इस क्रियाशीलता का इटली पर बड़ा प्रभाव पड़ा

और वह अफ्रीका की ओर अधिक ध्यान देने लगा। सन् १८८२ ई० मे इटली ने एक व्यवसायी कम्पनी से आसब का बन्दरगाह अपने अधिकार में कर लिया। सन् १८८५ ई० में उसने मसोवा पर क़ब्ज़ा जमाया और उसे इरीट्रिया नामक उपनिवेश के रूप मे विकसित किया। सन् १८८६ ई० मे सोमालीलैंड का एक भाग भी इटली के हाथ मे आ गया। परन्तु इन सफलताओ पर इटली गर्व्व नहीं कर सकता था, क्योंकि ये प्राय: निस्सार थीं और इटली को अधिकाधिक संकटों ही मे डालनेवालीं थीं। उन्नीसवी शताब्दी का अन्त होते होते तक इटली की मानसिक स्थिति ऐसी हो गई थी कि यदि फ्रांस उसके सामने कोई उचित प्रस्ताव करे तो वह उसे स्वीकार कर ले। सन् १८९६ ई० मे इटली ने ट्यूनिस में फ्रांस का विशिष्ट अधिकार बाक़ायदा स्वीकार कर लिया। दो वर्षों के बाद डेलकैसी ने लिखा पढ़ी करके इटली के साथ व्यापार और जलमार्ग के सम्बन्ध मे एक सन्धि कर ली। इटली ने मोरक्को और ट्यूनिस के सम्बन्ध में अपनी आकांक्षाओं का त्याग कर ट्रिपोली की ओर ध्यान दिया। कुछ व्यक्तिगत परिवर्त्तन भी इस ढंग के हुए कि उनसे फ्रांस-इटली के सम्बन्धों मे बहुत कुछ संशोधन हो गया। इटली मे सन् १८९७ मे क्रिस्पी का देहान्त होगया और जुलाई सन् १९०० में हम्बर्ट की हत्या हो जाने पर तृतीय विजयी इमैनुएल गद्दी पर बैठा। इस स्थिति से यह

और भी सम्भव हो गया कि फ्रांस के साथ मित्रता-पूर्ण व्यवहार बढे। सन् १६०० और १६०२ मे इटली और फ्रांस के बीच दो समझौते हुए। इन समझौतों के अनुसार फ्रांस ने ट्रिपोली के सम्बन्ध में कोई हस्तक्षेप न करने का वादा किया। इसी प्रकार इटली ने मोरक्को पर फ्रांस का पूर्ण अधिकार स्वीकार किया।

सन् १६०४ में फ्रांस और इँग्लैंड के बीच एक सन्धि हुई जिसका महत्त्व उक्त समझौतो से भी अधिक है। यह सन्धि डेलकैस और लन्दन मे रहनेवाले पाल कैम्बन नामक फ्रांसीसी राजदूत के प्रयत्नों से हुई। इँग्लैंड में सप्तम एडवर्ड सन् १६०१ ई० मे सिंहासनारूढ हुए थे और लार्ड लैन्सडाउन थोड़े ही पहिले लार्ड सैलिसबेरी के स्थान पर परराष्ट्र विभाग के अध्यक्ष हुए थे। इन दोनो महोदयों की सम्मति डेलकैसी और पालकैम्बन के विचार के प्रति सहानुभूति-पूर्ण थी।

इँग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता का पथ परिष्कृत करने में फ़ाशोदा में फ्रांस की हार ने भी यथेष्ट भाग लिया। सूडान ही का मामला ऐसा था कि उससे इँग्लैंड और फ्रांस के बीच मनोमालिन्य हो जाया करता था। फ्रांस को इस बात का दुःख रहा करता था, यदि इँग्लैंड को उसकी मित्रता बनाये रखने के लिए सूडान और नाइल में कुछ स्वार्थ-त्याग करना पड़े तो वह कभी न करे। उधर इँग्लैंड को मित्र बनाये रखने के लिए फ्रांस सब कुछ करने पर तैयार था,

यहाँ तक कि यदि उससे नाइल और सूडान पर से अपना अधिकार हटाने को भी कहा जाता तो कुछ रोष के साथ ही सही, परन्तु फ्रांस स्वीकार अवश्य कर लेता। बदला लेने की भावना से फ़ाशोदा मे फ्रांस इँग्लैंड से लड़ा और युद्ध मे हार कर अपनी आकांक्षा के प्रति सदा के लिए उदासीन हो गया। साथ ही वैमनस्य और घृणा का भाव जर्मनी के प्रति बढ़ गया, न कि इँग्लैंड के प्रति।

किन्तु क्या यह फ्रांस के लिए कभी सम्भव था कि वह नाइल मे अपने हितों की हानि बिना किसी मतलब के सहन कर ले। सच बात यह है कि फ्रांस की दृष्टि मोरक्को पर लग गई थी और डेलकैसी मोरक्को के आधार पर इँग्लैंड से कुछ समझौता करने के लिए अवसर ढूँढ़ रहा था। सन् १९०१ मे मोरक्को के सुल्तान अपनी स्थिति के प्रति बड़े संशयालु हो गये थे और उन्होंने इँग्लैंड से प्रार्थना की थी कि वह मोरक्को को अपनी संरक्षकता मे कर ले। उस समय इँग्लैंड अफ्रीका की ओर अपना ध्यान नहीं दे सकता था।

फ्रांस ने इस बात को स्वीकार कर लिया और सन् १९०२ मे अलजीयर्स मे एक समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार अलजीरिया और मोरक्को की सीमा पर शान्ति स्थापित करने की कुछ ज़िम्मेदारी फ्रांस ने ग्रहण कर ली। इस समझौते से इँग्लैण्ड भी सहमत था।

सन् १९०३ में इँग्लैंड के तत्कालीन राजा सप्तम एडवर्ड

और फ़्रांस के प्रेसीडेन्ट लोबेट ने एक दूसरे के देशों की यात्रा की। दोनों देशों के पारस्परिक सम्बन्धों पर इन यात्राओं का बडा प्रभाव पड़ा।

सन् १९०४ ई० मे रूस और जापान का युद्ध छिड़ गया। इधर कुछ समय से रूस सुदूर पूर्व के मरहलों मे बहुत अधिक फँस गया था। इस कारण फ़्रांस को जर्म्मनी की ओर स्थित अपने पश्चिमी भाग के लिए बहुत चिन्ता थी। इस दशा में फ़्रास के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने लिए कोई साथी ढूँढ़े। उधर इँग्लैड भी जर्म्मनी के प्रति सशंक हो रहा था, क्योकि जर्म्मनी की नौ-सेना-शक्ति बढ़ती जा रही थी। जर्म्मनी के विचारशील नेता भी फ़्रांस के वैमनस्य और इँग्लैंड की सन्देह-दृष्टि से चौकन्ने हो गये थे। अस्तु, ८वीं अप्रेल सन् १९०४ ई० को इँग्लैंड और फ़्रांस के बीच एक समझौता हुआ। धीरे धीरे इँग्लैंड और फ़्रांस की आन्तरिक आशङ्काओं का समाधान हो गया। मारक्को और मिस्र ही के सम्बन्ध मे नहीं बल्कि पश्चिमी अफ़्रीका, श्याम, मडगास्कर, और न्यू हिब्रिडीज़ आदि स्थानो के विषय मे भो एक दूसरे की जो आपत्तियाँ थीं वे हल हो गईं। इन दोनों देशों के बीच एक सुलहनामा सन् १७१३ मे ऊट्रेट मे हुआ था। उसी समय से निउफाउंडलैण्ड मे मछली मारने के अधिकारों के सम्बन्ध मे इँग्लैंड और फ़्रांस के पारस्परिक झगड़े चले आते थे। सन् १९०४ ई० के समझौते ने इस प्रश्न को भी हल कर

दिया। इसके अनुसार फ्रांस को मछली मारने का अधिकार तो अधिकांश में प्राप्त हो गया, परन्तु उसका एकाधिकार नहीं रह गया। पश्चिमी अफ्रीका में गैम्बिया, गिनी तथा नाइगर के सम्बन्ध मे इँग्लैंड ने फ्रांस की बहुत सी बातें स्वीकार कर लीं। छोटी छोटी सुविधाओं के मिलने के अतिरिक्त श्याम की सीमा से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्न और मडगास्कर और ज़ंजीबार मे आयात-निर्यातकर-सम्बन्धी प्रश्न का संतोषजनक निर्णय हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि इस पूरे समझौते का केन्द्र उत्तरी अफ्रीका था, क्योंकि इसी समझौते के अनुसार फ्रांस ने मिस्र मे ग्रेटब्रिटेन की स्थिति को स्वीकार किया और ग्रेटब्रिटेन ने मोरक्को मे फ्रांस की सत्ता और प्रधानता को माना।

६ अक्टूबर सन् १९०४ ई० को फ्रांस और स्पेन का भी एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार स्पेन ने ८ वीं अप्रेल के उक्त समझौते की उन सभी बातों को स्वीकार किया जो इँग्लैंड और फ्रांस के बीच तै पाई थीं।

इँग्लैंड और फ्रांस की उक्त सन्धि का अन्य दृष्टियों से भी बहुत बड़ा महत्त्व था। बाहरी तौर से जर्मन कैसर ने यही कहा कि यह समझौता जर्मनी के तनिक भी विरुद्ध नही है और उसे किसी प्रकार की आपत्ति करने का कोई कारण नहीं है। १२वीं अप्रेल सन् १९०४ ई० को प्रिंस वानब्यूलो ने रीचस्टैग नामक स्थान में इसी प्रकार के विचार प्रकट किये

थे। प्रिंस वान रैडोलिन की भी, जो पेरिस मे जर्मनी की ओर से राजदूत थे, यही सम्मति थी। किन्तु, यह सब होने पर भी कैसर का दिमाग़ पेंच की बातें सोचने मे लगा हुआ था। उसने रूस को अपने पक्ष मे करने के उद्देश्य से ज़ार से बात-चीत शुरू की। उसका अनुमान यह था कि रूस को अपने पक्ष मे कर लेने से सम्भवतः फ्रांस भी इँग्लैण्ड से टूट कर आ जायगा और इस प्रकार इँग्लैंड के विरुद्ध रूस, जर्मन, और फ्रांस का संगठन हो जायगा। कैसर की दूसरी नीति यह थी कि किसी राजनैतिक चाल से फ्रांस को क़ब्ज़े में लाया जाय और इँग्लैंड के साथ उसने जो सन्धि की है वह निकम्मी कर दी जाय।

३१ वी मार्च सन् १९०५ में ब्यूलो की सम्मति के अनुसार जर्मन-सम्राट् टैंजियर मे गये। वहाँ उन्होंने जो व्याख्यान दिया उसमें भय-प्रदर्शन का यथेष्ट अंश था। उन्होंने मोरक्को के शासक को अपनी संरक्षकता में ले लिया। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि मोरक्को के सम्बन्ध मे जर्मनी की राय भी कुछ महत्त्व रखती है। लेकिन सच बात यह थी कि मोरक्को की आड़ लेकर जर्मनी अशान्ति उत्पन्न करने पर तुला हुआ था, क्योंकि उसके व्यापारिक हितों पर तो कोई आक्रमण किया ही नहीं गया था। टैंजियर से लौट आने के बाद जर्मनी की ओर से दो कार्य्य ऐसे हुए जिससे जर्मनी के आन्तरिक विचारों का कुछ कुछ अनुमान हो सकता था। इन दोनों

कार्य्यों में से एक था अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् का आमन्त्रित किया जाना और डेलकैसी की शास्ति करने के लिए फ्रांस को आदेश देना। सन् १६०५ की गर्मियों मे बर्लिन से प्रिंस हेनकेल-वान डानर्स मार्क राजदूत के रूप मे पेरिस को भेजे गये। उन्होने अपने एक व्याख्यान मे धमकाया कि यदि फ्रास ने डेलकैसी की नीति का खण्डन न किया तो जर्मनी को सन्तोष नही होगा। जर्मन-कैसर की इस धमकी का फ्रांस ने कुछ उत्तर नहीं दिया इसका कारण यह था कि इस समय फ्रांस लडाई करने को तैयार नहीं था। १२ वी जून सन् १६०५ मे डेलकैसी ने इस्तीफ़ा दे दिया। इसके बाद फ्रांस ने अपनी शक्तियों के संगठन की ओर ध्यान दिया। फ्रांस की सरकार ने इस काम के लिए छः करोड़ सिक्कों का ख़र्च किया जाना स्वीकार किया। सरकार ने यह आदेश भी दिया कि इन रुपयों से ऐसी रेलें बनाई जायँ जो सेना के सञ्चालन की दृष्टि से बहुत उपयोगी हों। इन्हीं दिनों फ्रांस और जर्मनी की कुछ लिखा पढ़ी भी हुई और दोनों मे यह तय पाया कि जनवरी सन् १६०६ ई० मे फ्रांस और जर्मनी अलजेसिरस नामक स्थान मे आपस मे सब बातें तै कर ले। इस जगह पर ग्रेट ब्रिटेन, स्पेन, पुर्त्तगाल, इटली, आस्ट्रिया, हंगरी, बेलजियम, यूनाइटेड स्टेट्स, हालैण्ड, रूस, स्वीडेन और मोरक्को से प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। इस परिषद् से जर्मनी को सन्तोष हुआ, क्योंकि सुल्तान की सत्ता के ज्यों के त्यों बने रहने में

कोई बाधा नहीं रह गई, तथा मोरक्को की नैशनल बैंक और पुलीस-संगठन अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार मे आ गये। इस स्थिति से जर्मन-राजनीतिज्ञों के मतानुसार जर्मनी को बहुत लाभ था, क्योंकि इससे जर्मनी के आर्थिक हितों, तथा साथ ही साथ अन्य देशों के आर्थिक हितों की भी रक्षा हो गई, साथ ही फ्रांस भी मोरक्को के सम्बन्ध मे मनमाना नहीं कर सकेगा। जो हो, यदि जर्मनी को इस परिषद् के द्वारा यह उद्देश्य सिद्ध करना था कि इँग्लैंड और फ्रांस का समझौता व्यर्थ हो जाय तो निस्सन्देह उसका यह मनोरथ पूरा नहीं हुआ।

लेकिन इँग्लैण्ड और फ्रांस के इस समझौते मे एक महत्त्व-पूर्ण बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया था और वह थी इँग्लैंड और रूस की पारस्परिक वैमनस्य-भावना। जर्मनी ने इस कमज़ोरी से लाभ उठाने का संकल्प किया। सन् १९०४ से लेकर १९०६ तक कैसर ने इसी ओर विशेष ध्यान रक्खा। रूस और जापान के युद्ध मे रूस के प्रति जर्मनी ने जो दिलचस्पी दिखाई थी उसका यही कारण था। कैसर ने ज़ार के मन मे यह विश्वास भी अङ्कित कर दिया कि इँग्लैंड की तटस्थता रूस के प्रति मित्रता-पूर्ण नहीं है। कैसर ने रूस को यह भी सुझाया कि इँग्लैंड और जापान के विरुद्ध फ्रांस, रूस, और जर्मनी के बीच एक समझौता हो जाय। जार ने इस सन्धि के प्रति बहुत उत्साह प्रकट किया। लेकिन पेचीदा

बात यह थी कि रूस अपने मित्र फ़्रांस को किसी तरह छोड़ना नहीं चाहता था और जर्मनी यह चाहता था कि पहले रूस से सन्धि हो ले फिर फ़्रांस को सूचना दी जाय। २३ जुलाई सन् १९०५ में जोर्को साउंड नामक स्थान मे कैसर और ज़ार के बीच एक सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार दोनो में यह तय पाया कि यदि उनमे से किसी एक पर किसी यूरोपियन राष्ट्र का आक्रमण हो तो एक दूसरे की सहायता करे। ५ सितम्बर सन् १९०५ ई० मे ज़ार ने अपने परराष्ट्र सचिव को बतलाया कि उक्त प्रकार की सन्धि की गई है। यह सूचना पाने पर काउन्ट लैम्सडोर्फ़ ने बहुत वावेला मचाया। काउन्ट विट ने भी लैम्स-डोर्फ़ के आन्दोलन का समर्थन किया। परिणाम यह हुआ कि ज़ार विवश होकर सन्धि को रद्द करने पर तैयार हुए। इस घटना से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि जर्मनी कितने कौशल के साथ अपने उद्देश्य की पूर्त्ति मे संलग्न था।

रूस के राजनीतिज्ञ जर्मनी से मित्रता बनाये रखने के लिए फ़्रांस की मित्रता खोने को तैयार नहीं थे। लेकिन यूरो-पीय राजनैतिक क्षेत्र मे इँग्लैंड और रूस के पारस्परिक वैमनस्य के कारण कुछ न कुछ करना अनिवार्य्य हो रहा था। सन् १९०७ ई० मे रूस और इँग्लैंड के बीच एक सन्धि हुई और उसके द्वारा इस कठिनाई को हल करने की चेष्टा की गई। तिब्बत, अफ़ग़ानिस्तान और फ़ारस आदि देशों मे दोनों राष्ट्रों के स्वार्थ का संघर्ष जिन समस्याओं को खड़ी कर सकता था

उन सबों का समाधान करने का प्रयत्न हुआ। दोनो में निम्न-लिखित शर्त्तें हुईं:—

१—तिब्बत की स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनी रहे।

२—तिब्बत के भीतरी मामलों मे कोई हस्तक्षेप न किया जाय, रेल, सड़क, तार, खान आदि के सम्बन्ध मे कोई रियायते न माँगीं जायँ।

३—लासा मे काई प्रतिनिधि न भेजे जायँ, और सब तरह की बातचीत चोन सरकार के मध्यस्थ से हो।

४—रूस अफ़ग़ानिस्तान को अपने प्रभाव-क्षेत्र के बाहर मान कर अफ़ग़ानिस्तान के साथ अपना सम्पूर्ण राजनैतिक संबन्ध ग्रेटब्रिटेन के मध्यस्थ की सम्मति से रक्खे और वहाँ एजेन्ट न भेजे।

५—ग्रेटब्रिटेन अफ़ग़ानिस्तान की राजनैतिक स्थिति में परिवर्त्तन न करे।

६—दोनों देशो को अफ़ग़ानिस्तान मे व्यापार-सबन्धी अधिकार समान रूप से रहें।

७—फ़ारस की स्वतन्त्रता मे कोई हस्तक्षेप न किया जाय और सब राष्ट्रों को उसके साथ व्यापार करने का अधिकार रहे।

रूस और इँग्लैंड की इस सन्धि से फ़्रांस को लाभ ही हुआ क्योंकि न अब रूस के प्रति उसका मित्र-भाव इँग्लैंड को

अखर सकता था और न इँग्लैंड के प्रति उसकी मैत्री रूस को अप्रीतिकर हो सकती थी।

इस बदली हुई परिस्थिति को देख कर जर्मनी चौकन्ना हो गया। इस कारण ८ वीं फ़रवरी सन् १९०९ के मोरक्को-समस्या के सम्बन्ध मे फ्रांस और जर्मनी का एक समझौता हुआ। फ्रांस ने शेरीफ़ियन-साम्राज्य की स्वाधीनता स्वीकार की। जर्मनी ने यह बात मान ली कि मोरक्को के भीतर शान्ति स्थापित करने का अधिकार फ्रांस को ही हो सकता है।

नवम्बर सन् १९१० मे ज़ार ने कैसर के साथ एक सन्धि की। मेसोपोटैमिया और फ़ारस मे उनके हितो का जहाँ कहीं संघर्ष होता था वहाँ के सम्बन्ध से समझौता हुआ। ज़ार ने बग़दाद रेलवे की तजवीज़ का विरोध न करने का वादा किया। जर्मनी ने फ़ारस मे रूस के विशेष हितो को स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त दोनों ने स्वीकार किया कि एक दूसरे को क्षति पहुँचानेवाला किसी प्रकार का समझौता किसी दूसरे राष्ट्र से नहीं करेंगे।

उक्त सन्धि में जो शर्तें की गई हैं उनका उद्देश्य तीनों मित्रों के समझौते की जड़ को कमज़ोर करना था—यह बात पाठको की समझ मे सरलता-पूर्वक आ सकती है। इसी बीच फ्रांस और जर्म्मनी मे मोरक्को के प्रश्न पर पारस्परिक वैमनस्य हो गया और सन् १९०९ ई० का समझौता भी उसे न रोक

सका। सच पूछिए तो ऐक्ट आव् अलजेसिरस और उक्त समझौता, दोनों की शर्त्तों की भाषा बहुत अस्पष्ट थी और खींचतान करके उसके और के और अर्थ लगाये जा सकते थे। सन् १६०६ वाले समझौते मे यह स्वीकार किया गया था कि मोरक्को मे शान्ति रखने का पूर्ण अधिकार फ़्रांस को ही हो सकता है। जहाँ यह बात सच थी वहाँ यह बात भी सच थी कि सुल्तान मौलेहाफ़िद या तो शान्ति स्थापित रखने मे असमर्थ था या रखना नहीं चाहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अप्रेल, १६११ मे फ़्रांस ने मोरक्कों मे अपनी सेनाएँ भेज कर २१ मई को राजधानी फ़ेज़ पर क़ब्ज़ा कर लिया।

इस लड़ाई मे सेनापति मोनियर ने, जो फ़्रांस की सेना के अध्यक्ष थे, सुल्तान और उसके साम्राज्य को किसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचाई। जून के महीने मे फ़्रांसीसी सेनाये फ़ेज़ से क्रमशः हट गई लेकिन जर्म्मनी ने फ़्रांस के प्रति अप्रकट वैमनस्य का भाव धारण कर लिया। इस वैमनस्य के उदय होने का एक प्रधान कारण था। फ़्रांस मे इतनी गड़बड़ी मची हुई थी कि हर छठे महीने मंत्रि-मण्डल का निर्वाचन होता था। इँग्लैंड भी, जो फ़्रांस की सहायता कर सकता था, आन्तरिक झगड़ों में फँसा हुआ था। इस समय से अधिक उपयुक्त दूसरा मौक़ा जर्म्मनी को नहीं मिल सकता था। इस विचार से उसने पहली जूलाई को जर्मनी ने फ़्रांस को यह सूचना

देते हुए कुछ सशस्त्र सेना भेज दी कि फ़्रांस में जो जर्म्मन मौजूद हैं उनकी रक्षा की जाय। जर्म्मनी की इस नीति का उद्देश्य भी यही था कि फ़्रांस को नीचा दिखा कर मित्र-त्रय-सन्धि में सेंध लगा दी जाय। लेकिन जर्म्मनी को इस कार्य्य में सफलता नहीं मिली। जर्म्मनी ने यह भी चाहा कि मोरक्को फ़्रांस, जर्म्मनी, और स्पेन के बीच मे बॉट लिया जाय। फ़्रांस इस धृष्टतापूर्ण मॉग को स्वीकार करने पर राज़ी नहीं हुआ। उसने उत्तर दिया कि मोटी मोटी बातों पर बहस करना हमारे मत के विरुद्ध नहीं है लेकिन हम ऐसी कोई बात नहीं होने देंगे जो फ़्रांस के लिए अपमान-जनक होगी। इँग्लैंड ने भी इसी प्रकार दृढ़ता प्रदर्शित की। इसका यह परिणाम हुआ कि जर्म्मनी का संग्राम-प्रिय उत्साह कुछ कुछ ठण्डा पड़ गया और उसका ध्यान कुछ अंशों मे फ़्रांस की ओर से हट कर इँग्लैंड की ओर चला गया।

४ नवम्बर सन् १९११ मे फ़्रांस और जर्म्मनी मे एक सन्धि हुई। जर्म्मनी ने मोरक्को मे फ़्रांस का प्रभुत्व स्वीकार किया। फ़्रांस ने कांगो का आधा हिस्सा जर्म्मनी को दे दिया।

सन् १९१४ मे २८ वी जून को आस्ट्रिया-साम्राज्य और हंगरी-राज्य के उत्तराधिकारी आर्चड्यूक फ्रांज़ फ़र्डिनेन्ड की हत्या सेराजोवो मे हो गई। इसी घटना से योरप के उस महायुद्ध का सूत्र-पात हुआ जिसने वर्त्तमान विश्व-राजनीति

पर बड़ा प्रभाव डाला है और सन् १९१४ से लेकर सन् १९१८ तक जारी रह कर अपार धन और जन स्वाहा किया है। इस युद्ध में फ़्रांस ने कितना भाग लिया, इस अध्याय मे हम इसी की चर्चा करेगे।

विस्मार्क का कहना है कि जिस प्रकार सन् १८६६ ई० में आस्ट्रिया के साथ फ़्रांस के युद्ध का परिणाम सन् १८७० ई० मे दृष्टिगोचर हुआ उसी प्रकार सन् १८७० ई० के युद्ध का फल सन् १९१४ के युद्ध के रूप मे प्रकट हुआ। अलसेस और लारेन का सीमा-सम्बन्धी असन्तोष ही प्रधान कारण नहीं कहा जा सकता। यह निश्चित है कि फ़्रांस का अङ्ग-विच्छेद किये जाने के कारण उसे कष्ट हुआ और उसको हमे अवश्य अपने ध्यान में रखना चाहिए, किन्तु केवल अलसेस और लोरेन की प्राप्ति के लिए ही फ़्रांस समराङ्गण मे कभी कूद पड़ता इसमे हमे सन्देह है। सच बात यह है कि इस असन्तोष को अन्य परिस्थितियों का सहारा भी मिल गया। उत्तरी अफ़्रीका मे फ्रांस को अपने एक साम्राज्य के विकास की आशा हो गई थी। यदि इस विकास में कोई बाधा न खड़ी होती तो सम्भव है कि फ़्रांस अलसेस और लोएन का खोया जाना भुला भी देता, परन्तु मोरक्को मे जर्मनी ने इस प्रकार हस्तक्षेप किया कि फ़्रांस को असन्तोष हुए बिना रह नहीं सकता था। सन् १८७०-७१ वाले फ्रांस-जर्म्मन युद्ध के बाद जर्म्मनी मे युद्ध-प्रियता की मात्रा बहुत बढ़ गई और

वही सन् १-६१४-१८ के युद्ध मे मूर्त्तिमती होकर आई, इसी कारण इस कथन मे सार्थकता है कि बीसवीं शताब्दी का यह युद्ध उन्नीसवी शताब्दी के उक्त युद्ध के गर्भ मे विद्यमान था।

जर्म्मनी मे प्रुशिया नामक एक प्रान्त है। इस प्रान्त का रण-प्रेम अपूर्व्व है। मीराबो नामक विद्वान् का तो यह कथन है कि युद्ध करना ही प्रुशिया का राष्ट्रीय पेशा है। सच बात यह है कि युद्ध प्रुशिया का स्वभाव-गत गुण है, युद्ध ही मे उसकी विकसित प्रतिभा का दर्शन होता है। सन् १८७० के बाद से प्रुशिया ने अपनी इसी विशेषता द्वारा जर्म्मनी के शरीर में नव रक्त-सञ्चालन किया है। नीट्ज़े जैसे दार्शनिकों और डैलमन, हास्सर, ड्राइसेन, सीबेल और ट्रीट्स्के जैसे इतिहास-विशारदों ने एक स्वर से जर्म्मनी को महाशक्ति की आराधना करने का आदेश दिया। 'उन्नीसवी शताब्दी मे जर्म्मनी का इतिहास' नामक ट्रीट्स्के-द्वारा प्रणीत इतिहास-ग्रन्थ राष्ट्रीय महाकाव्य से कम महत्त्व नहीं रखता।

दर्शन और इतिहास के अतिरिक्त विज्ञान से भी जो कुछ सेवा ली जा सकती थी वह ली गई। सम्पूर्ण शिक्षा के क्रम का उद्देश्य ही जर्म्मनी मे समरोन्नता की भावना का प्रचार होगया। जर्म्मनी के आचार्य्यों की उक्त विचार-पद्धति को बर्क 'शस्त्र-धारी सिद्धान्त' की उपाधि देता है। इस सिद्धान्त का विकास अपने गर्भ मे युद्ध को लाये बिना रह नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न राष्ट्रों में

सशस्त्रता की होड़, यूरोपियन महाशक्तियों का दो भागों मे विभाग, और आटोमन-साम्राज्य का पतन आदि कारणों ने भी युद्धाग्नि के भभकने मे समुचित योग दिया।

इस हत्या का उत्तरदायित्व बेलग्रेड की सरकार के ऊपर मढ़ा गया। २२ वी जुलाई को आस्ट्रो-हंगरी की सरकार ने उसके पास अन्तिम सूचना-पत्र भेज दिया। इस सूचना-पत्र के भेजने मे जान बूझ कर विलम्ब किया गया था, जिससे जर्म्मनी अपनी युद्ध-सम्बन्धी तैयारियों को पूरी कर ले। सूचना-पत्र में जहाँ अन्य अनेक शर्तें थीं वहाँ यह भी लिखा गया था कि सर्विया की सेना के सामने वहाँ के राजा के नाम से आस्ट्रिया-हंगरी द्वारा आज्ञा-पत्र पढ़ा जाय। आज्ञा-पत्र मे यह प्रकट किया गया था कि हत्या-काण्ड की सब कार्रवाई बेलग्रेड मे की गई और सर्विया के कर्म्मचारियों ने हत्याकारियों को आवश्यक अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति का प्रबन्ध किया। सर्विया की सरकार को आदेश दिया गया था कि आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध जो कुछ प्रचार-कार्य्य किया जा रहा है वह रोका जाय; जिन पदाधिकारियों और कर्म्मचारियों पर वह षड्यन्त्रकारी होने का सन्देह करे वे नौकरी से निकाल दिये जायँ। सर्विया के विस्तार के लिए जो आन्दोलन हो रहा था उसके दमन तथा इस कार्य्य मे आस्ट्रिया-हंगरी और सर्विया दोनों की सरकारों के सहयोग की आवश्यकता भी उक्त आज्ञा-पत्र मे बतलाई गई थी। ऐसे अपमान-जनक सूचना-पत्र का उत्तर देने के लिए

केवल ४८ घण्टो का समय दिया गया। ऐसी दशा मे भी सर्विया ने दो प्रधान शर्त्तों के अतिरिक्त शेष सभी को स्वीकार कर लिया। उन दो शर्त्तों को भी उसने बिलकुल अस्वीकार नहीं किया था बल्कि हेग की अथवा यूरप की महाशक्तियों की पंचायत के सामने पेश करने का आग्रह किया था, परन्तु लड़ाई किसी तरह रुकनेवाली नहीं थी।

२८ वीं जुलाई को आस्ट्रिया ने सर्विया पर आक्रमण कर दिया। ३१ जुलाई को जर्मनी ने रूस को युद्ध-सम्बन्धी अन्तिम सूचना-पत्र भेज दिया। ३ अगस्त को फ़्रांस के पास भी सूचना-पत्र आ गया। रूस तो इस बात पर भी तैयार था कि इँग्लैंड, फ़्रांस, जर्म्मनी और इटली सब मिल कर जो निर्णय कर दें वह मान लिया जाय, लेकिन इससे जर्म्मनी का मतलब नहीं सधता था। वह तो चाहता था कि या तो रूस सन् १९०९ की तरह अपमानित हो अथवा उसके साथ लड़ने को तैयार हो।

जब सर्विया को सहारा देने के लिए रूस खड़ा हो गया तब फ़्रांस का फँसना ठीक ही था। अब इँग्लैंड क्या करता? कुछ राजनीतिज्ञों का ख़याल है कि यदि इँग्लैण्ड दृढ़ता-पूर्वक अपना मत रूस और फ़्रांस के पक्ष में घोषित कर देता तो जर्म्मनी आगे पैर न बढाता। परन्तु यद्यपि यह सत्य है कि जर्म्मनी उस समय इँग्लैंड का युद्ध में सम्मिलित होना नहीं पसन्द करता था तथापि कैसर जर्म्मनी के आन्तरिक कारणों

द्वारा युद्ध के पक्ष मे इतना अधिक प्रभावित हो रहा था कि उस हद तक जाकर युद्ध का रुकना असम्भव था।

लेकिन स्वयं जर्म्मनी ने एक बात ऐसी कर दी कि इँग्लैंड अधिक काल तक अपने विचार को अनिश्चित न रख सका। दूसरी अगस्त को जर्म्मनी ने बेलजियम के भीतर से होकर रण के लिए यात्रा करने की घोषणा कर दी और यह भी प्रकट कर दिया कि यदि बेलजियम इसमे बाधा डालेगा तो वह शत्रु समझा जायगा। बेलजियम की पराधीनता स्वयं इँग्लैंड के लिए संकट-जनक है, इस सिद्धान्त का अनुसरण करके इँग्लैंड ने ४ अगस्त को युद्ध-सम्बन्धी अन्तिम सूचना-पत्र प्रेषित किया और उत्तर न आने पर ४ अगस्त की आधी रात से ग्रेटब्रिटेन और जर्म्मनी मे लड़ाई शुरू हो गई। उसी रात को जर्म्मनी ने बेलजियम के साथ युद्ध की घोषणा कर दी और फ्रांस के ऊपर आक्रमण करने के लिए रास्ते का काँटा निकालना शुरू कर दिया।

जर्म्मनी का असली उद्देश यह था कि जब तक रूस फ्रांस की सहायता करने मे समर्थ हो सके तब तक वह बेल-जियम होता हुआ एकाएक पेरिस मे आ धमके। फ्रांस को एक बार तहस-नहस करने के बाद जर्म्मनी रूस की ख़बर लेने की बात सोचनेवाला था। इसमे सन्देह नही कि यदि चैनेल के पास वाले कुछ बन्दरगाह फ्रांस के हाथ से निकल सकते, तो रूस को परास्त करना जर्म्मनी के बाएँ

हाथ का खेल हो जाता। जर्म्मनी ने सोचा था कि इँग्लैंड की तटस्थता फ्रांस के पराजय और रूस के दमन के बाद बाल्कन प्रदेशों को भी स्वाधिकार मे कर लेना कठिन न होगा। परन्तु जैसा उसने सोचा था ठीक उसके विपरीत हुआ। इँग्लैण्ड ने रणक्षेत्र मे कूद कर उसके सारे मनसूबे मिट्टी में मिला दिये।

जर्म्मनी को आशा थी कि पेरिस को एक महीने मे ले लेंगे। इसमे सन्देह नहीं कि ऐसा सर्वथा सम्भव था, लेकिन सब से बड़ी बाधा तो बेलजियम ने डाली। इस छोटे से देश ने अपनी आत्म-रक्षा करने मे जैसी वीरता और स्वदेश-भक्ति का परिचय दिया उसकी प्रशसा करनी ही पड़ती है। एक सप्ताह तक तो जर्म्मनी की सेनाओं की प्रगति को लीग ने ही रोक रक्खा। यद्यपि स्वयं नगर ७ वीं अगस्त को ही जर्म्मनों के हाथ मे गया था, किन्तु क़िलों का आत्म-समर्पण १५ वीं अगस्त के पहले न हो सका। लीग पर अधिकार स्थापित करके जर्म्मन ब्रुसेल्स की ओर बढ़े और बेलजियम-सरकार को विवश होकर ऐन्ट्वर्प मे चला जाना पड़ा। बीसवीं तारीख़ को जर्म्मनों ने ब्रुसेल्स पर अधिकार कर लिया। २४ वीं अगस्त को नैमूर का क़िला भी लगातार २४ घन्टों की गोला बारी के बाद जर्म्मनों के हाथ आया। इस परिस्थिति मे फ्रांस के घबराने का यथेष्ट कारण था। परन्तु उसके प्रसिद्ध सेना-पति जाफ़्रो ने बेलजियम की सहायता और उत्तर-पूर्वी